Amritlal Nagar ke Upanyasom ka Visleshanatmak Adhyayan

Thesis Submitted to

THE COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

ALEYAMMA VARGHESE

HEAD OF THE DEPT.
DR. N. RAMAN NAIR

SUPERVISOR
DR. L. SUNEETHA BAI

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN 22

1990

अमृतलाल नागर के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के
हिन्दी विभाग में पी-एच.डी. की उपाधि
के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

एलियाम्मा वरगीस

विभागाध्यक्ष
डॉ.एन.रामन नायर

निर्देशक
डॉ.एल.सुनीता बाई

हिन्दी विभाग
कोचिन - 22

1990

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by ALEYAMMA VARGHESE, under my supervision for Ph.D. degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. L. SUNEETHA BAI
(Supervising teacher)

Department of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
KOCHI, Pin 682022

Date: 1990.

प्राक्कथन

प्राक्कथन

आधुनिक हिन्दी उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर का खास स्थान है । इस श्रेष्ठ उपन्यासकार के आज तक करीब पन्द्रह उपन्यास प्राप्त हैं । प्रेमचन्द परंपरा के उन्नायक के रूप में अपनी खासियत एवं नवीनता को लेकर उन्होंने अपने उपन्यास लिखे हैं । उन्होंने विषय वस्तु एवं चिन्तन पक्ष को अधिक महत्व प्रदान किया । शिल्प को उन्होंने अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम माना । उन्होंने विषय वस्तु के प्रतिपादन के लिए व्यापक अध्ययन किया । अपने उपन्यासों में उन्होंने गहन चिन्तन तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षणशक्ति के आधार पर साहित्य के माध्यम से विविध जीवनमूल्यों का विश्लेषण किया है । अतः उन्हें प्रेमचन्द परंपरा के उन्नायक के रूप में स्मरण किया जाता है । समसामयिक समस्याओं के चित्रण में नागर जी ने प्रेमचन्द की भांति सफलता प्राप्त की है । स्वतन्त्रता पूर्व भारत को नागर जी ने ठीक तरह देखा है, इसलिए स्वातंत्र्योत्तर भारत में मूल्य परिवर्तन की झांकी उन्होंने प्रस्तुत की है । अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रेमचन्दोत्तर साहित्यकारों में एक अनुपम स्थान नागर जी ने प्राप्त

किया है । भाषा की सरलता एवं शैली की विविधता उनकी अपनी विशेषताएं हैं । यथार्थवाद का निकट सामीप्य उनके उपन्यासों की विशेषता है ।

अमृतलाल नागर के उपन्यास विषय की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध हैं । उपन्यासों का विस्तृत एवं वैज्ञानिक अध्ययन कई विद्वानों के द्वारा हुआ है । "अमृतलाल नागर के उपन्यास" नामक आनन्द प्रकाश त्रिपाठी के ग्रन्थ में नागर जी के ग्यारह उपन्यासों का प्रतिपादन किया गया है । "अमृतलाल नागर के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त" नामक ग्रन्थ में जो डा॰ सुदेश बत्रा का है, नागर जी के व्यक्तित्व पर विचार किया गया है । प्रकाशचन्द्र मिश्र का "अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य" नामक ग्रंथ साहित्य प्रकाशन ने प्रकाशित किया है । हेमराज कौशिक ने "अमृतलाल नागर के उपन्यास" शीर्षक ग्रन्थ में समाज के बदलते हुए नये मूल्यों पर विचार किया है । डा॰ पुष्पा बंसल ने "अमृतलाल नागर भारतीय उपन्यासकार" नामक ग्रंथ लिखा है जिसमें नागर जी को भारत की समस्याओं को प्रस्तुत करनेवाले एक उपन्यासकार के रूप में चित्रित किया गया है । पर नागर जी के अभी तक के उपन्यासों का समग्र रूप से विश्लेषणात्मक अध्ययन ही मेरा यह प्रयास है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के पाँच अध्याय हैं । पहले अध्याय में मैं ने हिन्दी उपन्यास साहित्य का आविर्भाव एवं उन्नति का अध्ययन प्रस्तुत किया है । उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति और उपन्यास के अंगों पर भी इसमें विचार किया गया है जिससे उपन्यासों का मूल्यांकन ठीक तरह हो जाय । दूसरे अध्याय में अमृतलाल नागर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन किया गया है ।

व्यक्ति और साहित्यकार के रूप में नागर जी का परिचय इसमें दिया गया है । यद्यपि प्रबन्ध की सीमा में उनके उपन्यास ही आते हैं तथापि उनके व्यक्तिगत एवं कलात्मक आधार पर संपूर्ण कृतियों का अध्ययन न किया जाय तो प्रबन्ध का रूप अधूरा ही रहेगा । साहित्यकार के रूप में अपना जीवन बिताने और आत्म सन्तोष पाने के मूल कारणों पर भी इस अध्याय में विचार प्रस्तुत किया गया है ।

तीसरे अध्याय में नागर जी के उपन्यासों के कथानक एवं चरित्रों पर शास्त्रीय विवेचन किया गया है । कथानक की महत्ता एवं विशेषताओं पर विचार करके नागरजी के कथानकों की खासियत पर विचार प्रस्तुत किया गया है । उसी प्रकार चरित्र चित्रण का शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करके नागर जी के उपन्यासों में चरित्र चित्रण की विभिन्न प्रणालियों का सम्यक् विश्लेषण भी किया गया है ।

"नागर जी के उपन्यासों में सामाजिक समस्याएं" अध्याय में आलोचनात्मक दृष्टि से सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण हुआ है । इसके अलावा इन सामाजिक समस्याओं को हल करने के उपायों पर भी यहां विस्तृत रूप से अध्ययन किया है । साथ ही साथ व्यक्ति के विकास में समाज के सहयोग की ज़रूरत पर भी अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है ।

पांचवें अध्याय में "नागर जी के उपन्यासों में कलाशिल्प" पर अध्ययन किया गया है । औपन्यासिक शिल्प के महत्व पर विचार करके कला और वस्तु तत्व के औचित्यपूर्ण सन्तुलन पर विचार प्रस्तुत किया है । भाषा-शैली, कथोपकथन और देशकाल-वातावरण पर भी अध्ययन करने का प्रयास इसमें किया गया है ।

प्रबन्ध का अन्तिम खण्ड है - मूल्यांकन और उपसंहार। इस में उपरोक्त अध्ययन का निष्कर्ष अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है जिससे नागरजी की प्रतिभाशक्ति और प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास के विकास में नागर जी का स्थान निर्धारित हुआ है। इस अध्याय में प्रेमचन्द से नागर जी की तुलना करके नागर जी प्रेमचन्द के पूरक सिद्ध किये गये हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का कार्य कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में डॉ॰ एल॰ सुनीता बाई के निर्देशन में रहकर मैं ने किया है। उनके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ। प्रस्तुत विभाग के अध्यक्ष डॉ॰ एन॰ रामन नायर के सद्भाव ने इस काम में मेरी बहुत बड़ी सहायता की है। मैं उनके प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ। हिन्दी विभाग के पुस्तकालय से इस काम के लिए मैं ने काफी पुस्तकों का उपयोग किया है। समय समय पर आवश्यक पुस्तकों को यथासमय पहुँचानेवाले पुस्तकालय के अध्यक्षा के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ।

एलियाम्मा वरगीस

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान एवं
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोचिन, पिन 682022
तारीख :

विषय - सूची

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय ... ... 1 - 42

हिन्दी उपन्यास साहित्य एवं अमृतलाल नागर

उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति - उपन्यास का उद्भव - उपन्यास के अंग - कथानक - पात्र और चरित्र -चित्रण - कथोपकथन एवं वातावरण - शैली - हिन्दी उपन्यास साहित्य पूर्व प्रेमचन्द युग - संस्कृत कथाख्यानों का अनुवाद पौराणिक उपन्यास - मनोरंजन प्रधान उपन्यास जासूसी - डकैती उपन्यास - श्री दुर्गाप्रसाद खत्री - किशोरीलाल गोस्वामी - प्रेमचन्द युग प्रेमचन्द की समकालीन चेतनाएं - जयशंकर प्रसाद - वृन्दावनलाल वर्मा - आचार्य चतुरसेनशास्त्री - प्रेमचन्दोत्तर युग - जैनेन्द्रकुमार - इलाचन्द्र जोशी - अज्ञेय - भगवतीचरण वर्मा - यशपाल - उपेन्द्रनाथ अश्क - रांगेय राघव - भगवती प्रसाद बाजपेयी - सियाराम शरण गुप्त - मन्मथनाथ गुप्त - राहुल सांकृत्यायन अमृतलाल नागर ।

पृष्ठ-संख्या

दूसरा अध्याय ... ... 43 - 97

अमृतलाल नागर - व्यक्तित्व और कृतित्व

अमृतलाल नागर का जीवन परिचय - जन्म एवं परिवार - कलाप्रेमी परिवार - शिक्षा - पत्रकारिता - फिल्मी जीवन - स्वतंत्र साहित्य चिन्तन और प्रेरणा स्रोत - व्यक्तित्व विश्लेषण - स्वाध्याय - सुधारात्मक साहित्य भ्रमण - भोजन - रंगीनियों से उनका मतलब - राजनीति की ओर झुकाव - सांस्कृतिक व्यक्तित्व - आर्थिक वातावरण का प्रभाव नागरजी की ख्याति प्राप्त कहानियां - अमृतलाल नागर के उपन्यास - परिचयात्मक अध्ययन - निष्कर्ष ।

तीसरा अध्याय ... ... 98 - 188

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में कथानक एवं चरित्र चित्रण

उपन्यास में कथानक की महत्ता - कथानक के भाग - कथानक की विशेषताएं - कथानक की संबद्धता - मौलिकता - रोचकता - नाटकीयता - नागर जी के उपन्यासों में कथानक - घटनाओं का क्रमबद्ध संचालन -

पृष्ठ-संख्या

कथानक की मौलिकता - नवीन प्रयोग -
यथार्थवादी कथानक - सामाजिक कथानक
ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सांस्कृतिक -
नागर जी के कथानकों में जीवनगत सत्य -
अनुभूति की सच्चाई - द्वन्द्वपूर्ण कथानक -
कथानकों की विविधता एवं नवीनता -
नागर जी के उपन्यासों में चरित्र चित्रण -
चरित्र - पात्रों की संख्या - वास्तविक पात्र
पात्रों का वर्गभेद - नायिका - सहनायक -
सहनायिका - गौण पात्र - स्थिर पात्र -
विकसनशील पात्र - चरित्र चित्रण का महत्व -
कथावस्तु और चरित्र चित्रण - पात्रों का चुनाव
पात्रों की कोटियां - व्यक्ति प्रतिनिधि पात्र
वर्ग प्रतिनिधि पात्र - अमृतलाल नागर के
उपन्यासों में चरित्र - मुख्य पात्र - गौण
पात्र - पात्रों का वर्गीकरण - बौद्धिक -
शोषक - वेश्या वर्ग - प्रगतिशील - पतिव्रता
वर्ग - गरीब वर्ग - निष्कर्ष ।

चौथा अध्याय ... ... 189 - 231

नागर जी के उपन्यासों में सामाजिक समस्याएं

सामाजिक उपन्यास - हिन्दी उपन्यासों में
सामाजिक परिस्थितियां - प्रेमचन्द के
उपन्यासों की समस्याएं - हिन्दी मुस्लिम एकता
की समस्या - देश की भावात्मक एकता की समस्या

पृष्ठ-संख्या

भूख की समस्या - बुद्धिजीवियों की समस्या
बेमेल विवाह की समस्या - साम्प्रदायिक समस्या
भारत में साम्प्रदायिकता - राजनैतिक
समस्याएं - नागर जी के उपन्यास एवं
राजनैतिक वातावरण - सामाजिक
समस्याएं - नारी समस्या - नागर जी के
उपन्यासों में नारी समस्या - वेश्या
समस्या - पूंजीवाद और शोषण -
निष्कर्ष ।

पांचवां अध्याय ... ... 232 - 278

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में शिल्प

उपन्यासों में शिल्प का महत्व - शिल्प -
नवीन प्रयोग - नागर जी के उपन्यासों
में शैलियां - कथानक या वर्णनात्मक पद्धति
नाटकीय या संवादात्मक पद्धति -
मनोविश्लेषणात्मक पद्धति - फ्लैश बैक
पद्धति - काव्यात्मक अथवा भावात्मक
पद्धति - प्रतीकात्मक पद्धति - कला या
टेकनीक - चरित्र शिल्प - चरित्र चित्रण की
विधियां - संवाद शिल्प - संक्षिप्त संवाद
योजना - भाषिक शिल्प सौन्दर्य -

पृष्ठ-संख्या

सरल स्वाभाविक भाषा - अलंकृत और काव्यात्मक भाषा - गंभीर चिन्तन प्रधान भाषा - उर्दू - फारसीयुक्त हिन्दुस्तानी - कथोपकथन - देशकाल और वातावरण - हास्य और व्यंग्य - निष्कर्ष ।

उपसंहार ... ... 279 - 288

संदर्भ ग्रन्थ सूची ... ... 289 - 303

पहला अध्याय

हिन्दी उपन्यास साहित्य एवं अमृतलाल नागर

पहला अध्याय

हिन्दी उपन्यास साहित्य एवं अमृतलाल नागर

"उपन्यास" शब्द की व्युत्पत्ति

"उपन्यास" शब्द "उप" और "नि" पूर्वक अस् धातु में धञ् प्रत्यय जोडने से व्युत्पन्न हुआ है ।[1] "अस्" का अर्थ होता है रखना, स्थिर करना, प्रक्षेपण करना आदि । साहित्य शास्त्रियों ने इस शब्द का अर्थ यों दिया है - "उपन्यास : प्रसादनम् §प्रसन्नता संपादनम् टीका§[2] । इस प्रकार संस्कृत साहित्य में उपन्यास शब्द का प्रयोग उस रचना केलिए किया जाता था जिसमें जीवन के विविध पक्षों का

1. 'Higher Sanskrit Grammar',APPendix to Dhatukosh. 7th edition - Page 7

2. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास - डॉ॰बेचन, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली,प्रथम संस्करण,1965 - पृ॰17

बिना किसी भेदभाव के चित्रण किया गया हो और जिसमें लोकरंजन की प्रवृत्ति का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता हो । साहित्य रूप के अर्थ में इसका प्रयोग सबसे पहले बंगला में हुआ । इसके शब्दार्थ - (उप = निकट न्यास = रखना) के द्वारा यह सूचित किया जाता है कि इस साहित्यांग के द्वारा ग्रन्थकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत रखना चाहता है ।

उपन्यास की परिभाषा के संबन्ध में श्री. महेन्द्र चतुर्वेदी ने कहा है - "किसी भी अन्य साहित्यांग की भांति उपन्यास की भी कोई नपी तुली परिभाषा कर पाना सरल नहीं है । इन्हें परिभाषा में बांधना कठिन इसलिए है कि मानव की आविष्करण शक्ति की कोई इति नहीं, उसकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा अवरोध स्वीकार नहीं करती[1] ।" फिर भी उपन्यास के संबन्ध में कुछ ऐसी मान्यताएं हैं जिनके आधार पर एक परिभाषा का निर्माण करने का प्रयत्न किया जा सकता है । उपन्यास कलात्मक गद्यकृति होती है । यह एक सर्वसम्मत तथ्य है । पद्यकृति में कथातत्व तो विद्यमान हो सकता है परन्तु हम उसे उपन्यास नहीं कह सकते । कथा चाहे वह कितनी भी क्षीण क्यों न हो - उपन्यास के लिए अनिवार्य है । कथातत्व के अभाव में उपन्यास की सर्जना संभव नहीं । उपन्यास का संबन्ध मानव से होना चाहिए चाहे वह मानव व्यष्टि हो या समष्टि हो । उपन्यासकार मानवमन का गहन अध्ययन प्रस्तुत करनेवाला है । "जीवन एवं उसकी स्वाभाविक गतिविधियों से कटकर उपन्यास साहित्य जीवित नहीं रह सकता[2] ।" कहानी और उपन्यास का कलेबर समान है

---

1. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी
   नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, फरवरी 1962, पृ.2

2. गोदान - समीक्षा - प्रो. राजेश शर्मा
   अशोक प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 1972, पृ.2

लेकिन उपन्यास के लिए व्यापकता की अनिवार्यता है । कहानी की उद्देश्यसिद्धि के लिए यह व्यापकता बाधक है । उपन्यास जीवन के विविध पक्षों को संश्लिष्ट रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित करने का प्रयत्न करता है । पर कहानी जीवन के किसी एक क्षण या पक्ष की झांकी प्रस्तुत करती है । "उपन्यास मानव जीवन की सामयिक एवं युगायुगीन समस्याओं का यथार्थ निरूपण करनेवाली सबसे समर्थ साहित्य विधा है[1] ।" अनेक विद्वानों ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसे आधुनिक युग का महाकाव्य" बताया है । राल्फ फाक्स के अनुसार उपन्यास गद्य में लिखी गई कथामात्र नहीं है, वह मनुष्य के जीवन का गद्य है । उपन्यास वह प्रथम कलारूप है जो समग्र मनुष्य को समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है[2] ।"

उपन्यास का उद्भव

कहानी का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव का इतिहास । कहानी कहना और सुनना मनुष्य का स्वभाव है । अत: उसका जन्म भाषा के जन्म के साथ ही हुआ होगा । संसार के अतीव प्राचीन ग्रंथों में उसका बीज है । पुराण, बाइबिल कुरान आदि धर्मग्रन्थों में नीति की शिक्षा सरल रीति से दी गई थी । हिन्दी का उपन्यास इसी कथा साहित्य का आधुनिक रूप है ।

---

1. हिन्दी उपन्यास - एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी
   पृष्ठभूमि - पृ.4, नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
2. द नॉवल एण्ड द पीपल - राल्फ फोक्स, पृ.20

कलात्मक विनोद का प्राचीनतम साधन महाकाव्य रहा तो उसका आधुनिक साधन रहा उपन्यास । उपन्यास में जीवन की विविधता, विराटता और पूर्णता रहती है । समृद्धि और लोकप्रियता की दृष्टि से आज उपन्यास की समता कोई भी दूसरी साहित्य विधा नहीं कर सकती । घोर संघर्ष के बाद ही उपन्यास की यह उन्नति हो गई है ।

उपन्यास के अंग

उपन्यास के प्रधानत: छ: अंग होते हैं । कथावस्तु, पात्र और चरित्र चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, उद्देश्य और शैली । ये आपस में संबद्ध हैं[1] । समीक्षकों ने उपन्यासों में इन तत्वों का अन्वेषण भी किया है[2] ।

कथानक

कथानक का शाब्दिक अर्थ है "कथा का लघुरूप" या "कथा का सारांश" । कथानक का प्रयोग अंग्रेज़ी के "प्लाट" शब्द के समानार्थ के रूप में होता है । साहित्य में कार्य व्यापार की योजना को ही कथानक माना गया है । कथानक ही उपन्यास की नींव है । कथानक में कार्यकारण संबन्धी प्रमुखता होती है जिसमें श्रोता

---

1. हिन्दी उपन्यास - पृष्ठभूमि और परंपरा - डॉ॰बदरीदास रामबाग कानपूर, पृ॰60, प्रथम संस्करण 1971
2. हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव - भारत भूषण अग्रवाल दिल्ली, प्रकाशक - दिग्दर्शन चरण जैन, पृ॰34

या पाठक जिज्ञासा रखते हैं । "जैसा कि ई॰एम॰ फार्स्टर ने लिखा है, उपन्यास के कथानक को समझने के लिए बुद्धि और स्मरणशक्ति की उपेक्षा होती है । जिज्ञासा कथानक के लिए अपर्याप्त सिद्ध होती है[1] ।" कहानी सुनाना उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य नहीं है बल्कि वे कहानी के माध्यम से अपना निश्चित दृष्टिकोण व्यक्त करना चाहते हैं । लक्ष्य का ज्ञान ही कथानक है ।

पात्र और चरित्र चित्रण

उपन्यास में चरित्र चित्रण का बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्थान है । उपन्यास के चरित्र ही उसका मेरुदण्ड माने जाते हैं । पात्र से ही संबद्ध है चरित्र । प्राय: पात्र और चरित्र को एक ही मान लिया जाता है । समाज में विचरण करनेवाले प्रत्येक प्राणी की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, उनका विशिष्ट चरित्र या व्यक्तित्व होता है[2] ।" उपन्यास मानव जीवन की अभिव्यक्ति है । इसलिए हम इस तथ्य को कभी इनकार नहीं कर सकते कि उसका मुख्य विषय मानव और उसका चरित्र है । चरित्र चित्रण की सुदृढ नींव पर ही उपन्यास का भव्य प्रासाद टिका है ।

कथावस्तु और चरित्र निर्माण परस्पर पूरक कार्य है । चरित्रों के अभाव में उपन्यास की कथा का निर्माण या संवादों की योजना नहीं हो सकती । वास्तव में चरित्र उपन्यास के सभी तत्वों को अस्तित्व प्रदान करता है । कथानक की अभिव्यक्ति पात्रों द्वारा ही होती है । साहित्यकार यथार्थ जगत की घटनाओं द्वारा यथार्थ जगत के पात्रों को परिचित बना देता है ।

---

1. हिन्दी कथा साहित्य - डॉ॰ गोपालराय
   ग्रन्थ निकेतन, पटना, प्रथम संस्करण, 1965
2. हिन्दी उपन्यासों के असामान्य चरित्र - डॉ॰सुजाता
   मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, पृ॰21, 1983

कथोपकथन और वातावरण

उपन्यास के तत्वों में कथोपकथन का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है । हडसन महोदय के अनुसार "श्रेष्ठ कथोपकथन उपन्यास के सौन्दर्यमूलक तत्वों में एक है जो हमें जनता के निकटवर्ती बना देता है[1] ।"

वातावरण

वातावरण वह शब्द है जो समस्त बाह्यशक्तियों प्रभावों और परिस्थितियों का सामूहिक रूप से चित्रण करता है । यह तथ्य व्यक्ति के जीवन, स्वभाव और व्यवहार को प्रभावित करता है । व्यक्ति के विकास क्रम में वातावरण का अप्रतिम महत्व है । वातावरण के सम्यक् परिचय के अभाव में समाज एवं व्यक्ति का परिचय अधूरा ही रह जाएगा । इसलिए उपन्यासकार को अपने पात्रों के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए वातावरण का उचित चित्रण करना चाहिए ।

शैली

उपन्यास में भाषा और शैली का प्रमुख स्थान है । लेकिन "हिन्दी उपन्यास के प्रारंभिक काल में कथावस्तु के ढांचे को छोड़कर अन्य तत्वों की तरह शैली भी दुर्लक्षित ही रही है[2] ।"

---

1. W.H. Hudson - An Introduction to the study of the literature - First Indian edition 1967
2. उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान - डॉ.दंगल झालटे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.37

भाषा भावों तथा विचारों की संवाहिका है । पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग सफल उपन्यासों की उल्लेखनीय विशेषता है । किसी भी रचना की सशक्तता, सफलता, संप्रेषणीयता उसकी भाषा की शक्ति पर निर्भर करती है । अपने विभिन्न अनुभव तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भाषा द्वारा ही संप्रेषित की जाती है ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य

उपन्यास मानव जीवन की सामयिक एवं युग युगीन समस्याओं का यथार्थ निरूपण करनेवाली सबसे समर्थ साहित्य विधा है । भारत में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में गद्य का आरंभ हो गया था । डॉ· अग्निहोत्री ने कहा है - "उपन्यास का स्वरूप भाषा के गद्य के स्वरूप की स्थिरता के साथ होता है ।[1]" हिन्दी में कथा साहित्य का आरंभ इन्शा अल्लाखां की "रानी केतकी की कहानी" से होता है । इसका रचनाकाल सन् 1800 से 1810 ई· के बीच में है । लल्लूलाल का "सिंहासन बत्तीसी", "बेताल पच्चीसी", "माधवानल कामकन्दला", "शकुन्तला" तथा प्रेमसागर और सदलमिश्र का नासिकेतोपाख्यान इस युग की अन्य कृतियाँ हैं । गद्य के विकास की दृष्टि से इसको अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता । इस युग में हिन्दी जनता संस्कृत और फारसी के अनूदित ग्रन्थों और प्रेमाख्यानों से अपने मन को सन्तुष्ट कर रही थी । मध्ययुग में मुसलमानों के संपर्क से कुछ नवीन तत्वों का प्रचार दिखाई देने लगा । मध्ययुग में रुचि के अनुसार जनता में दो भेद हुए । एक प्रबुद्ध शिक्षित वर्ग था जिनका तात्पर्य उपनिषदों पुराणों आदि की गंभीर कथा की ओर था । दूसरा विभाग था साधारण जनता जिसकी रुचि रोमांचक प्रेमकथाओं की ओर थी । मुसलमानों के

1· हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन - डॉ·श्रीनारायण अग्निहोत्री, पृ·36, प्रकाशक - सरस्वती पुस्तक सदन,आगरा, प्रथम संस्करण 1961

संपर्क से इन कथाओं में हँसने हँसाने की सामग्री आ गई । जीवन के प्रति एक आशा आस्था उसमें आ पहुँची ।

इसी समय हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय हुआ । उन्होंने भटकते हुए साहित्यकार को नई दिशा की ओर उन्मुख किया । परिस्थिति की वास्तविकता से उन्हें परिचित कराया । उपन्यासकला के विकास की दृष्टि से भारतेन्दु की सबसे महत्वपूर्ण कृति "पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा" है । उपन्यासकला का परिपक्वरूप इसमें देखा जाता है । यह कृति मराठी से अनूदित है । यदि यह कृति मौलिक होती तो भारतेन्दु को हिन्दी उपन्यास का जनक स्वीकार किया होता । लेखक ने इसमें स्त्री शिक्षा का समर्थन और वृद्ध विवाह का विरोध भी किया है । भले ही आधुनिक हिन्दी उपन्यास के जन्मदाता के तौर पर उन्हें न मानें तो भी आधुनिक उपन्यासकारों के निर्देशक के रूप में हम उन्हें मान सकते हैं । भारतेन्दु के दर्शाये मार्ग से बाद में अनेक साहित्यकार अपनी साहित्य रचना में प्रवृत्त हुए ।

सन् 1882 में हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास "परीक्षा गुरु" का सृजन हुआ । 1916 ई॰ में प्रेमचन्द ने उपन्यास क्षेत्र में पदार्पण किया । इसलिए 1882 से 1916 तक का काल प्रेमचन्दयुग कहा जा सकता है ।

सन् 1916 से 1936 ई॰ तक के काल में प्रेमचन्द उपन्यास क्षेत्र के एकच्छत्र सम्राट रहे । इस युग के सभी उपन्यासकार प्रेमचन्द के विराट व्यक्तित्व में दबकर रह गये । इस युग को निर्विवाद रूप से प्रेमचन्द युग कह सकते हैं । पूर्ववर्ती उपन्यासों से प्रेमचन्द की अवधारणा सर्वथा भिन्न थी तो भी उन्होंने पूर्ववर्ती उपन्यास की परंपरा को पूर्णतया छोड नहीं दिया । उसे सजा संवारकर अधिक गहरा और अधिक सार्थक बना दिया ।

सन् 1936 से तृतीय उत्थान शुरू होता है । इस युग की नवीन प्रवृत्तियों का श्रेय भी प्रेमचन्द को है । मनोवैज्ञानिकता और जनवादी चेतना दोनों का समावेश प्रेमचन्द के उपन्यासों में हुआ है । इसलिए प्रेमचन्द के बाद के उपन्यास उन्हीं के दर्शाये मार्ग पर ही लिखे गये । यह युग व्यक्तिप्रधान उपन्यास का युग रहा । इस युग को प्रेमचन्दोत्तरयुग नाम देना ही अधिक सार्थक होगा ।

पूर्व प्रेमचन्द युग (सन् 1882 से सन् 1916 ई. तक)

पूर्व प्रेमचन्द युग के संपूर्ण उपन्यासों में उद्देश्य की दृष्टि से दो धाराएं दीख पड़ती हैं । एक धारा में मनोरंजन की प्रधानता है तो दूसरी धारा में उपदेश की । कुछ उपन्यासों में दोनों तत्वों का समन्वय दर्शित होता है ।

उपन्यास का प्रारंभिक विकास

हिन्दी साहित्य के आदिकाल की रचना गद्य में ही होती थी । गद्य के अभाव में लोग मधुमालती, मृगावती आदि पढकर तृप्त हो जाते थे[1] । यद्यपि आदिकाल में कविता की ही सत्ता थी तो भी दक्खिनी ब्रजभाषा और राजस्थानी में गद्य की प्रवृत्तियां थीं । उपयोग की अपेक्षा मनोरंजन का काम ही उसमें अधिक था । चौदहवीं सदी से दक्खिनी गद्य की परंपरा आरंभ होती है[2] । सूफी साहित्य में भी

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचन्द्र शुक्ल, पृ.99
2. दक्खिनी हिन्दी - डॉ. बाबू राम सक्सेना, पृ.58

जो अरबी-फारसी में लिखा गया था कथाओं का उपयोग किया गया है । नैतिक सिद्धान्तों का उपयोग ही उसका मुख्य उद्देश्य था । ब्रजभाषा काव्य भाषा है तो भी उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक गद्य का रूप देखा जाता है जो वार्तारूप में है । श्री॰ गोकुलनाथ के "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता" में श्री॰ बिट्ठलनाथ गोसाई और उनके सेवकों के चरित्र का उल्लेख है । वार्ताओं के अनुरूप पात्रों में विविधता है । समाज के भले बुरे, उच्च-नीच सभी स्तर के पात्र उसमें आये हैं ।

संस्कृत कथाख्यानों का अनुवाद

हिन्दी उपन्यास के विकासके इतिहास में संस्कृत कथाख्यानों के अनुवाद का बडा महत्त्व रहा है । हितोपदेश, पंचतंत्र आदि संस्कृत के आख्यान काव्यों से काफी सामग्री हिन्दी में ली गई है ।

सन् 1760 के बाद सदलमिश्र के नासिकेतोपाख्यान का उल्लेख आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने किया है । लल्लूलाल ने राजनीति, माधवविलास आदि ग्रंथ लिखे जो "हितोपदेश" का आशय लेकर लिखे गये । जगतप्रसिद्ध संस्कृत कथा पंचतन्त्र का रूपान्तर "पंचाख्यान" जो फतहराम वैरागी का अनूदित ग्रंथ है, सन् 1847 में हुआ ।

उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर कथा कहने की शक्ति ज़ोर पर दिखाई देती है । इस सदी के आरंभ में चार गद्यकार प्रमुख थे जिनमें तीनों कथाकार थे । इन्शा अल्लाखाँ की रानी केतकी की कहानी, सदलमिश्र का नासिकेतोपाख्यान और लल्लूलाल का प्रेमसागर नवीन गद्य में लिखित अमर कथाएं हैं । "रानी केतकी की कहानी" खडीबोली गद्य की पहली मौलिक प्रेम कहानी है जिसके परिमार्जित गद्य के कारण विद्वानों ने उसको श्रेष्ठ स्थान दिया है ।

हिन्दी उपन्यास के विकास में अँग्रेज़ों का योगदान

हिन्दी उपन्यास का जन्म उन्नीसवीं सदी के साथ हुआ। अँग्रेज़ों के संपर्क से उपन्यास के विकास की परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं। धन, धरती और धर्म पर अँग्रेज़ों की दृष्टि रही थी। अन्तिम मुगलसम्राट औरंगजेब की मृत्यु के बाद पचास वर्ष के अन्दर मुगल साम्राज्य शिथिल हो गया और अँग्रेज़ों की सत्ता भारत में कायम होने लगी। देश छोटे बड़े राज्यों में बँट गया और आन्तरिक कलह भी जाग उठा। केन्द्रीय शासन की दुर्बलता और इस आन्तरिक कलह से लाभ उठाकर अँग्रेज अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगे। अँग्रेज़ मुगलों के उत्तराधिकारी बन गये। बंगला के अन्तिम बहादुर नवाब सिराजुद्दौला को पराजित कर क्लैव ने राज्य की नींव डाली। फिर वारेन हेस्टिंग्स और डेलहौसी ने क्लैव की उसी कूटनीति के सहारे अँग्रेज़ी राज्य का महल स्थापित किया। प्लासी युद्ध के बाद अँग्रेज़ों की छत्रछाया उत्तर भारत की ओर बढ़ी। ईस्ट इन्डिया कंपनी के सौ वर्ष का शासनकाल राजाओं नवाबों और बेगमों से अधिक व्यापारियों किसानों के रक्त तथा आँसुओं से लिखा गया। व्यक्तिगत भूस्वामित्व से प्राचीन ग्रामीण व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गई। भारत की आर्थिक प्रणाली की रीढ़ टूट गई। भारत में पूँजीवादी वर्ग का आरंभ अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल से हुआ था। भारत एक महान औद्योगिक देश बन गया। परिवर्तन की प्रक्रिया आरंभ हुई। भारतीय पूँजीवाद और साम्राज्यवाद दोनों को पददलित और ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ विराजमान हुआ। प्रेमचन्द ने स्वयं कहा है कि इन कुरीतियों का कारण पाश्चात्य सभ्यता का आविर्भाव है -

"इन कुरीतियों के प्रथाओं तथा अन्धविश्वासों का कारण पाश्चात्य

सभ्यता तथा संस्कृति का संपर्क भी रहा है ।" अंग्रेज़ी शासन ने भारतीय भाषाओं में आधुनिक साहित्य के उत्थान के लिए काम किया । हिन्दी साहित्य उन्नीसवीं सदी के आरंभ से ही अंग्रेज़ों के संपर्क में आ गया था । लेकिन उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही उससे प्रभावित होने का अवसर मिला । ईस्ट इन्डिया कंपनी हिन्दी साहित्य को संपन्न बनाने में सहायक नहीं निकली । डेढ सौ वर्षों की अराजकता और अशान्ति के बाद अंग्रेज़ी शासन ने हिन्दी साहित्य के नवनिर्माण के लिए अवसर प्रदान किया । अंग्रेज़ों के शासनकाल में विदेशी आक्रमण बन्द हो गया । घर घर में शान्ति आ गई । इस परिस्थिति में हिन्दी लेखकों को भारतवासियों के भूत, वर्तमान और भविष्य पर चिन्ता करने का अवसर मिला । इस सिलसिले में अंग्रेज़ी शासन के गुण दोषों पर भी वे विचार करने लगे । धार्मिक सहिष्णुता याता यात की सुविधा, नवीन शिक्षा प्रणाली, राजनीतिक एकता आदि अंग्रेज़ी शासन की खासियत थी । इसलिए लेखकों ने अपने लेखों में अंग्रेज़ी शासन की प्रशंसा की । अंग्रेज़ी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के फलस्वरूप शिक्षित समाज को साहित्य का उपयोगवादी दृष्टिकोण मालूम हुआ । अंग्रेज़ों का प्रभाव गद्य साहित्य पर पडा । निबन्ध, नाटक, उपन्यास आदि गद्य के रूपों पर रचना होने लगी । उपन्यास में असंभव के स्थान पर सम्भव को स्थान मिला । कविता, नाटक और निबन्धों की अपेक्षा उपन्यासों की संख्या कम थी । अब तक उपन्यास के संबन्ध में लेखकों की धारणा अस्पष्ट थी ।

---

1. बीसवीं शताब्दी : हिन्दी उपन्यास नये दो पहलू -
श्री. नारायण सिंह
लोकवाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1976, पृ.46

लाला श्रीनिवासदास कृत परीक्षा गुरु को आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने पहला मौलिक उपन्यास माना । हिन्दी उपन्यास के विकास में इसका महत्त्व बडा है । विचार गांभीर्य या जीवन का गहरा अध्ययन उसमें नहीं है । उन्होंने प्रेम की संकुचित परिधि से बाहर आकर जीवन के अन्य पक्षों को अपने उपन्यास में समेट लिया । प्रेमचन्द के लिए यही भूमिका हिन्दी उपन्यास साहित्य में तैयार थी ।

इस युग में दूसरा मुख्य स्थान पं॰बालकृष्ण भट्ट का है । उन्होंने दो उपन्यास लिखे । "सौ अजान एक सुजान" और नूतन ब्रह्मचारी कला की दृष्टि से नहीं, नैतिक शिक्षा की दृष्टि से ही ये उपन्यास लिखे गये । "सौ अजान एक सुजान" का कथानक लगभग परीक्षागुरु का सा है । संपन्न कुल का पुत्र चाटुकारी मित्रों के संग में पड जाता है और गलत रास्ते पर चलता है । किसी साधु मित्र के प्रभाववश उसका उद्धार होता है । उनके दूसरे उपन्यास में किशोर विनायक राव के निष्कलंक चरित्र की महिमा का वर्णन किया गया है । और उससे प्रेरणा लेने का आग्रह भी किया है ।

भट्ट जी के इन उपन्यासों की विशेषता यह है कि उसमें यथार्थ चित्रण की ओर काफी झुकाव मिलता है । इसलिए उपन्यासकला की दृष्टि से इन उपन्यासों का कुछ महत्त्व माना जाता है । भट्टजी स्वयं एक स्पष्टवादी कवि हैं । उनके इस आत्मवाद का कुछ छाप "सौ अजान एक सुजान" में दीख पडना संभव है । पात्रों और भावों के अनुकूल उनकी भाषा भी बदलती है । देशकाल पर भी उन्होंने पर्याप्त ध्यान रखा है । अनुभवज्ञान उनमें अधिक मात्रा में है । कभी कभी उनके पात्र जीवन्त होकर सामने आते हैं । व्यंग्य का प्रयोग करने में भी वे पीछे नहीं । समाज के पूंजीपतियों के प्रति प्रेमचन्द की कृतियों में दीख पड़नेवाले व्यंग्य का स्रोत यहीं से मिलता है ।

श्री॰ राधाकृष्ण दास ने अपनी सोलह वर्ष की आयु में "निस्सहाय हिन्दू" नाम्क उपन्यास लिखा । इसके शीर्षक से ही मालूम किया जा सकता है कि इसमें जातीयता का गहरा पुट है । समाज की सामान्य समस्याओं का उल्लेख भी इसमें किया गया है । भारतेन्दु की भारत दुर्दशा और भारत जननी का मूलस्वर अपने उपन्यास में भट्टजी ने मुखरित किया है । आलसी भारतवासियों की दुस्थिति का वर्णन इसमें दीख पड़ता है । उमसे अनुबद्ध होने का आह्वान भी इसमें है । इस उपन्यास के द्वारा निम्न वर्ग को पहली बार पाठकों के सम्मुख लाया गया । अब्दुल असीम और उसकी पत्नी गोवध निवारण के श्रम में अपनी जान खो देते हैं । इस प्रकार लेखक जातीय धरातल से उठकर सांस्कृतिक स्तर पर आ पहुंचे हैं ।

ऊपर कहे जीन उपन्यासकारों की अपेक्षा इस धारा के और कुछ उपन्यासकार भी हैं । उनमें श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", लज्जाराम मेहता आदि भी उल्लेखनीय है । लज्जाराम मेहता ने "धूर्त रसिकलाल" और "स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी" आदि उपन्यास लिखे ।[1] हरिऔध जी के दो उपन्यास हैं । ठेठ हिन्दी का ठाट और अधखिला फूल । इसमें विषय वस्तु की अपेक्षा भाषा का सौष्ठव ही खूब दिखाई देता है । लज्जाराम मेहता के और कई उपन्यास मिलते हैं - आदर्श दंपति, हिन्दू गृहस्थ, बिगडे का सुधार, आदर्श हिन्दू आदि । इनमें लेखक का आदर्शवाद ही स्पष्ट दीख पड़ता है ।

---

1. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - शिवदानसिंह चौहान
राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ॰167

मनोरंजन प्रधान उपन्यास

उपदेश प्रधान उपन्यासों के समान मनोरंजन प्रधान उपन्यास भी इस युग में प्रवाहित हुए । इस युग में सस्ते साहित्य की माग बढ गई । देवकी नन्दन खत्री के चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता सन्तति को पढने के लिए अनेक लोगों ने हिन्दी पढ़ी । इस उद्दाम प्रवाह के रुख को मोडने की शक्ति किसी में नहीं थी । वह कार्य प्रेमचन्द ही संपन्न कर सके ।

विषय वस्तु के अनुसार मनोरंजन प्रधान उपन्यासधारा की कई शाखाएं की जा सकती हैं । उनमें से एक है तिलस्मी ऐयारी उपन्यास । तिलस्मी ऐयारी उपन्यासकारों में श्री हरिकृष्ण जौहर और श्री॰ दुर्गाप्रसाद खत्री का नाम उल्लेखनीय है । "किशोरीलाल के प्रसिद्ध उपन्यास "ताराबाई" में तिलस्म और ऐयारी के चमत्कार पाये जाते हैं[1] ।"

जासूसी डकैती उपन्यास

तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों के पश्चात् दूसरी महत्वपूर्ण धारा जासूसी उपन्यासों की है । "जासूसी उपन्यास कोरे मनोरंजन के लिए ही नहीं लिखे जाते वरन् उनके गर्भ में एक प्रयोजनीय उद्देश्य छिपा रहता है जिसके द्वारा लोग सुगमता से अच्छे बुरे लोगों की पहचान करने में समर्थ हो जाते हैं[2] ।" कुछ उपन्यासों में डाका

---

1. हिन्दी और तेलुगु के स्वातंत्र्यपूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ॰चलसानि सुब्बाराव
   प्रगति प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण, 1970, पृ॰80
2. महासमरोत्तर हिन्दी उपन्यासों में जीवन दर्शन - डॉ॰कलावती प्रकाश, श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1987

डालनेवाले नायक वीर चित्रित किये गये क्योंकि उनका काम था अमीरों की डकैती करके असहायों की सहायता करना । इन उदार हृदय डाकू लोगों को वीर और अभिमानी माना जाता था । लेकिन उसके लिए चुना हुआ मार्ग नैतिक नहीं था । इन उपन्यासों की शैली पुराने कहानी कहनेवालों जैसी है । वे प्रत्येक बात का स्पष्टीकरण करते हुए उपदेश दान देते चलते हैं । पात्रों का संभाषण यत्र तत्र करा दिया जाता है और पात्र उपन्यास में यंत्र चालित रहते हैं । वे गुण अथवा दोष विशेष के प्रतीक मात्र हैं । उनमें व्यक्तिगत विशेषताएं नहीं आ पातीं ।

श्री गोपालराम गहमरी

जासूसी उपन्यास घटना प्रवाह को जीवन के निकट ले आये और एक नयी प्रवृत्ति को जन्म दिया । श्री० महेन्द्र चतुर्वेदी की राय में "जासूसी उपन्यासों की धारा में मूर्धन्य प्रवृत्ति श्री० गोपालराम गहमरी हैं[1] ।" पूर्व प्रेमचन्द काल में गोपाल राम गहमरी के मौलिक एवं अनूदित उपन्यासों की संख्या कदाचित सर्वाधिक है । इनके उपन्यास "जासूस" मासिक के रूप में प्रकाशित होते रहे हैं[2] ।" गहमरी जी ने कुल मिलाकर करीब 150 उपन्यासों की रचना की । उनके उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है घटनाओं का कुशल संयोजन । अपने उपन्यासों में कुतूहल बनाये रखना गहमरी जी का आग्रह था । इनके उपन्यासों ने यथार्थ का वातावरण सृजन किया है । युग की सुधार प्रवृत्ति की छाप भी इनके उपन्यासों में स्पष्ट है । उन्होंने घटनाओं को इस तरह गुंफित किया कि पढनेवाले उन्हें सच ही मानें

---

1. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी
   नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.34
   फरवरी 1962
2. हिन्दी उपन्यास - सृजन और सिद्धान्त - नरेन्द्र कोहली
   वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989, पृ.11

और आस्था से पढकर मूल उद्देश्य को सफल बनावें । इस यथार्थवाद के संबन्ध में उन्होंने कहा है - "यथार्थवाद के संबन्ध में गहमरी जी का अभिमत है कि जगत में होनेवाली घटनाओं को इस तरह गुंफित करना कि पढनेवाले उसे सच्चा समझकर उसकी बातों पर आस्था रखकर पढें।[1]"

दुर्गाप्रसाद खत्री

श्री· दुर्गाप्रसाद खत्री भी इस युग के एक उपन्यासकार हैं । श्री· देवकी नन्दन खत्री का पुत्र हैं वे । उन्होंने पिता की अधूरी कृति "भूतनाथ" को पूर्ण किया । वे सामयिक परिस्थितियों को अपने उपन्यासों में खूब प्रधानता देते रहे । लाल पंजा, प्रतिशोध, रक्तमंडल, सफेद शैतान - ये इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं ।

पूर्व प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों का विवेचन करने पर विषय वस्तु की दृष्टि से दो प्रकार के उपन्यास और मिलते हैं । प्रेमाख्यानक और ऐतिहासिक कथानक और चित्रण पद्धति की दृष्टि से प्रेमाख्यानक उपन्यासों को मनोरंजन प्रधान उपन्यासों में परिगणित किया जा सकता है । समाज की कोई समस्या या निरूपण इसमें नहीं है । अत: मनोरंजन प्रधान उपन्यासों के बीच में ही इसकी गणना की जा सकती है । भाव की प्रधानता रखनेवाले कुछ उपन्यास भी इस काल में रखे गये । उपदेश या मनोरंजन इसमें लक्षित नहीं होता । ठाकुर जगमोहनसिंह के "श्यामा स्वप्न", व्रजनन्दन सहाय के सौन्दर्योपासक और राधाकान्त इस तरह के उपन्यास हैं । "श्यामा स्वप्न" प्रकृति की वैभवपूर्ण संपूर्ण रचना है । इसका प्रकृतिवर्णन कवि हृदय की भावमयता और तल्लीनता को व्यक्त करता है ।

1· हिन्दी उपन्यास-उद्भव और विकास - डॉ·सुरेशसिन्हा
अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1965, पृ·83

पूर्व प्रेमचन्द युग के और दो विशिष्ट उपन्यास "सौन्दर्योपासक" एवं "राधाकान्त" में गीतिकाव्य की तरलता और भावना विद्यमान है । सौन्दर्य के प्रति मानव मन के आकर्षण का सुन्दर वर्णन "सौन्दर्योपासक" में हम पाते हैं । आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ एक उपन्यास है "राधाकान्त" । यह उपन्यास दो व्यक्तियों के जीवन से संबन्धित है । इस युग की ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के बारे में डा॰ शशिभूषण सिंहल ने यों लिखा है - "इनमें प्रेम, चरित्र की उच्चता तथा जातीय गौरव का चित्रण है[1] ।"

ऐतिहासिक उपन्यास के नाम पर तिलस्मी ऐयारी, जासूसी एवं प्रेम प्रसंगों का अवतरण ही किया गया । ऐतिहासिक उपन्यासकारों की सूची में श्री किशोरीलाल गोस्वामी का नाम ही उल्लेखनीय है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके उपन्यासों के बारे में लिखा है - "इनकी रचनाएं साहित्य की कोटि में आती हैं । इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूप-रंग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोडा बहुत चरित्र चित्रण ही अवश्य पाया जाता है ।" शुक्लजी ने इन्हें द्वितीय उत्थानकाल का एकमात्र उपन्यासकार माना है ।

युग की सब औपन्यासिक प्रवृत्तियों को उन्होंने अपनी कृतियों में कर दिया । "सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी-ऐयारी, जासूसी, प्रेमाख्यानक - सभी प्रकार के उपन्यासों की रचना उन्होंने की[2] ।" लगभग 65 उपन्यासों की रचना उन्होंने की है ।

---

1. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां - डा॰ शशिभूषण सिंहल
   विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्रथम संस्करण 1970, पृ॰26
2. उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकार - विश्वंभर मानव
   स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1970, पृ॰58

गोस्वामी जी के उपन्यासों का आरंभ रीतिकालिक परंपरा के अनुसार हुआ । रीतिकालीन श्रृंगार चेतना उपन्यासों में स्पष्ट हुई है । वैष्णव वातावरण में पले होने के कारण धार्मिक विश्वासों के प्रति आस्था उनमें थी । बहुविवाह का विरोध उन्होंने किया है । मुसलमानों के प्रति उदारभावना उन्हें नहीं थी । अंग्रेज़ों को मुसलमानों की अपेक्षा उन्होंने खूब सहन किया है । प्रेम का वर्णन करते समय कहीं कहीं उदात्त वासना को खूब प्रकट किया है । अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में उन्होंने बताया है कि सुख में उल्लसित होना और दुख में हताश होना कभी उचित नहीं ।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि गोस्वामी जी के उपन्यास सफलता और विफलता के सम्मिश्रित रूप हैं ।

प्रेमचन्द युग {सन् 1916 - 1936}

हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द का उदय एक युगान्तरकारी घटना है । कथासाहित्य की दृष्टि से उनकी महत्ता अपरिमेय है । प्रतिदिन के जीवन की साधारण घटनाओं की प्रधानता को पाठकों ने पहली बार प्रेमचन्द के उपन्यासों में पाया । उनकी इस नयी दृष्टि के कारण दुनिया ने उन्हें उपन्यास-सम्राट का नाम दिया । "प्रेमचन्द उपन्यास को मानव चरित्र का चित्रमात्र समझते हैं । उनके मत में मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है ।"[1] प्रेमचन्द के सारे उपन्यास जीवन की आलोचना प्रस्तुत करते हैं । राष्ट्रीय जीवन की एक हलकी तरंग तक उनकी पैनी दृष्टि से बच नहीं सकी । "दरिद्र मज़दूर से लेकर

---

1. रंगभूमि - संक्षिप्त संस्करण - प्रेमचन्द
 सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1962, पृ. 18

उच्च वर्ग के उच्चतम व्यक्तियों तक के चरित्र और चित्र प्रेमचन्द जी ने दिये हैं।[1]" इसका कारण तो यह था कि प्रेमचन्द के युग में "सारे देश में भयंकर गरीबी छाई हुई थी, पर गरीबों के साथ वास्तविक सहानुभूति किसी के हृदय में नहीं थी[2]।"

भारत का राष्ट्रीय जागरण और साहित्य क्षेत्र में प्रेमचन्द का पदार्पण ये दोनों समवर्ती घटनाएं हैं। राजनीतिक आन्दोलनों के कारण भारतीय समाज प्रक्षुब्ध हो उठा था। उसी समय सामाजिक कुरीतियां, भेदभाव एवं राजनीतिक परतंत्रता के विरुद्ध प्रेमचन्द ने अपनी कलम उठायी। उनके साहित्य में इस युग का सजीव प्रतिबिंब हम देख सकते हैं। डॉ॰ कलावती प्रकाश ने प्रेमचन्द के साहित्य के बारे में कहा है कि "जीवन में उच्चतम मानवमूल्यों की स्थापना के लिए ही उन्होंने साहित्य का सहारा लिया था[3]।" इस प्रकार अपनी दृष्टि को यथोचित विस्तार देते चलना किसी साधारण साहित्य स्रष्टा के वश की बात नहीं थी। लेकिन प्रेमचन्द ने अद्भुत सामर्थ्य से इस कार्य का सफलतापूर्वक संपादन किया।

मध्यवर्ग और कृषक वर्ग की आर्थिक दशा का यथार्थ ज्ञान हमें प्रेमचन्द के उपन्यासों से होता है। प्रेमचन्द स्वयं मध्यवर्ग के व्यक्ति थे। अतः उनकी कमजोरियों एवं विशेषताओं से वे स्वयं अवगत थे। उनके उपन्यासों में इन्हीं का वर्णन हुआ है। प्रेमचन्द के ग्यारह उपन्यास पाये जाते हैं। सेवासदन, वरदान, प्रेमाश्रम,

---

1. हिन्दी उपन्यास विवेचन - डॉ॰सत्येन्द्र
कल्याणमल एण्ड सन्स, जयपुर, प्रथम संस्करण 1968
2. हिन्दी उपन्यास - युगचेतना और पाठकीय संवेदना -
डॉ॰ मुकुन्द द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1970 ई, पृ॰81
3. महासमरोत्तर हिन्दी उपन्यासों में जीवन दर्शन - डॉ॰कलावती प्रकाश, श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1987, पृ॰28

रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र ।

प्रेमचन्द हिन्दी उपन्यासकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं । उनका गोदान हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है । वे गान्धीवाद के प्रबल समर्थक हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में आदर्श चरित्र की सृष्टि की है । प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर, रंगभूमि में सूरदास, कायाकल्प में चक्रधर और कर्मभूमि में अमरकान्त ऐसे ही पात्र हैं । इन चारों के जीवन का आदर्श गान्धीजी के आदर्शों की आधारशिला पर प्रतिष्ठित है । प्रेमचन्द मानते थे कि देश की उन्नति मज़दूरों की अपेक्षा किसानों पर निर्भर है । अपनी कहानियों में किसानों के अनेक चित्र उन्होंने उतारे । होरी के रूप में एक अच्छे किसान का पूर्ण चित्र उन्होंने खींचा है । देशव्यापक स्वतंत्रता आन्दोलन को अपने कथासाहित्य की सृष्टि से उन्होंने उज्वल किया । उस समय समाज में प्रचलित कुप्रथाओं और हानिकारक प्रवृत्तियों पर उन्होंने प्रहार किया । उन्होंने दहेज और आभूषण प्रेम पर भी गंभीर विचार किया । उसी प्रकार विधवा विवाह और वेश्यावृत्ति जैसे ज्वलन्त प्रश्नों पर भी उन्होंने अपनी तूलिका चलायी । चर्खा चलाना, विदेशी कपडों को जलाना, शराब की दूकानों पर धरना देना, अनशन करना, जेल जाना आदि प्रसंग उनके उपन्यासों में पाये जाते हैं जिनका अनुकरण आज भी लोग करते हैं । जमीन्दारों के विरुद्ध किसानों का आन्दोलन, उद्योगपतियों के विरुद्ध जनता का आन्दोलन आदि राष्ट्रीय आन्दोलनों की चिनगारियों से उनके उपन्यास भरे पडे हैं ।

"सेवासदन" उनका सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास है । वेश्यावृत्ति का विश्लेषण उसमें किया गया है । "सेवासदन" ने न केवल प्रेमचन्द को हिन्दी उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित किया था

बल्कि हिन्दी उपन्यास के विकास की दिशा भी निर्धारित की थी[1]।"

"सेवासदन" की नायिका है सुमन। उसके जीवन के चित्रण से उन्होंने समझाया है कि कोई भी स्त्री वेश्या क्यों बन जाती है। उसी प्रकार हिन्दुओं में दहेज की प्रथा एक घातक प्रथा है। अपनी पुत्री सुमन के विवाह के लिए दारोगा कृष्णचन्द्र को रिश्वत लेनी पड़ती है और वह जेल जाता है। फलस्वरूप सुमन का विवाह एक निम्न श्रेणी के युवक से होता है और उनका दांपत्य जीवन विषमय हो जाता है। वह गृहिणी वेश्या बन जाती है। सेवासदन में प्रेमचन्द जी ने वेश्या समस्या और दहेज की समस्या इन्हीं दो सामाजिक समस्याओं का ज्वलन्त चित्र प्रस्तुत किया है। इनका सुधार करना ही प्रेमचन्द का लक्ष्य था। इसके लिए उन्होंने कई उपायों को अपनाया। एक था वेश्यागामियों को समझाना। दूसरा उपाय था वेश्याओं को सार्वजनिक स्थानों से हटाना और उन्हें उत्सवों में सम्मिलित होने न देना। तीसरा उपाय था उन्हें आर्थिक सहायता देकर उन्हें नारकीय जीवन से मुक्त करना। चौथा उपाय था वेश्याओं को विधवाश्रम में स्थान देना और उन्हें निर्माणात्मक कार्यों में लगा देना। सेवासदन में सुमन के अन्तर्द्वन्द्व का विकास और उसके चरित्र का उत्थान पतन बहुत सुन्दर रहा है।

"प्रेमाश्रम" की कहानी अंग्रेज़ी शासन के समय बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के भारतीय जीवन की सजीव कहानी है। किसानों को आतंकित करनेवाले स्वेच्छाचारी कर्मचारियों की कहानी इसमें है।

---

1. हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार - डॉ॰ रवेलचन्द आनन्द
   सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1978, पृ॰13

पुलीस और अदालत तक को उन्होंने चूस लिया है । दारोगाओं ज़मीन्दारों वकीलों डाक्टरों यहाँ तक कि चपरासियों के अत्याचारों से भी बचने का मार्ग कहीं नहीं दिखाई देता । "प्रेमाश्रम में अनेक स्थल में मानसिक विकारों की तस्वीर खींचने में प्रेमचन्द जी बंकिम बाबू से कहीं बढ गये हैं[1] ।" प्रेमाश्रम का वास्तविक संघर्ष जमीन्दारों और किसानों के बीच का है । इस बाहरी संघर्ष के साथ हिंसा और अहिंसा, अत्याचार और प्रेम आदि आन्तरिक संघर्ष भी चलते रहते हैं । ज्ञानशंकर हिंसा, अत्याचार और नीचता का प्रतीक है । और उसका भाई प्रेमशंकर अहिंसा, प्रेम और उच्चाशय की प्रतिमूर्ति है । उपन्यास का वास्तविक संघर्ष सत् और असत् का है जिसमें सत् की विजय होती है। जमीन्दारी प्रथा के बदनाम होने के कारण उससे चिपके हुए हैं । अप्रसन्न होने पर गरीबों को पिटवाना, जमीन छुडा देना, घर में आग लगवा देना, झूठे जुर्म में फँसाकर मुकद्दमा चलवाना, जेल में डलवाकर किसानों को सताना आदि उसके कारण थे । ज्ञानशंकर में दीख पडनेवाली सारी दुर्बलताएं स्वार्थ, द्वेष, संकीर्णता, क्रूरता, छल, ढोंग, चरित्र-हीनता लोभ से उद्भूत हैं । अन्त में लोभ ही उसे डुबा देता है ।

"रंगभूमि" प्रेमचन्द का बहुत बडा उपन्यास है । यदि "गोदान" की रचना न होती तो प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानी के पद पर रंगभूमि को ही रखा जाता । इसलिए गोदान के बाद श्रेष्ठ उपन्यास का स्थान रंगभूमि का है । "प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों की तरह इस बृहत उपन्यास में भी वर्तमानकाल की सामाजिक दशाओं का स्वाभाविक चित्र अंकित किया गया है[2] ।" उपन्यास का घटनास्थान

1• प्रेमाश्रम - प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन, अनुवचन, प्रथम संस्करण 1981, पृ•5

2• रंगभूमि - प्रेमचन्द, संपादक का वक्तव्य, पृ•5
अध्यक्ष गंगा - पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, संवत् 2018

काशी के पास पाडेपुर की एक छोटी बस्ती है । सूरदास यहीं रहता था । जन्म से अन्धा एक चमार भिखारी सूरदास ही कथा का नायक है । वह अन्याय को बिलकुल सहन नहीं कर सकता था । कर्तव्य से वह कभी पीछे नहीं हटता । वह अपने जीवन में सन्मार्ग पर ही चला । उसका आत्मबल उसके चरित्र की बडी शक्ति रही । उद्योगवाले और उसके विरोधी - इस प्रकार दो तरह के लोग इस उपन्यास के दो पक्ष हैं । मि.जॉन सेवक औद्योगीकरण के समर्थक हैं । राजा, रईस तथा सरकार उसका साथ देती है । पाडेपुर के निवासी इसका विरोध करनेवाले हैं । उनके नेता हैं सूरदास जो गाँव की आत्मा है । इसके साथ विनय, सोफिया और क्लार्क की प्रणय गाथा भी इसमें है । प्रेमचन्द ने एक ईसाई लड़की को पहली बार उपन्यास की मुख्य पात्री के रूप में चित्रित किया है ।

गान्धीवाद का प्रभाव इस उपन्यास में स्थान स्थान पर मिलता है । सूरदास महात्मा गान्धी का प्रतीक ही है । निराश्रित को आश्रय देने, पाप से घृणा करने, सत्य के प्रति आग्रह रखने, क्षमा को प्रदर्शित करने में सूरदास अग्रगण्य हैं ।

प्रेमचन्द के "कायाकल्प" में शीर्षक की उपयुक्तता है । कायाकल्प का अर्थ है आत्मा और शरीर की परिपूर्ण सुन्दरता । एक कट्टर हिन्दू, एक कट्टर मुसलमान और एक उदार गान्धीवादी इन तीनों को लेकर सांप्रदायिक भावना को भी इसमें व्यक्त किया है । एक गाय को लेकर हिन्दू और मुसलमान दोनों में झगडा होता है । ख्वाजा महमूद को यह बात मालूम होती है कि एक तीसरी शक्ति ही उन दोनों को लडाती है । इसके बाद उन्होंने अपनी विशाल हृदयता को प्रकट किया है । चक्रधर तो गान्धीवाद की आस्था, गाँवों की जागृति, सांप्रदायिकता और छुआछूत से बढ़कर ऊँची भावना, लौकिक वैभव से घृणा, जीवन सादगी का स्वीकार - इन आदर्शों का प्रतीक है ।

इस ग्रंथ में एक ओर अनंत यौवन प्राप्त करने की नारी की कामना और दूसरी ओर पुरुष की वास्तविक सुख की खोज है । इस प्रकार कायाकल्प प्राणी के बाह्य और आन्तरिक रूपान्तर की कहानी है ।

स्त्रियों के आभूषण प्रेम को लेकर लिखा गया एक समस्या प्रधान उपन्यास है "गबन" । गबन की स्त्री कथापात्र निम्न मध्यवर्ग की है । इस विभाग की स्त्रियों में आभूषण प्रेम की लालसा होने का कारण डॉ॰ चन्द्रबाबू ने बताया है - "निम्न मध्यवर्ग आमदनी की दृष्टि से निम्न वर्ग के निकट होते हैं । सामाजिक संबन्धों की दृष्टि से उच्च वर्ग का नैकट्य पाने की लालसा मन में लिए रहता है । जिस अंग्रेज़ी-शिक्षा ने मध्यवर्ग को जन्म दिया है उसी ने उसमें नागरसभ्यता की प्रदर्शन प्रियता भी भर दी है ।[1]" "इसमें मध्यवर्गीय समाज की विभिन्न समस्याओं का कलात्मक अंकन है" - श्री व्रजभूषण सिंह का कथन है । उपन्यास में पाँच कुटुंब हैं - मानकी, दीनदयाल, जागेश्वरी-दयानाथ, जालपा-रमानाथ, रतन-वकील साहब और जग्गो-देवी दीन । पाँचों स्त्रियाँ आभूषण-प्रेम में डूबी हुई हैं । इनमें से जग्गो बुढिया है, मानकी और जागेश्वरी प्रौढाएं हैं, जालपा और रतन युवतियाँ हैं । गरीब हो या अमीर, युवती हो या बूढी यदि वह स्त्री है तो उसके हृदय में गहने पहनने की लालसा बनी रहती है ।

स्त्री हृदय की इस हीन लालसा पर व्यंग्य करने के लिए प्रेमचन्द जी ने जालपा को चुन लिया । बचपन से लेकर जालपा को एक आभूषण प्रेमी बनाने की परिस्थिति ही प्रेमचन्द जी ने सजायी ।

---

1. हिन्दी उपन्यास - विविध आयाम, पृ॰ 11
   डॉ॰ चन्द्रभानु सोनवणे, पुस्तक संस्थान, कानपूर, संस्करण 1977

अन्य सद्गुणों के स्थान पर आभूषण प्रेम से उसका हृदय भर दिया । बचपन में गुड़ियों के खेल में, स्त्रियों की सभा में, लड़की को साथ बिठाकर की गई चर्चा में, खिलौनों के स्थान पर आभूषणों को प्रमुखता देते हुए जालपा के छोटे से मन में आभूषणों के प्रति अतिमोह जागृत कर दिया । ससुराल आने पर जालपा अपने पति रमानाथ को हज़ारों रुपये के गहने उधार लाने को विवश करती है । तीस रुपये का नौकर विवश होकर उसकी इच्छा की पूर्ति करता है और स्वयं पतन के गर्त में गिर जाता है । जालपा ने सौन्दर्य को बढ़ाने और समाज का आदर प्राप्त करने केलिए ही आभूषणों की इच्छा की थी ।

इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में किसानों की समस्या भी चित्रित है । जमीन्दार को लगान देने में किसान कष्ट उठाते हैं । तब उनकी रक्षा करने केलिए जनजागृति होती है । प्रजा के सामने सरकार झुकती है और जनता की विजय होती है ।

इन प्रश्नों के अलावा नारी के मान की रक्षा, अछूतों का मन्दिर प्रवेश, ग्राम सुधार आदि समस्याएं भी इसमें हैं ।

कर्मभूमि में धर्म, समाज, शिक्षा आदि को लेकर अनेक समस्याएं आयी हैं । इससे मनुष्य के जीवन में कर्म के महत्व और सौंदर्य पर प्रकाश पड़ता है । "कर्मभूमि" मनुष्य जीवन में कर्म गौरव को प्रतिपादित करनेवाला एक प्रेरणाप्रद उपन्यास है ।

"गोदान" भारतीय संस्कृति और लोक परंपरा को साथ लेकर चलनेवाले भारतीय कृषक वर्ग के संघर्षरत जीवन की तपस्या का

यथार्थ चित्र है[1]।" इसके कथापात्र मध्यवर्ग के हैं। इसमें "वर्ग वैषम्य के कारण उत्पन्न असन्तोष और विद्रोह की चेतना विद्यमान है[2]।" गोदान का नायक किसान होरी सभी का पेट भरने में सदा व्यग्र है, पर अपनी एक सामान्य इच्छा को पूर्ण करने में असमर्थ होकर मृत्यु का शिकार बनता है। पापियों को क्षमादान देनेवाला, आपत्ति में पडनेवालों को शरण देनेवाला होरी स्वयं कितना निराश्रय है यह दिखाना ही गोदान का लक्ष्य है।

होरी भारतीय किसान का प्रतीक है। उसके जीवन की सबसे बडी अभिलाषा है गाय को अपने द्वार पर बांध देना और उस प्रकार घर की शोभा बढाना और प्रातःकाल उसके दर्शन कर कृतकृत्य हो जाना। कर्ज के कारण वह खूब दरिद्र बन चुका था। इस घोर दरिद्रता में भी उसकी उदारता सराहनीय है। धनिया होरी की पत्नी है जिसका चरित्र होरी से मिला हुआ है। वह जीवन के अन्त तक होरी के सुख दुख में भाग लेती रहती है।

ग्राम्य जीवन का सफल चित्रण गोदान में हुआ है। मानव जीवन के बहुत से पहलुओं पर इसमें विचार किया गया है। किसान, जमीन्दार, मिलमालिक, थानेदार, मजदूर, प्रोफसर, संपादक सभी अपने वास्तविक रूप में आते हैं। गोदान के ज़मीन्दार संपन्न होने पर भी सुखी नहीं है। गोदान प्रेमचन्द की प्रौढतम एवं श्रेष्ठतम कृति है। यह उपन्यास उनकी कीर्ति का अमर स्मारक है।

---

1. गोदान - प्रेमचन्द, पृ.1, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1936
2. प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास - डॉ.बदरी प्रसाद ओम प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987

यह तो स्पष्ट है कि प्रेमचन्द के उपन्यास उच्चतर उद्देश्यों की सिद्धि करते हैं । वे अन्याय, संकीर्णता, आलस्य और अज्ञान से मनुष्य को शान्ति और प्रेम की ओर पहुँचाकर कर्मनिरत बना लेते हैं । अन्य उपन्यासकारों के बीच प्रेमचन्द हिमगिरी की उच्चतम कोटि पर खडे दिखाई देते हैं ।

"कायाकल्प" प्रेमचन्द की अन्तिम कृति है । भौतिक तत्व और आध्यात्मिक तत्व दोनों इस कृति में उन्होंने गुम्फित किया है । कायाकल्प के चक्रधर के जरिए प्रेमचन्द ने वर्ग स्वार्थों की जड शक्ति का परिचय दिया है । साथ ही साथ सामन्ती वातावरण में पलित वासना की चिर अतृप्ति का भीषण चित्र इसमें खींचा है । रानी देवप्रिया अपने विनष्ट यौवन की पुन:प्राप्ति के लिए तरह तरह का उपचार करती है । विशाल सिंह तीन रानियों के जीवित रहते मनोरमा का पाणिग्रहण करते हैं ।

वैवाहिक जीवन की सुखसिद्धि के लिए आत्मार्पण की ज़रूरत पर प्रेमचन्द ने ज़ोर दिया है । हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या का काफी विस्तार भी अपनी इस कृति में उन्होंने किया है ।

प्रेमचन्द के जीवनदर्शन को हम एक शब्द में कहें तो उन्हें मानवतावादी साहित्यकार कह सकते हैं ।

प्रेमचन्द की समकालीन चेतनाएं

प्रेमचन्द कालीन क्रियाशीलता और उत्कर्ष के फलस्वरूप अनेक छोटी बडी प्रतिभाएं सजग होकर हिन्दी के उपन्यास साहित्य का भण्डार भरने लगीं । पर प्रेमचन्द के साहित्यिक व्यक्तित्व ने

मानों उनके यश को आच्छन्न कर दिया । इनमें कुछ उपन्यासकार प्रेमचन्द के प्रभाववृत्त में सिमट कर रहे । तो कुछ ने उनकी नैतिक विचार धारा के विरुद्ध विद्रोह का स्वर मुखरित किया । और समाज के यथार्थ एवं कुत्सित चित्र सामने प्रस्तुत किये । इस युग के उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, ऋषभ चरण जैन, भगवती प्रसाद बाजपेयी, निराला, राजा राधिका रमणसिंह, सियाराम शरण गुप्त, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, गोविन्द वल्लभ पन्त, वृन्दावनलाल वर्मा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । प्रेमचन्द के बाद अनेक उपन्यासकारों में प्रमुख नाम हैं - भगवती चरणवर्मा, सियारामशरण गुप्त, सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय", यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, उपेन्द्र नाथ अश्क, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अंचल, अनूपलाल मंडल, उदयशंकर भट्ट, रामचन्द्र तिवारी, रांगेय राघव आदि ।

<u>जयशंकर प्रसाद</u>

प्रेमचन्द के समकालीन उपन्यासकारों में प्रसाद का स्थान महत्वपूर्ण है । बहुमुखी प्रतिभा रखनेवाले प्रसाद का ध्यान उपन्यास की ओर बहुत बाद ही गया । कंकाल और तितली उनके दो उपन्यास हैं । इरावती भी उनका एक ऐतिहासिक उपन्यास है जो अधूरा ही रह गया ।

"कंकाल" प्रसादजी का पहला उपन्यास है जिसमें उन्होंने व्यक्ति की स्वतंत्रता की आवाज उठायी है । समाज के नियमों में कसकर व्यक्ति का जीवन कराह उठा है । वे उसका स्वस्थ विकास अनिवार्य मानते हैं । धर्म के नाम पर फैले हुए अनाचार पर ही प्रसाद जी ने विचार किया है । कंकाल में रूढि और परंपरा में बन्धे हुए समाज में सहज स्वस्थ व्यक्ति-विजय - का अन्त समाज के लिए एक चुनौती है ।

प्रसाद का दूसरा उपन्यास है "तितली"। यह बहुत हद तक प्रेमचन्द के कलातत्व से निर्मित रचना है। भारतीय जीवन की वास्तविकता को प्रतिबिंबित करनेवाले ग्राम ही "तितली की रंगभूमि" है। भारतीय ग्रामों की समस्या और भारतीय कुटुंबों की समस्या - तितली की दो मुख्य समस्याएं हैं। प्रेमचन्द के समान प्रसाद ने भी गांवों का चित्रण किया है। दरिद्र किसानों के प्रति उनकी पूरी सहानुभूति है।

वृन्दावनलाल वर्मा

श्री• वृन्दावनलाल वर्मा की ख्याति मुख्यत: ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में है। सामाजिक उपन्यास भी उन्होंने खूब लिखे हैं। राष्ट्रीय पृष्ठभूमि को लेकर लिखे गये उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं - झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, टूटे कांटे और माधवजी सिन्धया। महारानी लक्ष्मीबाई की कथा विदेशी लुटेरों के विरुद्ध भारतीयों का शक्ति प्रकटन और भारतीय नारी की वीरगाथा है। भारतीय संस्कृति और एकता को आधार बनाकर सारे देश में फैलायी क्रान्ति का आह्वान "माधवजी सिंधया" में है। "टूटे कांटे" में मराठों और मुसलमानों के संघर्ष की घटना पृष्ठभूमि में है। उनके सभी उपन्यासों में भारतीय इतिहास के मध्ययुग का बुन्देलखण्डी जीवन पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित हुआ है। उनके "भुवन विक्रम" उपन्यास में भारत के उत्तर वैदिक कालीन आर्य जीवन का चित्र उपस्थित किया गया है। मृगनयनी उनका एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसके पात्र और घटनाएं इतिहास सिद्ध हैं। वर्माजी ने लोकप्रसिद्ध परंपराओं तथा कल्पना से इसमें आकर्षण भर दिया है। मृगनयनी और मानसिंह की प्रेम कथा के द्वारा लेखक ने एक स्वस्थ व्यावहारिक जीवनदर्शन प्रस्तुत कर

दिया है । उनके आरंभिक सामाजिक उपन्यासों में कलासौष्ठव उतना नहीं है जितना उनके बाद के उपन्यासों में । "अचल मेरा कोई" में भारतीय नारी की समर्पण शीलता और समत्वकांक्षिणी नारी की नवचेतना का द्वन्द्व दिखाया गया है । पुरुष नारी से पूर्ण समर्पण चाहता है किन्तु नये युग की चेतना उसे भिन्न दिशा की ओर उन्मुख करती है । कौटुंबिक जीवन में पारस्परिक विश्वास और हार्दिक सामंजस्य ही इसका समाधान है । संयम और सन्तुलन के बिना दांपत्य जीवन सफल नहीं हो सकता । इसका संकेत अचल और निशा इन दोनों पात्रों में मिलता है । "अमर बेल" प्रेमचन्द परंपरा के अनुसार लिखा एक उपन्यास है । ग्राम समस्या ही इसका आधार है । वर्माजी का यह उपन्यास अपनी विशिष्टता में महत्वपूर्ण है । डॉ॰ बेचन ने उनके पात्रों के बारे में कहा है - "उनके पात्रों की रूपरेखा इतनी स्पष्ट और उभरी हुई है कि उनके व्यक्तित्व की स्वतंत्रता और भिन्नता सुरक्षित है[1] ।"

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

उपन्यास लेखन में प्रेमचन्द के अनुयायी थे । लेकिन उपन्यासकार या कहानीकार की हैसियत से प्रेमचन्द की ऊंचाई तक वे पहुँच न सके । उनके उपन्यास 'मां' और 'भिखारिणी' में प्रेम, त्याग और मातृत्व की भावना का चित्रण हुआ है ।

---

1. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास - डॉ॰ बेचन
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1965, पृ॰243

पांडेय बेचन शर्मा उग्र

वास्तव में उग्र प्रतिभा लेकर साहित्य में आये । उन्होंने समाज के कुत्सित अंगों और वर्णित पहलुओं का चित्रण निडर होकर किया । वेश्यावृत्ति तथा सभ्य समाज के बाह्यावरण के नीचे छिपी अन्य घृणित तथा घातक कुरीतियों को उन्होंने अपनी आवेगपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया । उनके उपन्यासों में "वसुधा की बेटी" में एक अछूत बालिका के जीवन का करुण चित्रण है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की तरह समाज की कुत्सित प्रवृत्तियों और भ्रष्टाचारों का बीभत्स चित्रण करनेवाले उपन्यासकार हैं आचार्य चतुरसेन शास्त्री । "हृदय की प्यास" में उन्होंने विधवाश्रमों में छिपछिपकर होनेवाले दुराचारों का नग्नचित्रण किया है । उनकी भाषा में ओज और प्रवाह है पर लेखनी में आत्म संयम का अभाव है । इसीलिए उनके उपन्यास साधारण स्तर से अधिक ऊपर नहीं उठ पाते । उनका ऐतिहासिक उपन्यास "वैशाली की नगरवधू" अपेक्षया अधिक सुगठित रचना है ।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यास के विकास की दृष्टि में प्रेमचन्दयुग की प्रधानता अपार है । उनकी लेखनी के वरदान से एक युगजीवन की अभिव्यक्ति हुई, जीवन की विविध समस्याओं का बोध जनता में जागृत हुआ, यथार्थ के तत्वों से उपन्यासकला की भूमि संवारीगई । प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास साहित्य का कलात्मक वैभव, गहराई और शिल्प सौष्ठव बढ गया । प्रेमचन्द का आख्यान साहित्य अब भी हमारा मार्ग दर्शक है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग

प्रेमचन्द की मृत्यु के साथ एक समृद्ध युग का अन्त हुआ और दूसरे नवीन युग का समारंभ हुआ । प्रेमचन्दोत्तरयुग में जो साहित्यिक प्रवृत्तियाँ उभरीं उनका पूर्वाभास प्रेमचन्द की अन्तिम कृतियों में मिलता था । डॉ॰ उषा डोगरा ने कहा है - "वे प्रवृत्तियाँ इस युग में अपेक्षाकृत और भी प्रबल तथा प्राणवान होती गयीं[1] ।" किन्तु प्रेमचन्द के बाद कुछ लेखकों के विषय प्रेमचन्द से भिन्न दीख पडे, पर शैली उन्होंने प्रेमचन्द की ही अपनायी । मनोविज्ञान के उत्कर्ष से मानवमन के सूक्ष्म रहस्यों को समझने - समझाने का एक नया उत्साह उपन्यासकारों में जाग उठा । फलस्वरूप उपन्यास स्थूल जगत को छोड मनोजगत की ओर प्रवृत्त हुआ ।

प्रेमचन्द युग में सामाजिक विद्रोह का स्वर दबा दबा और प्रच्छन्न था । हिन्दू विधवा के जीवन की विडम्बना प्रेमचन्द जी ने सशक्त रूप में व्यक्त की थी । गायत्री, पूर्णा, विरजन आदि का जीवन इसके उदाहरण के रूप में उल्लेखनीय है । लेकिन प्रेमचन्द कहीं अपने किसी विधवा नारीपात्र का पुनर्विवाह नहीं करा सके । इसी प्रकार निर्मला और होरी ने अपने अपने आदर्शों के लिए प्राणार्पण किया । किन्तु परवर्ती युग में व्यक्ति स्वातंत्र्य का ज़ोर बढा । कृष्णा अग्नि होत्री ने इस युग के कहानीकारों की प्रवृत्तियों के बारे में कहा है - "इस युग के कहानीकारों ने अपने जीवन सन्दर्भों को व्यक्ति की सामाजिकता अपनी आन्तरिक दृष्टि से देखकर उसे अपनी रचना-चेतना में उतारा है[2] ।"

---

1. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्त्विक विमर्श - डॉ॰ उषा डोगरा, अनुभव प्रकाशन, कानपूर, प्रथम संस्करण - 1984 पृ॰39
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कृष्णा अग्नि होत्री, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983, पृ॰69

वैज्ञानिक और बौद्धिक विकास हुआ तो समाज के कुत्सित यथार्थ का उद्घाटन कर व्यक्ति के दुख-दर्द के कारणों की खोज की गई । सामाजिक बन्धनों के प्रति विद्रोह हो उठा । वैयक्तिक अधिकार, स्वतंत्रता की उपलब्धि और सामाजिक समता की स्थापना का स्वर इन उपन्यासकारों में प्रखर हो गया ।

जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी विषय और शिल्प दोनों की दृष्टि से प्रेमचन्द की अपेक्षा भिन्न भूमि पर अवस्थित हैं । डॉ॰ सावित्री मठपाल ने जैनेन्द्र के उपन्यासों का सूक्ष्म विवेचन करके कहा है - "जैनेन्द्र के उपन्यासों के सूक्ष्म विवेचन से ज्ञात होता है कि उनके पात्र एकाकी जीव हैं जो अपने सामाजिक वर्ग से प्राय: अलग हो चुके हों।[1]" डॉ॰ महावीरमल ने भी कहा है - "जैनेन्द्र ने समाज का प्रतिकार कर व्यक्ति के व्यक्तित्व को साहित्य में प्रतिष्ठित किया[2]।" भगवती चरणवर्मा, यशपाल तथा उपेन्द्रनाथ अश्क की शिल्पविधि प्रेमचन्दीय शिल्प की चरम परिणति है । किन्तु उनका विषय निर्वाचन मौलिक है । इस युग के दूसरे दशक में अमृत लाल नागर और रागेय राघव उपन्यास के मंच पर आये । अमृतलाल नागर की प्रतिभा का पूर्ण स्फुटन अब हुआ है । श्री॰ रागेय राघव ने अपने प्रथम उपन्यास "घरौंदे" से ही प्रौढ उपन्यासकारों की पंक्ति में स्थान पा लिया । प्रेमचन्दोत्तर काल के किसी भी उपन्यास के समकक्ष उनकी कुछ कृतियों को रखा जा सकता है । इन उपन्यासकारों में प्राय: सभी आज भी सृजन करते हैं । इसलिए उन्हें युग की सीमा में बाँधना उपयुक्त नहीं ।

---

1. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र - डॉ॰ सावित्री मठपाल
   मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1986, पृ॰50
2. हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन - डॉ॰महावीरमल लोढा
   रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर 1972, बोहरा प्रकाशन,पृ॰132

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्रकुमार ने अपने ढंग से प्रेमचन्द परंपरा को चुनौती दी और उपन्यास साहित्य को नई दिशा देने का सफल प्रयत्न किया । प्रेमचन्द में गान्धीवाद के आध्यात्मिक पक्ष का समावेश नहीं हुआ था । जैनेन्द्र ने ही प्रथम बार हिन्दी उपन्यास को अन्तरंग की ओर प्रवृत्त किया । वे हिन्दी के पहले व्यक्तिवादी और मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं । जैनेन्द्र के उपन्यासों में पहली बार व्यक्ति के रहस्य में लिपटे अन्तरंग धरातल का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अंकन मिलता है । उनकी दृष्टि में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज जैसी व्यवस्था को निर्मित करता है । समाज में व्यक्ति के जो भी क्रिया-कलाप संपन्न होते हैं उसका आधार मानवीय सत्य होता है । उनकी दृष्टि में पाश्चात्य भौतिकता के कारण आज ये मानवीय सत्य खण्डित हो गये हैं । आज मानव संकीर्ण एवं क्षुद्र स्वार्थों के कारण सामान्य की उपेक्षा करने लगा है । इस मानवीय अस्तित्ववादी धारणा को जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में प्रवृत्त किया है । इस दृष्टि से जैनेन्द्र का युगान्तरकारी महत्व स्वीकार करना पड़ेगा । जैनेन्द्र के अब तक नौ उपन्यास प्रकाशित हुए हैं - परख, तपोभूमि, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, व्यतीत तथा जयवर्द्धन ।

इलाचन्द्र जोशी

इलाचन्द्र जोशी हिन्दी में मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों के प्रथम प्रयोक्ता हैं । वे हिन्दी के प्रतिनिधि उपन्यासकारों में एक हैं । लज्जा, संन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया, निर्वासित,

मुक्तिपथ, जिप्सी, सुबह के भूले, जहाज़ का पंछी आदि उपन्यासों के रचयिता हैं। जोशी जी व्यष्टि और समष्टि दोनों में विश्वास करते हैं। उनके इन उपन्यासों में काम, अहं तथा आर्थिक विषमता जनित हीनता की ग्रन्थि को प्रस्तुत किया है। उन्होंने व्यक्ति के मतवादी अहंकार पर आघात पहुँचाया है। उन्होंने मानवमन के अनुभूत ज्ञान को अपना आधार बनाया है और अध्ययन से अर्जित शास्त्रीय ज्ञान पर अधिक भरोसा किया है। उन्होंने स्वयं कहा है - "स्वयं अपनी और सारे समाज की वास्तविक पीडाओं का चित्रण कविता की अपेक्षा में उपन्यास के माध्यम से अधिक ईमानदारी और सच्चाई से कर सकता हूं।"[1]

अज्ञेय

व्यक्तिवादी उपन्यासों की रचना की दृष्टि से अज्ञेय जी का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने व्यक्ति के मतवादी अहंकार का विस्तार किया है। उन्होंने अभाव लोक को समग्रता के साथ विवेचन किया है। अज्ञेय जी की दृष्टि में वास्तविक अभाव तो व्यक्ति के आन्तरिक जगत में है। उनका विश्वास है कि व्यक्ति का आन्तरिक भाव जब संपूर्णता को प्राप्त हो जाए और वह स्वेच्छा से प्रेम, त्याग, सेवा और परोपकार के लिए क्रियान्वित होने लगे तो बाह्य जगत का विषमता जनित अभाव दूर हो जाएगा। उन्होंने केवल दो उपन्यास लिखे हैं - शेखर एक जीवनी - हिन्दी की अमूल्य निधि है। "घनीभूत वेदना की केवल एक रात में देखे हुए "विज़न" को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न है[2]।"

---

1. हिन्दी उपन्यास - सिद्धान्त और विवेचन - महेन्द्र मक्खनलाल शर्मा साहित्यरत्न भण्डार, आगरा, प्रथम संस्करण, जनवरी 1963, पृ. 213
2. शेखर एक जीवनी - पहला भाग - अज्ञेय, भूमिका पृ. 5, मुद्रक भार्गव भूषण प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण 1940

शिल्प गरिमा के कारण भी यह कृति अद्वितीय है । लेखक ने अपनी इस कृति में घृणा, हिंसा और दुख का विशद विवेचन किया है । उन्होंने बताया है कि "घोर यातना या घोर निराशा व्यक्ति को अनासक्त बनाकर दृष्टा होने के लिए तैयार करती है[1] ।" दुःख को उन्होंने आत्मशुद्धि का माध्यम माना है । अज्ञेय की भाषा शैली की कान्ति अपूर्व है और इस कारण से आधुनिक कलाकारों में उनका स्थान सर्वोपरि है ।

भगवतीचरण वर्मा

हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कलाकार हैं । वे मनुष्य के कुरूप, बीभत्स, अमानवीय स्वार्थ पर अवसरोचित ढंग से लेखनी चलाते हैं । चित्रलेखा, टेढे मेढे रास्ते और भूले बिसरे चित्र उनकी उत्कृष्ट कृतियाँ हैं जो उपन्यासकार के रूप में उनकी कीर्ति का आधार हैं । पतन, चित्रलेखा, तीन वर्ष, टेढे मेढे रास्ते, आखिरी दाँव, टूटे खिलौने, वह फिर नहीं आई, भूले बिसरे चित्र, सामर्थ्य और सीमा आदि उनके नौ उपन्यास प्रकाशित हुए हैं ।

यशपाल

प्रेमचन्द की यथार्थवादी परंपरा के समर्थ कथाकार हैं । प्रेमचन्दोत्तर युग के हिन्दी उपन्यासकारों में यशपाल का अपना विशेष स्थान है । उनके उपन्यासों में समाज चित्रण की सबल और सशक्त अभिव्यक्ति हुई है । वे अपने जीवन के विविध अनुभवों के क्षेत्र से सीधे साहित्य में आये । उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज के संघर्षों

---

1. हिन्दी उपन्यास - अन्तरंग पहचान - डॉ.प्रेमकुमार
गिरनार प्रकाशन, मेहसाना, प्रथम संस्करण 1983 ई,पृ.109

और जर्जर मान्यताओं को खोलकर दिखाने का प्रयत्न किया है । उनके उपन्यासों का प्रमुख स्वर व्यंग्य और अनुवाद का है । यशपाल मनुष्य की अस्तित्व रक्षा तथा विकास के लिए समाज को आवश्यक मानते हैं । सामाजिक व्यवस्थाएं कालानुसार जब व्यक्ति के लिए बाधक बन जाती हैं तो उन्हें बदल देना वे उचित समझते हैं । उनका प्रारंभिक उपन्यास "दादा कामरेड" में इस विषय पर उन्होंने अपना मत व्यक्त किया है । उनके "देशद्रोही" उपन्यास में मध्यवर्ग के एक बुद्धिजीवी का चित्रण है जो अपने मानसिक उलझनों के कारण मज़दूर आंदोलनों की ओर आकृष्ट हुआ । "दिव्या" उनका ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें नारी चरित्र का विकास उन्होंने दिखाया है । सामन्ती समाज में नारी केवल वासनावृत्ति का साधन है । "दिव्या" की काल्पनिक कथा को एलोरा-अजन्ता के चित्रों तथा उस समय की शब्दावली और वेशभूषा का अध्ययन करके ऐतिहासिकता का वातावरण दिया है । दिव्या यशपाल के साहित्यिक व्यक्तित्व का कीर्तिस्तंभ.है । "मनुष्य के रूप" यशपाल का अगला उपन्यास है जिसमें नारी समस्या पर लेखक का एकांगी दृष्टिकोण दृश्य होता है ।

"झूठा सच" यशपाल का नवीनतम और सबसे बृहदाकार उपन्यास है । इसमें उन्होंने उच्च एवं निम्न मध्यवर्गीय समाज की अव्यवस्था और बदलते हुए मूल्यों का चित्रणबडे समर्थ ढंग से किया है । इस उपन्यास में मानवीय मनोवृत्तियों पर सूक्ष्म व्यंग्य करने में उपन्यासकार को असाधारण सफलता प्राप्त हुई है ।

उपेन्द्रनाथ अश्क

प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों में उनका अपना विशिष्ट स्थान है । वे प्रेमचन्द की यथार्थवादी परंपरा के उपन्यासकार है । "सितारों के खेल" उनका पहला रोमानी उपन्यास है ।

परन्तु दूसरे उपन्यास "गिरती दीवारें" में जीवन के यथार्थ का चित्रण है । इसका नायक "चेतन" निम्न मध्यवर्ग के जीवन का प्रतीक है । इन दो उपन्यासों के अलावा "एक रात का नरक", गर्म राख, बडी बडी आँखें, पत्थर-उल-पत्थर ये अश्क के उल्लेखनीय उपन्यास हैं ।

रांगेय राघव, भगवती प्रसाद बाजपेयी, सियाराम शरण गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, मन्मथनाथ गुप्त और अमृतलाल नागर इस युग के उपन्यासकार हैं ।

रांगेय राघव

रांगेय राघव नई पीढी के उपन्यासकारों में सबसे प्रमुख स्थान प्राप्त करता है । वे बहुमुखी प्रतिभा रखनेवाले उपन्यासकार हैं । साहित्य के विविध क्षेत्रों में उनकी लेखनी चली है । "वे भाव को उपन्यास का मूलाधार मानकर लोक कल्याण के बीच मनुष्य की चेतना खोजते हैं ।[1]" उनका पहला उपन्यास "घरौंदे" ने ही सब लोगों के ध्यान को आकृष्ट किया । कालेज के वातावरण को पृष्ठभूमि बनाकर उसकी विविध समस्याओं पर उन्होंने विचार किया है । और जीवन के यथार्थ को उभरकर सामने रखा है । बीस-बाईस सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास उन्होंने लिखे हैं ।

---

1. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना - डॉ. अमरसिंह जगराम लोधा
अमर प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1985, पृ.328

भगवती प्रसाद बाजपेयी

एक प्रकार से प्रेमचन्द और प्रेमचन्दोत्तर युग के बीच की कडी है । ये भी अपने उपन्यासों में व्यक्ति को प्रधानता देते हैं ।

सियारामशरण गुप्त

सियारामशरण गुप्त की कलाचेतना में गान्धीवाद विचारधारा का पूर्ण परिपाक मिलता है । अहिंसा, करुणा और प्रेम की भावनाएं उनके मानसिक अस्तित्व का अंग बन गई हैं । गुप्तजी के तीन हिन्दी उपन्यास साहित्य के गौरव की वृद्धि करते हैं । अतीत के सांस्कृतिक ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति इनमें बडे कलात्मक ढंग से और बडी समर्थ शब्दावली में हुई है ।

राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन एक ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं । उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में सिंह सेनापति, जय यौधेय, विस्मृत यात्री और मधुर स्वप्न उल्लेखनीय है । इतिहास के प्रमुख व्यक्तियों को उन्होंने अपना पात्र नहीं बनाया है । प्राचीन सामाजिक सांस्कृतिक युगों में मनुष्य के विकास की कहानी को चित्रित करना उनका उद्देश्य रहा है । सोने की ढाल, विस्मृति के गर्भ में, जादू का मुल्क, जीने के लिए, किन्नरों के देश में आदि अनेक उपन्यास उनके प्रकाशित हो गये हैं । तो भी उनके ऐतिहासिक उपन्यास ही उनकी कीर्ति का मूलाधार रहा है । उनका व्यापक इतिहास ज्ञान उनकी कला की बहुत बडी शक्ति है । उनकी प्रतिभा का वरदान इतिहास को ही

सूत्र मिला है । सिंह सेनापति और जययौधेय - ये दो उपन्यास उनकी कीर्ति के दो स्तंभ हैं । सिंह सेनापति में लिच्छवि गण के सामूहिक जीवन का संघर्ष चित्रित किया गया है । जय यौधेय में यौधेय गण का चित्रण है । इन दोनों उपन्यासों में व्यक्ति चित्रण का आधार ग्रहण किया गया है । प्रथम में लिच्छवि वीरसिंह का और दूसरे में यौधेय वीरजय का । तो भी वे गण समष्टि जीवन के ही प्रतिनिधि हैं । ये उपन्यास की सीमाओं से घिरा नहीं है ।

<u>अमृतलाल नागर</u>

नागर जी प्रेमचन्द परंपरा के सशक्त कलाकार हैं । प्रेमचन्द ने हिन्दी को उपयोगितावादी दृष्टिकोण से देखा । उन्होंने विश्व के प्र गतिशील साहित्यकारों के समान विषय वस्तु एवं चिन्तन पक्ष को अधिक महत्व प्रदान किया । शिल्प को उन्होंने अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम माना । नागर जी ने प्रेमचन्द की जीवन एवं साहित्य संबंधी मूलदृष्टि को न केवल अपनाया अपितु नवीन युगीन सन्दर्भों के मध्य उसे समृद्ध करने का प्रयास किया । नागर जी ने भी प्रेमचन्द के समान कलावादी दृष्टिकोण को नहीं अपनाया । परन्तु उन्होंने शिल्प संबन्धी नवीनता का प्रयोग किया । उन्होंने विषयवस्तु के प्रतिपादन के लिए व्यापक अध्ययन किया । गहन चिन्तन, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति तथा मानव मनोविज्ञान के आधार पर साहित्य के माध्यम से विविध जीवन मूल्यों का विश्लेषण किया है । अत: उन्हें प्रेमचन्द परंपरा के उन्नायक के रूप में स्मरण किया जाता है । नागर जी ने नूतन परिवेश में प्रेमचन्द के सामाजिक चिन्तन को नया आयाम देते हुए उन्होंने कथा और शिल्प दोनों दृष्टियों से युग परिवेश के मध्य जीवन मूल्यों का पूर्ण सजगता के साथ विश्लेषण किया है ।

निष्कर्ष

हिन्दी उपन्यास की प्रगति आश्चर्य जनक रही है । उसने "न कुछ" से आरंभ करके "बहुत कुछ" पाया है । वह उन्नति से उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है । प्रेचन्द युग में हिन्दी उपन्यास का विकास तो हुआ । इस कारण विकास की दृष्टि से इस युग की महिमा अपार है । उनके उपन्यासों से एक समग्र जीवन दृष्टि का उदय हुआ । जीवन की विविध समस्याओं के प्रति जनता में नया बोध जागृत हुआ । सहानुभूति, सहृदयता, व्यंग्य एवं कुरूपता के जरिए समाज जीवन को नवीन दिशाएं देने का प्रयत्न हुआ । उपन्यास की भूमि यथार्थ के तत्वों से संवारी गई । प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास साहित्य कलात्मक वैभव, गहराई और शिल्प सौष्ठव की दृष्टि से बहुत प्रगति कर पाया । इस युग में उपन्यास को विषयवस्तु की दृष्टि से विस्तार मिला । टेकनीक की दृष्टि से उसमें गहनता का समावेश हुआ । नागर जी में प्रेमचन्द से भिन्न जो भूमिका दिखाई देती है उसका संबन्ध युग की परिवर्तित परिस्थितियों से है । प्रेमचन्द जी अपने युग की प्र गतिशील भूमिका से संपृक्त रहे और नागर जी ने अपने युग की प्रगतिशील भूमिकाओं के आधार पर अपने सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं जीवनीपरक उपन्यासों का सृजन किया । समसामयिक समस्याओं के चित्रण में नागर जी ने प्रेमचन्द की भांति सफलता प्राप्त की है । जहाँ एक ओर प्रेमचन्द जी ने ग्रामीण जीवन की विषमताओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है दूसरी ओर नागरजी ने नगरीय जीवन की नाना समस्याओं का यथार्थ चित्र उरेहा है । नागर जी ने स्वातंत्र्यपूर्व भारत के सभी परिवर्तनों को सूक्ष्मता से अनुभव किया है, इसलिए स्वातंत्र्योत्तर भारत में मूल्य परिवर्तन की जीवन्त झांकी उन्होंने प्रस्तुत की है । नागरजी ने कुल चौदह उपन्यास लिखे हैं । इसका विस्तृत अध्ययन अगले अध्यायों में किया जायेगा ।

दूसरा अध्याय

अमृतलाल नागर - व्यक्तित्व और कृतित्व

दूसरा अध्याय

अमृतलाल नागर - व्यक्तित्व और कृतित्व

किसी साहित्यकार की साहित्यिक रचनाओं के संपूर्ण अध्ययन के लिए उनके व्यक्तित्व का अध्ययन करना अनिवार्य है । व्यक्तित्व की जानकारी उनके साहित्य को समझने में सहायक होती है । डॉ॰ मनोहर देवलिया ने व्यक्तित्व के बारे में बताया है - "कोई ऐसा मनुष्य नहीं होता जिसमें आकार - प्रकार, योग्यता, गुण और रचनाशक्ति के रूप में निजता न हो तथा यह भी संभव नहीं कि व्यक्तित्व की निजता में सामाजिक सारवस्तु मौजूद हो[1] ।" श्री॰ राल्फ फाक्स ने कहा है - "कृतिकार को अपनी कृतियों में उस निर्गुण ब्रह्म की भांति रहना चाहिए जो सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी उन्हें कभी भी दृष्टिगोचर नहीं होता[2] ।" व्यक्तित्व का निर्माण

---

1. हरिशंकर परसाई - व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ॰मनोहर देवलिया - साहित्य वाणी, इलाहाबाद,प्रथम संस्करण 1986 ई॰
2. The Novel and the people - page 117 पृ॰11
   - Ralph Fox

प्राय: जन्म और परिवार के विशेष परिवेश में होता है । किसी भी उपन्यास में उपन्यासकार का व्यक्तित्व चरित्रों के निर्माण का सबसे बड़ा स्रोत माना जा सकता है और चरित्रों द्वारा उपन्यासकार का व्यक्तित्व किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष होता है । नागरजी की संपूर्ण कृतियों में उनका व्यक्तित्व छाया हुआ है । इसलिए उनकी कृतियों के अध्ययन के पहले उनके व्यक्तित्व का सम्यक् ज्ञान अत्यन्त आवश्यक रहा है ।

हिन्दी में व्यक्तित्व का प्रयोग अंग्रेज़ी के "पेरसनालिटी" शब्द के समानार्थक रूप में होता है । "पेरसनालिटी" की व्युत्पत्ति लैटिन के "पेरसोणा" शब्द से मानी गई है[1] । आधुनिक युग में व्यक्तित्व का शब्दार्थ सीमित हो गया है, किन्तु गुणार्थ अतिविस्तृत । व्यक्तित्व एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से अलग कर देता है । कई विद्वानों ने व्यक्तित्व की कुछ परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं । बर्नार्ड नाटकाट के अनुसार "व्यक्तित्व वैयक्तिक जीवन की आचरण पद्धति है[2] ।" किम्बोल युंग के अनुसार व्यक्ति के मन में समाज एवं अपने प्रति जो विचार, प्रतिक्रिया, दृष्टिकोण, जीवनमूल्य आदि होते हैं उनका व्यवस्थित रूप ही व्यक्तित्व है[3] ।" व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक परिस्थितियों का बड़ा ही योगदान रहता है । इसलिए किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व के अध्ययन के पहले उनके परिवार एवं सामाजिक परिवेश का ज्ञान आवश्यक है ।

---

1. 'An Introduction to Personality Study' - p.20
   R.B. Cattell - Edition 1950
2. Ernad Not Cutt - Personality - The Psychology of of Personality - First edition 1953. p.1

   'Personality is the pattern of an individual life'.
3. 'Personality and problem of adjustment'
   King ball Young - Second edition 1962 p.3

अमृतलाल नागर का जीवन परिचय

जन्म एवं परिवार

अमृतलाल नागर का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा नगर के गोकुलपुरा मुहल्ले में 17 अगस्त 1916 ई॰ को एक प्रतिष्ठित नागर ब्राह्मण परिवार में हुआ। उनके पूर्वजों का मूलनिवास गुजरात में था। करीब ढाई सौ वर्ष पूर्व इनका कोई पूर्व पुरुष उत्तर प्रदेश में बस गया। नागर जी के पितामह स्वर्गीय शिवराम जी सन् 1895 में इलाहाबाद बैंक के एजेन्ट होकर लखनऊ आये थे और वहीं चौक मुहल्ले में बस गये। अपने कर्तव्य में निरत होने के कारण उन्होंने उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद, सीतापुर, लखनऊ आदि कई नगरों में बैंक की शाखाएँ स्थापित कीं और उन्नति करते करते बैंक के मैनेजर बन गये। बैंक ही के कारण वे शायद सन् 1895 ई॰ में लखनऊ आ बसे। वहाँ बाद में बैंक की नगरशाखा चौक में स्थापित हुई। यह जगह उन्हें ऐसी सुहाई कि फिर और कहीं जाने से इन्कार कर दिया। उन्हीं के पुण्य प्रताप की छत्र छाया में आज भी छोटे-बडे सबसे नित्यप्रेम और आदर पाते हुए रहते हैं।

नागर जी के पिता का नाम श्री॰ राजाराम जी शर्मा तथा माता का नाम विद्यावती था। नागर जी के पितामह संगीत प्रिय थे।

कलाप्रेमी परिवार

नागर जी के दो भाई थे। उनके मझले अनुज स्वर्गीय रतनलाल नागर बडे अच्छे कैमरा डाइरेक्टर थे। उनके कनिष्ठ अनुज

श्री॰ मदनलाल नागर अकादमी - पुरस्कार विजेता, प्रख्यात चित्रकार और संप्रति लखनऊ के राजकीय कला महाविद्यालय में ललितकला के असि॰ प्रोफसर हैं । नागर जी का विवाह 31 जनवरी सन् 1931 को आगरा में हुआ । पत्नी है प्रतिभा नागर । पत्नी का उल्लेख करते हुए उन्होंने उसको "खरी जीवन संगिनी" बताया है । प्रतिभाजी और नागर जी की चार सन्तानें हैं - दो पुत्र और दो पुत्रियाँ । बडे पुत्र कुमुदनागर आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र में असि॰ड्रामा प्रोड्यूसर हैं । अन्य पुत्र-पुत्रियाँ साहित्य तथा अभिनय के शौकीन हैं । कुमुदनागर ने बच्चों के लिए दो पुस्तकों का भी सृजन किया है । शरद्नागर को रंगमंच और नाटक से विशेष प्रेमहै । कुल मिलाकर नागर जी का संपूर्ण परिवार साहित्यिक एवं कलाप्रेमी है ।

प्रतिभा जी नागर जी की प्रेरक शक्ति हैं । डाॅ॰ कुसुम वार्ष्णेय को दिये गये एक इण्टरव्यू में श्रीमती नागर के शब्द इस बात को पूर्णतया सिद्ध करते हैं । "शुरू में इन्हें देखकर मुझे भी लिखने का शौक हुआ था, पर यह सोचकर मैं ने वह छोड दिया कि मेरा लेखिका बनना उतना ज़रूरी नहीं था जितना इनके लेखन में मेरा सहयोग । धन-वैभव से मुझे कभी मोह नहीं रहा । मेरी तो हमेशा यही अभिलाषा रही कि ये अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखक बनें । इसलिए अनेक बार आर्थिक संघर्षों को मैं ने सहर्ष झेला है ।"[1]

जीवन के प्रारंभिक संघर्ष के दिनों में प्रतिभाजी ने विश्वास का सम्बल दिया । जिन्दगी की कंटकाकीर्ण राहों में एक सच्चे दोस्त की भूमिका अदा की । नागर जी को साहित्य साधना के शिखर पर पहुँचाने का गौरव प्रतिभा जी को है । "ये कोठेवालियाँ"

---

1. धर्मयुग - 9, नवंबर 1980, पृ॰25

पुस्तक की सामग्री-संकलन-व्यवस्था की दृष्टि से भी प्रतिभा जी ने नागर जी को बड़ा सहयोग दिया । इस प्रकार दोनों पति-पत्नी प्रतिभा संपन्न और साहित्यिक रुचि रखनेवाले होने के कारण उनकी सन्तानों में कलाप्रेम का मणिकांचन संयोग हो गया है । स्पष्टत: कहा जा सकता है कि नागर जी का संपूर्ण पारिवारिक वातावरण साहित्य और कला की एक प्रयोगशाला है ।

शिक्षा

पिताजी की आकस्मिक मृत्यु होने के कारण नागर जी की शिक्षा केवल हाइस्कूल तक ही रही । अर्थाभाव के कारण उन्हें जीवन के हर पद में संघर्ष करना पड़ा । इसलिए कच्ची उम्र में पारिवारिक दायित्व और नौकरी का भार वहन करना पड़ा ।

पत्रकारिता

सन् 1935 में "आल इन्डिया यूनाइटेड इन्श्योरेन्स कंपनी" के लखनऊ कार्यालय में 18 दिनों तक नागर जी ने डिस्पेचर का काम किया । स्वतंत्र तथा उदात्त प्रकृति के कारण अफसर से न बन सकी और इस्तीफा दे दिया । इसके पश्चात् उन्होंने पत्रकारिता में प्रवेश किया । 1934 में "यूथ्स यूनियन क्लब" चौक से पहली बार द्वैमासिक पत्रिका "सुनीति" का संपादन किया । 35-36 में सिनेमा समाचार नामक एक पाक्षिक पत्रिका का संपादन किया । 37 में साप्ताहिक "चकल्लस" नामक एक हास्य पत्रिका भी निकली । चकल्लस अपने समय की एक लोकप्रिय पत्रिका थी ।

अंग्रेज़ी शासन और पूंजीवादी व्यवस्था के कारण उन्हें उसे बन्द करना पड़ा । 1945 में नया साहित्य और सन् 1953 में मासिक पत्र "प्रसाद" का संपादन भी किया ।

फिल्मी जीवन

1940 में नागर जी ने फिल्मी दुनिया में पदार्पण किया । असफल पत्रकारिता के कारण फिल्मी क्षेत्र में कार्य करने लगे । वे फिल्म सिनेरियो लेखक के रूप में बंबई गये । 1947 तक फिल्म जगत में कार्य किया । उन्होंने स्वयं लिखा है - "सन् 1945 में दो फिल्मों के संवाद लिखने के वास्ते मद्रास गया था । लगभग पांच महीने वहां रहा । मेरी वह दक्षिण भारत की यात्रा मेरे दो उपन्यासों से ऐसे जुड़ गयी है कि उसे भूल नहीं सकता ।[1]" उनका सर्वप्रथम संपर्क आज के दो प्रसिद्ध निर्माता-निर्देशकों, श्री किशोर साहू और महेश कौल से हुआ । फिल्मी जीवन उनकी रुचि के प्रतिकूल था । "अमृत और विष" के अरविन्द शंकर की आर्थिक कठिनाइयां नागर जी की अपनी हैं । सिनेमा जगत के भ्रष्टाचार ने उन्हें वहां से हटा दिया । अपने फिल्मी जीवन के सात वर्षों में लगभग 20-21 फिल्में उनके नाम से आईं । अनुकूल वातावरण न मिलने पर भी वे लिखते रहे । फिल्मों में डबिंग कला में सफलता मिली । तो भी 1947 से उन्होंने फिल्म जगत से संबन्ध तोड दिया । 1947 में वे उत्तर प्रदेश में आकर रहे ।

---

1. एकदा नैमिषारण्ये - अमृतलाल नागर, अपनी बात, पृ.7

स्वतंत्र साहित्य चिन्तन और प्रेरणा के स्रोत

बंबई से लौटने के बाद नागर जी उत्तर प्रदेश में आकर बस गये। विविध प्रभावों की छाया और अभिरुचियों के संयोग से अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति को उन्होंने आगे बढा दिया। बंबई से लौटकर नागरजी ने उपन्यास के क्षेत्र में पदार्पण किया। स्वतंत्र लेखन में उनका पहला उपन्यास "महाकाल" है। यह उपन्यास यथार्थमूलक सामाजिक दृष्टि का परिचायक है। इसके प्रकाशन से लेकर हिन्दी जगत में नागर जी की ख्याति बढ़ गई। स्वतंत्र लेखन के प्रति उन्हें अटूट आस्था रही तो भी आर्थिक अपर्याप्तता के कारण उन्हें नौकरी करनी पड़ी। सन् 1953 से 1956 तक उन्होंने लखनऊ के आकाशवाणी केन्द्र में ड्रामा प्रोड्यूसर के पद पर कार्य किया। इसमें उनकी विशेष रुचि रही तो भी स्वतंत्र लेखन के प्रति उनका खूब लगाव था। सबेरे वे लेखन कार्य करते और शाम को नौकरी। पूरे दिन जब नौकरी करने का निश्चय हुआ तो उन्हें मानसिक द्वन्द्व अनुभव हुआ। अफसरों के रौब से चोट खाने के कारण स्वतंत्र रूप से कुछ कमाने की इच्छा हुई। वे तो स्वाभिमानी कलाकार थे। इसलिए पराधीनता की बेडियों को काटकर स्वतंत्र लेखन की ओर प्रवृत्त हुए। उनके विचार, संस्कार, वातावरण, लगन और प्रतिभा ने उन्हें अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर किया। उनके पिता बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाकार होने के कारण घर में पं॰माधव शुक्ल, डॉ॰ श्याम सुन्दरदास, उर्दू-शायर पंडित ब्रजनारायण चकबस्त जैसे विद्वान आते जाते थे। सप्तमी, गृहलक्ष्मी, हिन्दू-पंच आदि पत्रिकाएं घर पर आती थीं। बचपन से ही इन पत्रिकाओं से परिचित होने का सुअवसर उन्हें प्राप्त हो गया। प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य के लेखक श्री॰ शिवनाथ जी उनके पडोसी थे। सन् 1929 में

उनका परिचय निराला जी से हुआ जिसका नागरजी पर पर्याप्त प्रभाव पडा । इन्हीं दिनों नागर जी का संबन्ध श्री॰ दुलारेलाल भार्गव और रावराजा पं॰श्याम बिहारी मिश्र से हुआ जिनसे नागर जी को प्रोत्साहन मिला । नागर जी मिश्र बन्धुओं के व्यक्तित्व से भी खूब प्रभावित हुए । 1929-30 ई॰ तक नागर जी ने पूर्ण रूप से लेखक बनने का संकल्प भी कर लिया । अन्य साहित्यकारों के दर्शन करने की इच्छा हुई तो काशी, कलकत्ता आदि शहरों का भ्रमण करना भी शुरू किया । प्रसाद तथा शरत् बाबू से उनकी भेंट हुई । उनके उपन्यासों के वे बेहद शौकीन थे । सन् 1930 से 1933 तक लेखकीय जीवन में नागर जी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । इस समय वे कहानियाँ तो लिखते थे, परन्तु प्रकाशित न होती थीं । इससे निराशा हुई । सन् 1933 में उनकी कहानी प्रथम बार छप गई । उसके बाद कई पत्र-पत्रिकाओं द्वारा उन्हें प्रोत्साहन प्राप्त हुआऔर उनकी कहानियाँ बराबर प्रकाशित होती रहीं । 1935 में वाटिका नामक एक कहानी संग्रह भी प्रकाशित हुआ । मुंशी प्रेमचन्द ने इसकी तारीफ की । यह कार्य नागरजी के लिए प्रेरक सिद्ध हुआ और उन्होंने प्रेमचन्द की यथार्थमूलक साहित्यिक दृष्टि को अपनी रचना में संयोजित किया । आगे वे न केवल प्रेमचन्द परंपरा की महत्वपूर्ण कडी बन गये वरन् उनके सच्चे उत्तराधिकारी भी सिद्ध हुए । अर्थार्जन की चिन्ता को छोड्कर ज्ञानार्जन ही अपना लक्ष्य बनाते हुए नागरजी साहित्य रचना में अग्रसर हुए । देशी-विदेशी साहित्य कृतियों का अध्ययन उन्होंने किया और अपनी रुचि केलिए जो अच्छा लगा उसका अनुवाद भी किया । इसके अलावा नागर जी ने उपन्यास, कहानी, नाटक, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, व्यंग्य तथा बाल साहित्य के क्षेत्र में अपनी रचनाशीलता का परिचय दिया है । "गदर के फूल" और "ये कोठेवालियाँ" सर्वेक्षणवृत्त हैं ।

सन् 1857 के गदर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में नागर जी ने "गदर के फूल" की रचना की । डॉ• सुदेश बत्रा ने कहा है कि नागर जी के उपन्यासों में उस समय के युग का बोध है और भावी का संकेत भी है । "कहने की आवश्यकता नहीं कि अमृतलाल नागर एक ऐसे ही सर्जक हैं जिन्होंने युग बोध का नक्शा प्रस्तुत करते हुए भावी के संकेत भी दिये हैं और निर्माण के जिजीविषामूलक साधन भी ।[1]" नागर जी के औपन्यासिक सृजन में उनकी कल्पना का रंग चमकता दिखाई देता है । 1947 में वे स्वतंत्र लेखन के लिए कमर कसकर मैदान में आये । उनके उपन्यासों में गाँवों शहरों भोलीभाली जिन्दगियों, अकाल के दृश्यों और जीवन के कुत्सित अंशों का दमकता वर्णन हमें मिलता है । उनके ज्यादातर उपन्यास सामाजिक जीवन की गतिविधियों को उजागर कर देते हैं । उनके उपन्यास उनके साहित्य सृजन के कीर्तिस्तंभ हैं । नागर जी के उपन्यासों का अध्ययन करने के पहले उनके व्यक्तित्व विश्लेषण की ओर हम दृष्टि डालें ।

व्यक्तित्व विश्लेषण

मानव का व्यक्तित्व उसके जीवन का अभिन्न पक्ष है । किसी व्यक्ति के जीवन को पूर्ण रूप से समझ लेने के लिए उसके व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का पूर्ण अध्ययन होना चाहिए । समृद्ध और आनुवंशिक परंपरा और परिवेश जिस व्यक्ति के पीछे हैं वह जन्मत: श्रेष्ठ होता है । जीवन और व्यक्तित्व की श्रेष्ठता ऐसे व्यक्ति विरासत में पाते हैं । ऐसे कुछ लोग हैं जो अपनी करनी से यह श्रेष्ठता प्राप्त करते हैं । अमृतलाल नागर के जीवन एवं व्यक्तित्व की

1• डॉ•सुदेशबत्रा - व्यक्तित्व,कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृ•47

महानता की बुनियादी परंपरा है । करनी से वह और श्रेष्ठ बन गया । अमृतलाल नागर साहित्यकार, पत्रकार, समाजसुधारक, विचारक भाषाभिमानी सब कुछ थे । उनके जीवन के सभी आयामों का अध्ययन ही उनका समूचा अध्ययन है । उनके साहित्य सेवन के उपलक्ष्य में "काशी नागरी प्रचारणी सभा" द्वारा उनके "बूंद और समुद्र" पर उन्हें "बटुक प्रसाद पुरस्कार" एवं सुधाकर रजत पदक" प्राप्त हुआ । "सुहाग के नूपुर" के लिए उत्तर प्रदेश शासन ने उन्हें "प्रेमचन्द पुरस्कार" देकर सम्मानित किया । "अमृत और विष" पर नागर जी को सन् 1967 में "साहित्य अकादमी पुरस्कार" मिला । सन् 1970 में पुन: इसी कृति पर उन्हें "सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार" से सम्मानित किया गया ।

नागर जी ने अपनी रुचि, संस्कार, विवेक, लगन और प्रतिभा से अपने निश्चित लक्ष्य - साहित्य रचना - का चुनाव किया । उसी की सिद्धि में वे गतिशील हो गये । उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता ही उनकी लक्ष्य प्राप्ति में सहायक हो गयी । उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति ने उन्हें जीवन को देखने - परखने और ग्राह्य बनाने की क्षमता प्रदान कर दी । व्यक्तित्व के धनी नागरजी से जिसने भेंट की है वह उन्हें कभी नहीं भूल सकता ।

नागर जी की देह गठन ही उनके गंभीर व्यक्तित्व का प्रभाव है । ऊँचे कद, गौर वर्ण और तेजस्वी व्यक्तित्व रखनेवाले नागर जी सरल स्वभाव के मनुष्य हैं । उनके रहन-सहन, दिन-क्रम, वेश-विन्यास, आचार-व्यवहार, स्वभाव, लेखन प्रक्रिया, प्रेरणास्रोत, साहित्य सृजन का उद्देश्य ये सब उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू हैं । उनकी आँखें असीम स्नेह और ममता से भरी हुई हैं ।

सफेद खद्दर का कुर्ता, पायजामा, कभी धोती उनका प्रिय वेष है । घर में सफेद धोती को लूंगी की तरह लपेट लेते हैं । उनके पैरों में खड़ाऊ है । सादा जीवन और उच्च विचार उनके जीवन का आदर्श है । भांग नागर जी के लिए बहुत प्रिय है । उनका भांग प्रेम उनके सभी उपन्यासों में किसी न किसी पात्र के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है ।

स्वाध्याय

खूब पढ़कर गली-कूचों तक घूम घूम कर ही नागर जी ने अपने ज्ञान का संपादन किया था । उन्होंने स्वयं कहा है - "लिखने से पहले से तो मैं ने पढ़ना शुरू किया था । आरंभ में कवियों को ही अधिक पढ़ता था । सनेही जी और अयोध्यासिंह उपाध्याय की कविताएं ज्यादा पढ़ीं । लखनऊ का वातावरण कोई बहुत ज्यादा साहित्यिक नहीं था । घर से निकलने की मनाही थी । कोई संगी साथी नहीं था । छापे का अक्षर मेरा पहला मित्र था । घर में दो पत्रिकाएं मंगाते थे मेरे पितामह । एक-सरस्वती, दूसरी गृहलक्ष्मी । उस समय हमारे सामने प्रेमचन्द का साहित्य था, कौशिक का था । आरंभ में बंकिम के उपन्यास पढे । शरतचन्द्र को बाद में । प्रभातकुमार मुखोपाध्याय का कहानी संग्रह "देशी और विलायती" 1930 के आसपास पढा । इसकी कहानियां बहुत अच्छी लगीं । मुखोपाध्याय की एक विशेषता ने मुझे बहुत प्रभावित किया । उनके पात्र यदि जुकाम में बोल रहे हैं तो वे उसी लहजे में उसको रखते थे । उपन्यासों में बंकिम के उपन्यास 1930 में पढ डाले । आनन्दमठ,

देवी चौधरानी और एक राजस्थानी थीम पर लिखा हुआ उपन्यास जिसका नाम नहीं याद आ रहा है उसी समय पढा था ।"[1]

सुधारात्मक साहित्य

1929 के बाद नागर जी की रुचि पढ़ने की ओर बढ़ी और सामाजिक कार्यों में भी । पहली कहानी "प्रायश्चित्त" 1930 में लिखी । 1933 में उनकी अपशकुन नामक कहानी छप गई । लखनऊ में उस समय कोई साहित्यिक वातावरण नहीं था । प्रेमचन्द ज़रूर थे । निराला आकर चले गये थे । मिश्रबन्धु, रूपनारायण पाण्डेय, दुलारे लाल भार्गव आदि थे । "माधुरी और सुधा" नाम की पत्रिकाएं निकल रही थीं ।

गान्धी जी के व्यक्तित्व का प्रभाव नागर जी पर अवश्य पड़ा । उनका चिन्तन भारतीय योगधारा से अधिक जुडा है । उस पर मार्क्स का भी प्रभाव है । लेनिन की पुस्तकें 1937 में ही पढ़ी थी । मार्क्स का लेख 1946 में पढ़ा । उनके लेखन में गरीबों के प्रति करुणा है । "महाकाल" इसका प्रमाण है । उनकी पहली कहानी प्रायश्चित्त भी इसका प्रमाण है । उपन्यास, कहानी, नाटक, आत्मकथा, निबन्ध, यात्रा विवरण जैसी गद्यविधाओं में उन्होंने साहित्य के अंतर्गत नई विचार धारा का प्रचलन किया । साहित्यिक जीवन में समाजवादी विचारधारा को स्पष्ट किया । साहित्य में उन्हें जब कभी मौका मिला तब उन्होंने मनुष्य द्वारा मनुष्य के

---

1. अमृतलाल नागर से विश्वनाथ तिवारी की बातचीत - दस्तावेज - 30, जनवरी 1986

शोषण का डट कर विरोध किया । मनोरंजनमात्र उनके साहित्य का उद्देश्य नहीं रहा । मनोरंजन के साथ जीवन के समग्र विकास की ओर उन्होंने ध्यान दिया । साथ ही साथ सामाजिक उत्थान का महान कार्य उनके साहित्यिक व्यक्तित्व ने किया । किसान, मज़दूर आदि के शोषण के प्रति भी उन्होंने आवाज उठायी । नागर जी का "बूंद और समुद्र", अमृत और विष और "भूख" में उनकी ये भावनाएं स्पष्ट दीख पड़ती हैं । उन्होंने यथार्थवादी दृष्टिकोण को ही अपनाया है । नागर के जीवन और व्यक्तित्व ने भारतीय समाज को अपने विचारों से ऐसा ऋणी बनाया है कि वह कभी भी इससे उऋण नहीं हो सकता । भारतीय समाज को सभी प्रकार के अन्याय, अत्याचार एवं शोषण से मुक्ति दिलाने में और यों भविष्य का भारत बनाने में उनके विचारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है ।

भ्रमण

नागर जी घुमक्कड प्रकृति रखनेवाले थे । उन्होंने अखण्ड भारत का भ्रमण किया था । पेशावर से कन्याकुमारी तक । बंगाल से काश्मीर तक । इन यात्राओं का एक बडा लाभ था कि उन्होंने "कैरेक्टर्स" (चरित्र) बहुत देखे । और उनके मनोविज्ञान को भी समझने का मौका उन्हें मिला ।

भोजन

नागर जी शाकाहारी हैं । प्याज और लहसुन भी आपद्धर्म के रूप में ही कभी कभी ग्रहण कर पाते हैं । सभी प्रकार की मिठाइयां उन्हें अच्छी लगती हैं । लेकिन अब नहीं खाते । छिपे ही खा लेते हैं । भोजन का शौकीन रहे हैं । लेकिन अब कोई शौक नहीं है।

भांग के अलावा और कोई नशा नहीं है । वैसे बोतल भी पी है एकाध बार । एक ज़माने में मुजरा सुनने का भी शौक रहा है । रंगीनियों से भी गुज़रा है ।

रंगीनियों से उनका मतलब

तवायफों के कोठे पर गया । गाने सुने । इश्क भी किया । 1933 से 1937 तक छिपकर गया जब पिता जी जीवित थे । पत्नी ने चिढ चिढ़कर इस भाव को और जगाया । किसी से बात करने पर उलाहने सुनने पड़ते थे । उसका भी असर पड़ा । एक बार एक मोहिनी की गिरफ्त में तगडा आया । मन हिलता और फंसता, लेकिन भीतर से कोई रोक लेता । कुछ हिचक और झिझक से भी रही । इसी समय डॉ॰ दुढराज शास्त्री से भेंट हुई । उन्होंने उन्हें परस्त्री संपर्क से मना किया । शास्त्रीजी के बताये नियमों से वे इमोशनल चक्रवातों से मुक्त हुआ । वे नागर जी के लिए आज भी जीवित हैं ।

राजनीति की ओर झुकाव

नागर जी राजनीति की ओर नहीं गये । क्योंकि पिता सरकारी कर्मचारी थे । उन्होंने नागर जी को यह कहकर रोका कि मैं अकेला नहीं हूं । मेरे दो भाई और हैं । उन सब की जिम्मेदारी उन्हीं के ऊपर थी । नागर जी प्रधानत: एक सामाजिक उपन्यासकार हैं । श्री॰ब्रजभूषण सिंह ने कहा है - "साहित्य और राजनीति एक दूसरे के पूरक हैं । दोनों एक दूसरे से तरंगित और

प्रभावित होते हैं[1]।" अंग्रेज़ों के अत्याचारों से जनमानस में विद्रोह की भावना उत्पन्न हुई। इसके फलस्वरूप देश के विभिन्न वर्गों ने मिलकर 1857 का स्वतंत्रता संग्राम आरंभ किया। इस संग्राम में अनेक देशप्रेमियों ने अपने प्राणों का बलिदान किया। नागर जी ने अवध प्रान्त के वीरों को अपना आदर अर्पण करने केलिए उनकी गाथाओं को "गदर के फूल" नामक पुस्तक में संकलित किया। अंग्रेज़ों और भारतीयों के बीच शान्ति की स्थापना करने के लिए कांग्रेस की स्थापना की। अंग्रेज़ों की शासन प्रणाली के प्रति भारत के नवाबों और नरेशों को विश्वास था। "शतरंज के मोहरे" में नवाब नसीरुद्दीन कहता है - "अब की किसी जिन्दगी में अगर मैं बादशाह बना तो इंग्लैण्ड की तरह पार्लियमेन्ट ज़रूरत बनाऊँगा। एक आदमी की बादशाहत असूलन गलत है .... अगर हमारे यहाँ भी पार्लियमेन्ट होती तो मुझसे या दीगर बादशाहों से अक्सर जो जुल्म हो जाते हैं, वे न हो पाते[2]।"

भारत का प्रत्येक व्यक्ति अंग्रेज़ों की कूटनीति और दमनचक्र पर अपना विरोध प्रकट करता था। इसका दृश्य नागरजी के लिखे महाकाल में स्पष्ट दिखाई पड़ता है - "अरे एक बार सुराज हुई जाने देओ, तब हम गरीबों के दिन भी बहुरेंगे[3]।" द्वितीय आगोल युद्ध में अमेरिका ने हिरोषिमा और नागासाकी नगरों पर एटमबम बरसाया। नागरजी ने अपनी "एटमबम" कहानी में उस

---

1. हिन्दी के राजनैतिक उपन्यासों का अनुशीलन - ब्रजभूषण सिंह आदर्श - रचना प्रकाशन - प्रथम संस्करण 1970, पृ.38
2. शतरंज के मोहरे - अमृतलाल नागर, पृ.397
3. महाकाल, अमृतलाल नागर, पृ.148

संहार का एक मार्मिक दृश्य अंकित किया है । उन्होंने "एक था गांधी" नामक कहानी लिखी जिसमें गान्धी जी के सिद्धान्तों को स्पष्ट किया गया है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आन्तरिक और बाह्य संघर्षों का बोलबाला हो गया । "अमृत और विष" में नागर जी ने इस को स्पष्ट करते हुए कहा है - "सन् 1942 में हम लोग जेल क्या गए कि हमारा सारा नैतिक बल और सत्य के लिए हमारा साहस संगठन और कर्मशूरता ही अंग्रेजों के पहले "भारत छोडो" नारे को मानकर चली गई । आज़ादी के बाद आया फूट, असंगठन, विलास, व्यभिचार, लूट, डाके, खून और काले बाजार का जमाना[1] ।" बंगाल के भीषण दुर्भिक्ष पर आधारित नागरजी के उपन्यास "महाकाल" में राजनीति के दाव-पेंच, जमीन्दारों की शोषण वृत्ति और सांप्रदायिकता का जीवन्त मात्र चित्र खींचा गया है । डॉ॰जितेन्द्रवत्स ने कहा है - "राजनीति के साथ सामाजिक व्यक्ति का तादात्म्य होना स्वाभाविक एवं अनिवार्य प्रक्रिया है[2] ।" उपन्यास के समर्पण भाग में लेखक ने कहा है - "बंग दुर्भिक्ष की कहानी आज बहुत पुरानी पड गई है । सांप्रदायिकता की समस्या ही आज की जलती हुई समस्या है, लेकिन मेरे मत से इस समस्या की पृष्ठभूमि में भी पेट की समस्या ही प्रमुख है । राजनीतिक दाव-पेंचों के बल पर यह समस्या जन मन की वास्तविक आशान्ति और उससे उत्पन्न घृणा को झूठे रूप में भड़का रही है, समस्या अन्न की है, कपडे की है, घर की है, चैन आराम की है, जीने की है[3] ।" बूंद और समुद्र" में अंकित स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थिति ही आज भी विद्यमान है । आजादी के पहले के निस्वार्थ देशसेवक स्वतंत्र भारत में चुनाव लडनेवाले महत्वपूर्ण नेता हो गये हैं । चुनाव अब कोरे प्रलोभनों का प्रतीक बन गया है । "बूंद और समुद्र" में यह याथार्थ्य हम देख सकते हैं - "जिस व्यक्ति की

---

1. अमृत और विष - अमृतलाल नागर, पृ॰219
2. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना -
   - डॉ॰जितेन्द्रवत्स - साहित्य रत्नाकर, कानपूर,प्र॰सं॰1989
   पृ॰20
3. महाकाल - अमृतलाल नागर, समर्पण

पीडाओं का सामूहिक रूप में दर्शन कर ये राजनीतिक सिद्धान्त बने हैं, उसकी अनुभूति, उसकी तडप अब हमारे मन से निकल गई है। हमारी नजर अब सिर्फ पोलिटिकल रह गई है। सिर्फ पोलिटिकल कोल्हू के बैल की तरह आदत के कारण चक्कर काटते चले जा रहे हैं, काम कुछ भी नहीं रहा[1]।" इसी प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात् आधुनिक भारतीय समाज का सच्चा चित्रण "अमृत और विष" में किया है। लेखक अरविन्दशंकर कहते हैं - "सन्.1942 में हम लोग जेल क्या गये कि हमारा सारा नैतिक बल और सत्य के लिए हमारा साहस, संगठन और कर्मशूरता ही अंग्रेजों के पहले "भारत छोडो" नारे को मानकर चली गयी। आजादी के बाद आया फूट, असंगठन, विलास, व्यभिचार, लूट, डाके, खून और काले बाजार का जमाना[2]।" आज़ादी के बाद ही स्त्रियों को सम्मतिदान का अधिकार मिला। इसका एक उदाहरण "बूंद और समुद्र" में देख सकते हैं। मत केन्द्र पर आयी स्त्रियाँ कहती हैं - "देखो, आज हम जिन्दगी में पहली बार ओट डालने आये हैंगे। जिसे हमारा मन आयेगा, उसे देंगी। औ अब तुम्हें कसम है, हमरा मरा मूं देखो, जो अबकी टोका टोकी करो[3]।" नागरजी ने उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के स्वतन्त्रता पूर्व भारत की राजनीति और शासन सत्ता को अपने साहित्य में अंकित किया है। देश के शासन तत्व को चलनेवाली किसी भी शासन शक्ति पर नागर जी विश्वास नहीं करते। उनका विचार है कि परंपराओं और अन्धविश्वासों में जकडे जनजीवन को अपने देश से प्रेम करनेवाले बुद्धिजीवी ही सच्चा रास्ता दिखा सकेंगे। नागर जी के कृतित्व में तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक परिवेश गहरे रंगों में उभरा हुआ है।

---

1. बूंद और समुद्र - अमृतलाल नागर, पृ.133
2. अमृत और विष - अमृतलाल नागर, पृ.119
3. बूंद और समुद्र - अमृतलाल नागर, पृ.433

असल में "नागर एक व्यक्ति नहीं, पीढी नहीं, अपितु अतीत के बोध से सिक्त वर्तमान की गंगा का जल पीने-पिलानेवाले भावी के नियामक हैं[1]।"

सांस्कृतिक व्यक्तित्व

भारत की संस्कृति का मूल आध्यात्मिक भावना है। इसका आधार बहुत पुराना है। नागरजी के व्यक्तित्व की इस संस्कृति ने काफी प्रभावित किया ही। नागर जी के मत में भारत की प्राचीन संस्कृति का गौरव आधुनिक परिप्रेक्ष्य में गतिशील न होकर रुद्ध हो गया है। उसका गौरव ऐतिहासिक होकर ही रह गया है। "खजुराहो, अजन्ता, एलोरा, चिदम्बरम्, तंजोर, मदुरा, कोणार्क, जगन्नाथ, आबू में सदियों की श्रृंखला में फैला हुआ पत्थर का काम करनेवालों के देश में आज कहीं भी नये निर्माण का परिचय नहीं मिल रहा, जीवन चारों ओर से रुद्ध हो गया है।" नागर जी इसी प्राचीन संस्कृति एवं कला को फिर से जागृत करने की आशा करते हैं। "बूंद और समुद्र" में नागर जी ने यह दिखाया है कि नई पीढी जागृत हो गई है और प्राचीन गौरव को विकास और विस्तार देना चाहती है। "बूंद और समुद्र" का सज्जन एक चित्रकार है। वह अपनी कला के माध्यम से मानवमन के गुणों को व्यक्त करना चाहता है। साहित्यकार महिपाल व्यक्ति और समाज, इतिहास और संस्कृति का विश्लेषण करता है। लोकगीतों में मनुष्य मनोरंजन ही देखता है जबकि महिपाल उसमें सांस्कृतिक आधार देखता है। "सामाजिक क्रान्ति लानेवालों को पहले अपनी परंपराओं का संग्रह तो कर लेना चाहिए फिर उन्हें समझकर उनके अच्छे-बुरेपन को छाटना होगा[2]।"

1. अमृतलाल नागर - व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त-डॉ. नुदेश बत्रा, - पृ.43
2. बूंद और समुद्र - अमृतलाल नागर, पृ.415

स्पष्ट है कि नागर जी प्राचीन परंपरा को मानते हैं। लेकिन उतना ही कि वह आज के जीवन के लिए उपयुक्त हो। "सुहाग के नूपुर" सामाजिक उपन्यास होते हुए भी वह सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। उस समय के राजा लोग नृत्य एवं संगीत को प्रश्रय देते थे। भारत की प्राचीन परंपरा कलाप्रिय रही थी। "सुहाग के नूपुर" में चित्रित नृत्य प्रतियोगिता और संगीत प्रतियोगिता इसके प्रमाण हैं। नर्तकी माधवी सर्वश्रेष्ठ नृत्यकलाकार का पुरस्कार प्राप्त करती है। "शतरंज के मोहरे" में इसका विकृत रूप दिखाई देता है। विलासी नवाब नारियों को योग्या बनादेता है। मुगलकाल में शिल्प कला का विकास हुआ और सुन्दर इमारतें इसके प्रमाण में बनवायी गयीं - "ऊंची दीवारोंवाली यह गढी मीना नगर से लेकर गोमती के किनारे तक फैली हुई है।"[1] नागर जी भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मकता पर बल देते हैं। "एकदा नैमिषारण्ये" का मुख्य उद्देश्य ही एकता का सन्देश है। यह पौराणिक फलक पर चित्रित एक सांस्कृतिक उपाख्यान है। अन्य सुदूर संस्कृतियों से भारतीय संस्कृति के समन्वय का प्रतिपादन इसमें है। इसके द्वारा भारत का पुनर्जागिरण हीलक्ष्य रह गया है। "मानस का हंस" भारतीय संस्कृति की पुनःप्रतिष्ठा है। यह मुगलकालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया है जो हर युग के लिए प्रेरणादायक रहा है। तुलसी का जीवन संघर्ष विद्रोह और समर्पण से भरा है। इसलिए हम समझ सकते हैं कि जीवन संघर्षों द्वारा ही संस्कृति का प्रसार होता है। भारतीय संस्कृति की विरासत ही हमें भावात्मक एकता और राष्ट्रीय जागरण का सन्देश देती है।

---

1. शतरंज के मोहरे - अमृतलाल नागर, पृ.55

आर्थिक वातावरण का प्रभाव

मानव की उन्नति और समाज की संभावनाओं का बीज उसकी आर्थिक स्थिति की जमीन पर अंकुरित होता है । मुगलों और बाह्य शक्तियों का आक्रमण शताब्दियों तक भारत पर हुआ था । इस कारण भारत की संपद्स्थिति नष्ट भ्रष्ट हो चुकी थी । सन् 1857 से 1918 तक का समय अंग्रेज़ों द्वारा भारत के शोषण का समय था । उस समय भारत की आर्थिक और सामाजिक स्थिति दयनीय हो गयी । उन्नीसवीं सदी के अन्त में तीस वर्षों में भारत पर दो अकालों का आक्रमण हुआ । खेतीबारी के नष्ट होने पर नौकरी की आशा में लोग शहरों में आने लगे । इस परिवर्तन से एक नया वर्ग - मध्यवर्ग - विकसित होने लगा । महत्वाकांक्षा के कारण विवश होकर जनता अंग्रेज़ों की नीति को स्वीकारती थी । साथ ही साथ पूंजीवादी वर्ग का शोषण बढ गया । प्रत्येक पूंजीवर्ग ने 1942 के अकाल को पनपने दिया । इस पूंजीवर्ग का अमानवीय रूप नागरजी के "महाकाल" में चित्रित किया गया है - "रईसों और अफसरों की दुनिया में क्या इन इन्सानों को कोई इन्सान मानेगा ? वे इन्हें भूत कहेंगे भूत । हालांकि वे खुद मुर्दा इन्सानियत के भूत बनकर हमारे सिरों पर सवार है । हमारी भूख की नींव पर उन्होंने अपनी सोने की हवेलियां बनवाई हैं[1] ।" इसके अलावा नेताओं की शासन प्रणाली और उनकी स्वार्थता के कारण भी लोग आर्थिक कठिनाई अनुभव करते थे । "अमृत और विष" में इसका सुन्दर चित्र मिलता है[2] ।" "अमृत और विष" के लेखक अरविन्द शंकर का जीवन एक मध्यवर्गीय व्यक्ति का भारपूर्ण जीवन है । उमेश आई॰ए॰एस॰ होकर भी रिश्वत के जाल में फंसकर

---

1. महाकाल - अमृतलाल नागर, पृ॰68
2. अमृत और विष - अमृतलाल नागर, पृ॰485

आत्महत्या कर डालता है । "बूंद और समुद्र" का महिपाल आर्थिक दृष्टि से टूटकर चूर चूर हो गया है । उसकी करुणापूर्ण कहानी पर ध्यान दें - "सन् 1937 के बाद अब तक महिपाल ने सुख की रोटी का एक दिन भी नहीं जाना । बडे परिवार को लेकर बच्चों की बीमारी, स्कूल का फीस, किताबें, कपडे, जनेऊ, मुण्डन, जन्म-मरण से बंधी हुई रस्में, नोन-तेल लकडी की समस्या - उसे जिन्दगी की लड़त में बराबर हतोत्साहित करती रहती है[1] ।" आर्थिक नीति की ओर युवा मन का आक्रोश "अमृत और विष" में सुनाई पड़ता है[2] । नगर जी ने अपने समय के आर्थिक विकास के पहलुओं का अनुभव एवं अध्ययन गहराई से किया था और वे समझ गये कि अंग्रेज़ों की शासन नीति ही स्वतंत्र भारत की पुन:स्थापना में बाधक बनी है । अंग्रेज़ों ने जनता को लूटने के कई मार्ग निकाले थे । आमदनी पर टैक्स बांध दिया । देश-विदेशों से व्यापारिक संबन्ध सुदृढ रखने के लिए बैंकों की स्थापना हुई । "अमृत और विष" में उस समय की व्यापारिक स्थिति को स्पष्ट किया है[3] ।

आज़ादी के बाद भारत ने आर्थिक क्षेत्र में प्रगति की और आत्म निर्भर बनने में प्रयत्नशील रहा । पंचवर्षीय योजनाएं बनाई गईं । देश का उत्पादन बढ़ गया । स्वास्थ्य, शिक्षा, बिजली, यातायात के साधन आदि को उन्नत बनाने पूंजी का एक बहुत बडा हिस्सा लगाया गया । आयात में वृद्धि हुई । देश के नेता, सरकारी अफसर आदियों में स्वार्थता ही दीख पड़ी ।

1· बूंद और समुद्र - अमृतलाल नागर - पृ·113

2· अमृत और विष- अमृतलाल नागर - पृ·700

3· वही, पृ·23

ईमानदारी की कमी हर दशा में दिखाई देने लगी । इस कारण देश की प्रगति अवरुद्ध हो गयी ।

आर्थिक उन्नति करने में खेतीबारी की वृद्धि करना और उस प्रकार पैदावार का बढाना खूब आवश्यक है । इसके लिए सिंचाई के उन्नत साधन, उत्तम बीज, रासायनिक खाद, बिजली, समय समय पर ज़रूरी शिक्षा आदि आवश्यक है । देश की संपूर्ण स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन की कडी ज़रूरत है ।

नागर जी ने अपने उपन्यासों में मध्यवर्ग की छाती की धडकन पाठकों को सुनायी है । एक आदर्श समाजवाद की कल्पना "अमृत और विष" के "सारस लेक" के जीवन में की गई है । आर्थिक उन्नति के मार्ग, परंपराओं एवं रूढियों को तोडने की ज़रूरत, पूंजीवादियों का विरोध, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की परिरक्षा आदि आदि पर अपने साहित्य में उन्होंने समग्र चिन्तन किया है । इस प्रकार "नागर जी का साहित्य युग का प्रतिबिंब है, समय का दर्पण है और जीवन की विविधताओं का यथार्थ प्रतिरूपक है ।"[1]

नागर जी ने अपने उपन्यासों से व्यक्त किया है कि अर्थ जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है । नागर जी के जीवन और व्यक्तित्व का समग्र रूप से मूल्यांकन करने पर निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि उनका जीवन विचार के क्षेत्र में रहता है । जीवन के सभी संभव उपधियों और पुरस्कारों ने उनका चरण चूमकर उनकी महानता को मान्यता दी ।

---

1. अमृतलाल नागर - व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त - डॉ॰ सुदेश बत्रा, पृ॰43

व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं ने इस महानता की सृष्टि की । देश, काल एवं समाज को ध्यान में रखकर उनके प्रति अपने दायित्व का उन्होंने सफलतापूर्वक निर्वाह किया । यही उनके जीवन और व्यक्तित्व का सार समझा जा सकता है ।

नागर जी की कृतियाँ

उपन्यासों के अलावा नागर जी ने अनेकों कहानियों अनूदित रचनाओं संस्मरणात्मक ग्रन्थों और नाटकों पर भी अपनी तूलिका चलायी है ।

नागरजी की ख्याति प्राप्त कहानियाँ

नागर जी ख्यातिप्राप्त कहानियां "पाँचवां दस्ता" और सात कहानियां कहानी संग्रहों में संकलित हैं । इनकी कहानियाँ पाठकों की संवेदना को छूने में सक्षम हैं । उनकी "सिकन्दर हार गया" कृति में संकलित कहानियों में नागर जी का व्यंग्य विनोद, मानव - संस्कृति की ओर उनका लगाव और औपन्यासिक यथार्थ देखा जा सकता है । व्यक्ति की वेदना को जानकर सामाजिक धरातल पर उसे मथकर नवजीवन का सन्देश देना नागरजी की कहानियों का मूल उद्देश्य है । "देवरानी जिठानी" की कहानी स्त्रियों को शिक्षा देने का सुफल दिखाया गया है । प्रेमचन्द, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवती चरण वर्मा, रांगेय राघव, यशपाल आदि लेखकों की कहानी - परंपरा का विकसित रूप नागर जी की रचनाओं में मिलता है । 1935 के परवर्ती भारतीय समाज के अनेक रंग स्वतंत्रतापूर्व भारत पर पाश्चात्य-

प्रभाव खासकर लखनऊ नगर की मुस्लिम सभ्यता के विविध रंग नागर जी ने जैसे के तैसे उतार दिये हैं। लखनऊ के सजीव परिवेश का चित्रण "रेणु" का आंचलिक कला से होड लेता है।

नागर जी की कहानियों को पांच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. सामाजिक यथार्थ परक
   (अ) निम्न मध्यवर्गीय समाज का चित्रण
   (आ) सामाजिक विषमताओं का चित्रण
   (इ) मध्यवर्गीय समाज का चित्रण
2. राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित कहानियां
3. विश्लेषणात्मक एवं मनोवैज्ञानिक कहानियां
4. आंचलिक कहानियां
5. हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानियां

नागरजी की कई कहानियां समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। कई कहानियां विभिन्न कथा संग्रहों में प्राप्त हैं। उनकी प्रतिनिधि कहानियों के संग्रह हैं -

(1) मेरी प्रिय कहानियां (2) पीपल की परी (3) एटमबम
(4) तुलाराम शास्त्री (5) पांचवां दस्ता और सात कहानियां
(6) हम फिदाए लखनऊ (7) सिकन्दर हार गया
(8) भारत पुत्र नौरंगी लाल (9) कालदण्ड की चोरी आदि।

नागर जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से भारत की विषमता की ओर ध्यान दिया है। भारतीय समाज में फैली रूढियां, अन्धविश्वास, परंपरा आदि पर उन्होंने तीखा व्यंग्य किया है।

नागर जी ने देशी विदेशी साहित्य कृतियों का अध्ययन किया और अपनी रुचि केलिए जो अच्छा लगा उसका अनुवाद भी किया ।

नागरजी ने मापासा की कहानियों का अनुवाद "बिसाती" नाम से लिखा । गुस्ताव फ्लोवर के उपन्यास "मेडम बोवरी" का संक्षिप्त भावानुवाद "प्रेम की प्यास" नाम से किया । चेखव की कहानियों का "कला पुरोहित" नाम से और विष्णु भट्ट गोड से की मराठी पुस्तक का "आँखों देखा गदर" नाम से अनुवाद किया । कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के तीन गुजराती नाटकों का अनुवाद "दो फक्कड" शीर्षक से तथा मामा वरेरकर के मराठी नाटक का अनुवाद "सारस्वत" नाम से किया ।

इन अनूदित ग्रंथों के अलावा नागर जी ने बाल साहित्य की रचना करके बच्चों की दुनिया की ओर अपना लगाव दिखाया है । अनेक बाल पत्रिकाओं में वे बच्चों से बातें करते हैं । थकान के समय वे बच्चों के साथ खेलते और बातें करते हैं । "बेबी की प्रेम कहानी" बालमनोविज्ञान का बहुत ही सजीव अंकन है । बच्चों की ज्ञानवर्द्धन एवं शिक्षाप्रद पुस्तकों में इतिहास-झरोखे और बाल महाभारत अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं रोचक है।

नाटक साहित्य में भी नागरजी सिद्धहस्त हैं । अनेक रेडियो नाटक और प्रहसन भी उन्होंने लिखे । "युगावतार" नाटक साहित्य का उनका पहला प्रकाशन है । भारतेन्दु के जीवन की विशिष्टताएं और साहित्यिक सामाजिक जीवन का परिप्रेक्ष्य उन्होंने इसमें प्रस्तुत किया है । "सेठ बांकेमल" का एक नाट्य रूपान्तर बांकेमल" नामक प्रहसन भी उन्होंने लिखा है ।

"जिनके साथ जिया" नागरजी का संस्मरणात्मक ग्रंथ है । प्रसाद, शरत, सनेही जी, निराला, रूपनारायणपाण्डे, अम्बिका प्रसाद बाजपेयी, महादेवी, सुमित्रानन्दन पन्त, यशपाल, भगवती चरणवर्मा, बेढब बनारसी, रामविलास शर्मा, नरेन्द्र शर्मा, सोहनलाल द्विवेदी और पत्रकार नरोत्तम नागर जैसी व्यक्तियों के रोचक मधुर अन्तिम संस्करण उनकी इस कृति का विषय है जो इन महात्माओं के व्यक्तित्व, स्वभाव और वृत्तियों के व्यंजक हैं ।

अमृतलाल नागर के उपन्यास-परिचयात्मक अध्ययन

अमृतलाल नागर ऐसे एक सर्जक हैं जिन्होंने अपने युग का एक नक्शा प्रस्तुत किया है । बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध को - अपने भोगे हुए जीवन को - उन्होंने अपने उपन्यासों में उतार दिया । प्रेमचन्द ने गाँव की ओर अपनी दृष्टि डाली तो नागर जी ने नगरीय जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत किया ।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों का उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज में समन्वय की चिरन्तन समस्या का उद्घाटन करके उसका समाधान प्रस्तुत करना है । बाह्यारोपित सिद्धान्तों की यान्त्रिकता तथा रूढिबद्ध मान्यताओं की संकीर्णता पर व्यंग्यात्मक शैली में कोमल एवं कठोर प्रहार करके व्यापक मानवता का सन्देश वे देते हैं । व्यष्टि और समष्टि के परस्पर संबन्ध को वे जीवन के विकास का मूल सिद्धांत मानते हैं । अपने "महाकाल" और "बूंद और समुद्र" में व्यष्टि एवं समष्टि के समन्वय के प्रश्न को आधार बनाकर सजीव पात्रों की एक चित्रशाला और परिस्थितियों और घटनाओं के एक विस्तृत रंगमंच का निर्माण उन्होंने किया है। उनकी कला कोरी भावुकता या आदर्शवादिता की जड नहीं है बल्कि यथार्थ के ठोस धरातल पर अवतरित हुईहै

नई व्यवस्था और नईअभिव्यक्ति उनकी कला में है । समग्रत: नागरजी के उपन्यास उनकी लेखकीय क्षमता का संपूर्णपरिचय देते हैं ।

नागर जी के उपन्यासों को सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक एवं पौराणिक और सांस्कृतिक उपन्यास इस प्रकार दो शीर्षकों में रखा जा सकता है । महाकाल, सेठ बांकेमल, बूंद और समुद्र, अमृत और विष, सुहाग के नूपुर, नाच्यौ बहुत गोपाल, अग्निगर्भा, बिखरे तिनके और करवट सामाजिक उपन्यासों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं । शतरंज के मोहरे, सात घूंघटवाला मुखड़ा, एकदा नैमिषारण्ये, मानस का हंस और खंजन नयन ऐतिहासिक एवं पौराणिक संस्कृति के उपन्यास हैं ।

महाकाल - 1946 ई॰

"महाकाल" नागरजी का पहला सामाजिक उपन्यास है । इसमें 1943 के बंगाल के भीषण और हिला देनेवाले अकाल के चित्र हैं । नागर जी ने इसे एक संवेदनशील उपन्यासकार के रूप में चित्रित किया है न कि इतिहासकार के रूप में । जनसाधारण का दु:ख-दर्द और जमीन्दारों और महाजनों के विलास का व्यंग्यात्मक चित्रण इसमें सजीवता के साथ किया है ।

बंगाल का एक छोटा सा गांव मोहनपुर कथावस्तु का केन्द्र है। इस गांवके ऐंग्लो-बंगाली स्कूल का हेडमास्टर है पांचू गोपाल । सारा गांव अकाल की ज्वाला में धूं धूं कर जल रहा है । दाने-दाने के लिए लोग तडप रहे हैं । अपने लंबे परिवार का पेट भरने का प्रश्न पांचू के सामने है । एक ईमानदार शिक्षक के नाते अपने

संचित संस्कार यथार्थ की कटुता मे टकराकर चूर चूर हो जाते हैं । गाँव के एक बनिये मोनाई केवट को स्कूल की डेस्कें बेचकर अपनी चिन्ता से क्षण भर के लिए मुक्ति पा जाता है । अन्न के अभाव में उसके परिवार के सारे अंग एक एक करके मृत्यु का लक्ष्य बन जाते हैं । उसका बडा भाई अपनी पत्नी को चावल के लिए नूरुद्दीन के हाथों बेच डालता है । बेटे की इस अनैतिकता से भयभीत होकर माँ अपने प्राण छोड देती है । बाबा की आँखें भी बन्द हो गईं । केवल मंगला ही उसकी प्रतीक्षा में शेष रह गई थी । निराश होकर पाँचू घर से भाग जाता है । अचानक बाईं ओर एक नवजात शिशु के रोने की आवाज सुनाई पडती है । बच्चे की माँ मर चुकी थी । पाँचू उस बच्चे को लेकर लौट आता है और अपनी पत्नी की गोद में बच्चे को देकर एक नये जीवन की राह पर कदम रखता है ।

इस उपन्यास के अन्तर्गत तीन प्रमुख पात्र हैं । पाँचू गोपाल मुखर्जी जो मोहनपुर गाँव के ऐंग्लो-बंगाली स्कूल का हेडमास्टर है । मोनाई केवट जो गाँव का बनिया तथा महाजन है। दयाल गाँव का जमीन्दार है ।

पाँचू गोपाल उपन्यास का सबसे प्रमुख चरित्र है । वह लेखक के अपने विचारों का वाहक है । अकाल-संबन्धी और युग जीवन संबन्धी मान्यताएं नागर जी ने उसी के माध्यम से व्यक्त की है । उस का चरित्र सबसे अधिक बौद्धिक बन गया है ।

मोनाई केवट उपन्यास का और एक पात्र है जो पूंजीवादी मनोवृत्ति का साकार प्रतीक है । उसके माध्यम से नागर जी ने पूंजीवाद की विकृतियों को बडी सफाई से मूर्त किया है । अकाल उसके लिए वरदान बनकर आता है । छल-प्रपंच, पाखंड और स्वार्थता का जीता जागता अवतार है वह ।

दयाल भी मोनाई की भांति समाज का एक शोषक है । सामन्तवादी प्रवृत्तियां दयाल के चरित्र में मुखर हुई हैं । सामन्त वर्ग की विलासिता, अहंकार, स्वार्थपरता आदि का प्रत्यक्षीकरण उसके माध्यम से हुआ है ।

उपन्यास की चरित्र सृष्टि पर्याप्त सजीव है । नागर जी का पहला उपन्यास होने पर भी नागरजी के कृतित्व में "महाकाल" का महत्वपूर्ण स्थान है ।

शिल्प विधान उपन्यास की संपूर्णता का द्योतक है । "महाकाल" की कथा प्रतिपादन शैली, पात्रों की मानसिकता, संवाद की व्यक्तित्व-व्यंजकता, परिवेश की यथार्थता, भाषा की सहज प्रवाहमयता आदि शिल्पगत तत्व रचनाकार के नवीन मानवमूल्यों की प्रतिष्ठा में सहायक सिद्ध हुए हैं ।

सेठ बांकेमल - 1955 ई.

यह एक हास्य-व्यंग्य प्रधान उपन्यास है । सेठ बांकेमल के संस्मरण के माध्यम से उनके जमाने की रीति रिवाज को चित्रित किया है । डॉ. बेचन ने कहा है - "सेठ बांकेमल नागर जी के हास्य रस के उपन्यास की रचना है । इसमें प्राचीन संस्कृति के प्रेमी एवं वर्तमान की सभी बातों को अमंगल माननेवाले सेठ बांकेमल एवं चौबेजी - ये दो प्रमुख पात्र हैं ।[1]" एक जर्जर सामन्तीय परंपरा के

---

1. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास-
   - डॉ. बेचन - सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1965, पृ.141

भग्नावशेष का परिचय इसमें है । नयी पीढी की फैशन-परस्ती और गिरती हुई मानसिकता पर उन्होंने प्रहार किया है । डॉ॰रामविलास शर्मा ने कहा है कि इस उपन्यास में आंचलिक संस्कृति का सजीव चित्र मिल जाता है[1] ।"

उपन्यास में दो ही चरित्र प्रधान हैं । सेठ बांकेमल और चौबेजी । ये दोनों ही चरित्र परस्पर मिल - जुलकर सामन्तवादी व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं । श्री॰ माधुरी खोसला का कथन है - "सेठ बांकेमल चौबेजी के व्यक्तित्व के पूरक के रूप में उस युग की संपूर्ण व्यवस्था का सजीव चित्र पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं[2] ।" सेठ बांकेमल का अपना जीवनानुभव है । उन अनुभवों के माध्यम से पुरानी सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं को वह स्थापित करता चलता है । मानवतावाद, प्रगतिशीलता, सांप्रदायिकता के परे उच्च विचार, दीन दुखियों के प्रति करुणाभाव उनके व्यक्तित्व के अंग हैं ।

उपन्यास क्षेत्र में स्वस्थ हास्य का नूतन शिल्प प्रयोग इस रचना में दृष्टिगत हुआ है । वार्तालाप की शैली में यह उपन्यास लिखा गया है । हिन्दी में इस प्रकार की शैली का लिखा गया कदाचित यह अकेला उपन्यास है । राजेन्द्र यादव के शब्दों में "वर्णनात्मक शैली की सजगता की दृष्टि से भारतीय साहित्य के बाहर भी ऐसा मस्त चरित्र मिलना मुश्किल है[3] ।" विविध वर्गों की बोलियाँ उनके उपन्यास में

---

1. कथा विवेचना और गद्यशिल्प - डॉ॰रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1982, पृ॰52
2. हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प-माधुरी खोसला, विजयन्त प्रकाशन, नईदिल्ली, 1973, पृ॰133
3. आलोचना - हिन्दी के सामाजिक कथानायकों का विकास - शीर्षक लेख - राजेन्द्र यादव, पृ॰48

प्राप्त होती है । उपन्यास की सारी कथा आगरा के व्यापारियों द्वारा इस्तेमाल की जानेवाली बोली में कही गई है ।

नागरजी सक्षम हास्य तथा व्यंग्य के लेखक के रूप में अपने "सेठ बांकेमल" में प्रत्यक्ष हुए । डॉ॰ रामविलास शर्मा ने नागर जी को हास्य रस के जाने माने लेखक कहा है - "वे हास्य रस के जानेमाने लेखक हैं । हास्य के लिए वे आसपास के सामाजिक जीवन के आलंबन ही नहीं चुनते, पौराणिक गाथाओं और भटियारिनों के किस्से-कहानियों का भी सहारा लेते हैं[1] ।" बीते हुए समन्तवादी युग की सामाजिक सांस्कृतिक परंपराओं के साथ अपने व्यक्तित्व को भी नागर जी ने इस कृति में साकार कर दिया है।

<u>बूंद और समुद्र - 1956 ई॰</u>

"गोदान" के बाद "बूंद और समुद्र" को उत्तर भारतीय जीवन का दूसरा महाकाव्य कहा जा सकता है और इसमें भी कोई अत्युक्ति नहीं है कि औपन्यासिक माइक्रोस्कोप से बूंद को ऐसी सामुद्रिक विराटता शायद ही कभी मिली हो । व्यक्ति और समाज के जिन अछूते क्षणों और कोणों को प्रस्तुत उपन्यास में वाणी दी गई है । उसके लिए असंदिग्ध रूप से अद्वितीय प्रतिभा की अपेक्षा है । सचमुच इस उपन्यास में गलियां बोलती हैं, दीवारें बातें करती हैं और मुहल्ले जागते हैं । उपन्यास के मुख्य पात्र ताई को केन्द्र बिन्दु बनाकर इसकी कथा बढाती है । ताई राजबहादुर सर द्वारिकादास की परित्यक्ता पत्नी है । ताई की एक पुत्री के जन्म होने के कारण सास सहित सभी परिवार के ताने सुनने वह विवश हो गई ।

---

1. आस्था और सौन्दर्य - डॉ॰रामविलास शर्मा, पृ॰133

दुर्योग से आठ मास के बाद उसकी पुत्री की मृत्यु हो जाती है । दुःख सहतेसहते उसकी मनःस्थिति बिगड गई । वह हिंसा के मार्ग पर अग्रसर हो गई । ताई घर छोड्कर द्वारिकादास के पुरखों की हवेली में जाकर बसने लगी । उसके टोने-टोटके, लडाई-झगडे से सारा परिवार और मुहल्ला भयभीत हो गया । ताई के जीवन में अनेक घटनाएँ हुई । अन्त में ताई की मृत्यु हो जाती है ।

दूसरी एक कथा चित्रकार सज्जन की है । सज्जन के व्यक्तित्व के बारे में डॉ॰ त्रिभुवन सिंह ने कहा है - "सज्जन में मनुष्यत्व का वह प्रज्वलित दीपक अपनी संपूर्ण आभा एवं प्रकाश के साथ विद्यमान है ।[1]" वनकन्या नामक प्रगतिशील विचारों की एक युवती से उसका संपर्क होता है और वह संपर्क विवाह में परिणत होता है । उनका परिचय सन्त बाबा रामजीदास से होता है । बाबा के परोपकारी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर सज्जन अपना जीवन और संपत्ति जनसेवा के लिए अर्पण कर देता है ।

उपन्यास की तीसरी कथा साहित्यकार महिपाल, उसकी पत्नी कल्याणी, महिपाल की प्रेमिका डॉ॰शीलास्विंग से संबन्धित है । लेखक महिपाल के हृदय में रूढिवादी विचारों की युवती कल्याणी का कोई स्थान नहीं है । डॉ॰ शीला से वह अविहित बन्ध स्थापित करता है । अन्त में लोक-लज्जा के कारण वह शीला से विवाह नहीं कर पाता और अपने परिवार को अपना लेता है ।

---

1. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - डॉ॰त्रिभुवनसिंह,
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण
वि॰सं॰2012, पृ॰526

ताई "बूंद और समुद्र" की एक प्रधान चरित्र है । नागर जी ने इस ताई के जरिए रूढिवादिता, अन्धविश्वास, जादू-टोना, मंत्र-तंत्र आदि पर डटकर विश्वास अर्पित करने वाले एक समाज को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है । साहस, सहिष्णुता, उदारता आदि अनेक गुण इसमें निहित हैं तो भी भीरुत्व और संकीर्णता जैसी अनचाही आदतें भी उसमें हैं ।

दूसरा एक प्रमुख पात्र है चित्रकार सज्जन । वह अपनी एक मण्डली बनाकर सामाजिक सेवा में रत होता है । वनकन्या नामक एक युवती से उसका परिचय होता है और वह परिचय विवाह में परिणत होता है । वनकन्या के साथ वह समाज सेवा का कार्य करता है।

महिपाल तीसरा प्रमुख पात्र है । महिपाल का व्यक्तित्व आहत और विवश चरित्र के रूप में है तो भी कम प्रभावक नहीं है । उसकी कहानी एक बुद्धिजीवी की कहानी है । अपनी लेखकीय कृति से अपना जीवन यापन करना उसके लिए बहुत तकलीफ की बात मालूम होती है । अपने सारे आदर्शों को खोकर वह ननिहाल में चोरी करता है । अपनी भानजी शकुन्तला के विवाह में लाला रूपरतन उसकी चोरी का भण्डाफोड करता है । अपमान भार को सहन कर न सकने के कारण नदी में डूबकर वह आत्महत्या करता है ।

कर्नल और एक प्रमुख पात्र है । उसका सारा व्यवहार मानवतावाद से प्रेरित है । वह परोपकारी है, सहृदय है और सत्यनिष्ठ है । जब कभी वनकन्या के लिए सज्जन के लिए और कल्याणी केलिए आवश्यकता पड जाती है तब कर्नल उसके उपकार में उपस्थित हो जाता है ।

बाबा रामजीदास एक सेवानिरत त्याग संपन्न व्यक्ति है । गान्धीवाद का प्रतीक वह सदा कर्मनिरत दीख पड़ता है । समाज से बहिष्कृत पगलों की सेवा वे संपूर्ण खुशी के साथ करते हैं ।

इस उपन्यास के हर पात्र का अपना अपना व्यक्तित्व है । यहाँ पर चरित्रों की नागरजी की प्रतिपादन की विशेषता चिर नूतन बन गई है । अपने गहरे अनुभवों के आधार पर ही यह वर्णन उन्होंने किया है । अनगिनत चरित्रों घटनाओं और अनुभवों के द्वारा नागरजी ने संपूर्ण भारतीय जीवन के दर्शन खींच दिखाये हैं । संक्षिप्त में कहें तो इस उपन्यास में नागरजी की पैनी दृष्टि, व्यापक अनुभव, स्वस्थ चिंतन तथा समृद्ध लेखनी का प्रमाण देखा जा सकता है ।

सहज बोलचाल की भाषा, अलंकृत एवं साहित्यिक भाषा इस प्रकार से कथावर्णन को लेखक ने रोचक बनाया है । भाषा की रोचकता, प्रवाहमयता, चित्रणात्मकता, सरलता आदि विशेष उल्लेखनीय है ।

<u>अमृत और विष - सन् 1966</u>

नागरजी का यह उपन्यास दोहरे कथानक को लेकर चला है । उपन्यास के प्रधान पात्र लेखक अरविन्दशंकर का संबन्ध पहले कथानक के साथ है । इस कथानक में लेखनकला से जीविकोपार्जन करनेवाले लेखक के आन्तरिक तथा बाह्य संघर्ष को उन्होंने दर्शाया है । अरविन्दशंकर की साठवीं वर्षगाँठ का संकेत उपन्यास के प्रारंभ में है । उसका पारिवारिक जीवन विषमतर हो जाता है ।

ऐर्नेस्ट हेमिंग्वे का "बूढा मछेरा" उसे शक्ति प्रदान करता है । वह अपने मन को कठोर बनाता है । जीने का निर्णय वह कर लेता है ।

दूसरे कथानक का आरंभ लखनऊ नगर के एक मुहल्ले से होता है । राजा केशोराय की बारादरी इसका केन्द्र बिन्दु है । बारादरी इस मुहल्ले के सारे मध्यवर्गीय युवकों का एकमात्र स्थान है । रमेश इन नवयुवकों का नेता है। वह पडोसी रद्दूसिंह की बालविधवा रानी बाला से प्रेमबन्धन में पड जाता है । खन्ना दंपति की छत्र छाया में रानीबाला से रमेश का विवाह होता है ।

नागरजी ने अरविन्दशंकर को अपने प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है । अरविन्दशंकर इस उपन्यास में बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला पात्र है । संघर्षशील एवं आदर्श संपन्न जीवन वह व्यतीत करता है । "वह अपने मन को उत्तेजित, खीझ भरा, थकाहारा पाते हैं ।"[1]

मध्यवर्ग के प्रमुख कथापात्रों में रमेश और रानीबाला प्रमुख है । रमेश एक प्रगतिशील तरुण पत्रकार है । तारुण्य सुलभ उत्साह, क्रांतिभावना, समाज सेवा का भाव आदि उसके व्यक्तित्व की खासियत है । अन्तर्जातीय प्रेम विवाह करके युवापीढी के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करता है । छात्र आन्दोलन और बारहदरी के घटना प्रसंग से उसका विद्रोही मनोभाव व्यक्त होता है । तो भी इस प्रसंग में आवश्यक गंभीरता का अभाव उसमें दिखाई पड़ता है ।

---

1. कथाविवेचना और गद्यशिल्प - डॉ. रामविलास शर्मा,
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1982, पृ.58

नागर जी ने इस उपन्यास में लखनऊ नगर को कथानक का केन्द्रबिन्दु बनाकर वहाँ के विभिन्न वर्गों एवं संस्कारों का परिचय कराया है । इसका कथासूत्र लखनऊ के बाहर सारसलेक और मास्को तक फैला है । यह उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन की विराटता का प्रतिबिंब है । भारतीय समाज के विविध स्तरों का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्रों के संघर्ष, मूल्य और आदर्श इसमें लक्षित होते हैं ।

इस उपन्यास की भाषा सरल और स्वाभाविक बोलचाल की भाषा है । अरविन्दशंकर के आत्मकथा कथन की भाषा गंभीर, प्रवाहपूर्ण और साहित्यिक है । कुछ पात्रों की भाषा पूर्वी या ग्रामीण अवधी है । डायरी शैली तथा वर्णनात्मक शैली का प्रयोग इसमें मुख्य रूप से हुआ है । संपूर्ण रूप से इसकी भाषा शैली मनोरंजक और प्रवाहमयी है ।

<u>सुहाग के नूपुर - सन् 1960</u>

दक्षिण भारत के प्राचीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रचित सामाजिक उपन्यास है नागर जी का "सुहाग के नूपुर"। "इस उपन्यास की रचना वर्णनात्मक पद्धति पर की गई है ।"[1] इसमें दक्षिण भारत के कावेरी पट्टणम् नगर में मासात्तुवान और चेट्टियार मानाइहन नामक दो वैभव संपन्न व्यापारी थे । मासात्तुवान के इकलौते बेटे कोवलन और मानाइहन की एकमात्र पुत्री कन्नगी दोनों का विवाह होता है । विवाह के पूर्वही कोवलन का प्रेम संबन्ध रूपवती नर्तकी नगरवधु माधवी के साथ था । विवाहोपरान्त विवाह का आदर्श बनाये रखने में वह असफल बन जाता है । माधवी के

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास - डॉ॰तहसीलदार दुबे, नटराज पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण 1983, पृ॰197

सौन्दर्य से वशीभूत होकर वह कन्नगी से विमुख होता है । कन्नगी कोवलन द्वारा निर्ममता पूर्वक पीटा जाकर हवेली से निष्कासित की जाती है । अन्तत: सुहाग के नूपुर की प्राप्ति में असफल होकर माधवी कोवलन को "कामी कुत्ता" कहकर उसे धक्का देकर भगा देती है । कोवलन कन्नगी की शरण में लौट आता है । कन्नगी ससन्तोष अपने पति को अपनाती है और नवजीवन आरंभ करने केलिए मदुरा चली जाती है । कोवलन मदुरा में नूपुरों को बेचने का श्रम करता है । तो उन नूपुरों को मदुरा महाराज की पत्नी के नूपुर के रूप में समझकर चोरी के अपराध में कोवलन पकडा जाता है और उसे मृत्यु दंड देने का निश्चय होता है । कन्नगी के साहस और बुद्धिमत्ता से कोवलन का निरपराधित्व प्रकट होता है । मदुरा महाराज ने कोवलन को जीवनदान दिया और पांच लाख स्वर्णमुद्रायें भी प्रदान कीं । इधर माधवी एक राजपुरुष की शरण में जाती है और उसके द्वारा वेश्या बना ली जाती है । विक्षिप्तावस्था में वह एक बौद्धशिबिर में शरण प्राप्त कर लेती है और महाकवि इलंगोवन से नारी के अधिकार और उसकी प्रतिष्ठा की मांग करती है[1]।

उपन्यास का मुख्य चरित्र माधवी है । माधवी के चरित्र के जरिए वेश्या समस्या को पाठकों के सामने नागर जी ने उजागर किया है - "जहाँ तक हिन्दी उपन्यास में वेश्या समस्या के चित्रण का संबन्ध है, प्रारंभिक काल से ही उपन्यासकार इसे एक प्रमुख, सामाजिक समस्या के रूप में चित्रित करते आये हैं[1] ।" माधवी सुहाग के नूपुर को प्राप्त कर समाज की प्रतिष्ठा पाना चाहती है ।

---

1. हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन - डॉ. रमेश तिवारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1982, पृ.149

उसके लिए किये गये प्रयत्नों में वह असफल बन जाती है और समाज का यथार्थ जानकर वह विद्रोहिणी बन जाती है ।

कन्नगी का चरित्र आदर्श पतिव्रता भारतीय नारी का चरित्र है ।पति के प्रति उसे कोई शिकायत नहीं । उसके लिए वह अपने को समर्पित करती है । कुल का गौरव बनाये रखने में वह जागरूक है। प्रतिकूलताओं को झेलते हुए वह अपने धैर्य और त्याग का परिचय देती है।

कोवलन उपन्यास का मुख्य पुरुष पात्र है । विवाहित होने पर भी वेश्या माधवी के सौन्दर्य पर आकृष्ट होकर अपथ मार्ग में विलासी जीवन बिताता है । माधवी को वेश्या बनाकर भोगता है, पर उसकी कोख से उत्पन्न सन्तान की गणना अपने वंश में वह करना नहीं चाहता ।

इस उपन्यास की भाषा कथानक एवं वातावरण को प्रस्तुत करने में सक्षम हुई है । तमिल शब्दों का प्रयोग खूब हुआ है । उनके दूसरे उपन्यासों जैसे इस उपन्यास में भी किस्सागो शैली प्रयुक्त हुई है ।

लेखक नागरजी ने अपने इस उपन्यास में इतिहास ग्रंथों का अवगाहन करके अपने चित्रणों को यथासंभव प्रामाणिक बनाने की चेष्टा की है । इसलिए तमिल महाकाव्य "शिलप्पदिकारम्" की कथावस्तु पर आधारित होते हुए भी यह प्राय: एक स्वतंत्र रचना बन गई है । नारी को नीति स्थापित कर देना ही पातिव्रत्य के मूल्य के प्रति आस्थावान नागर जी की चाह है ।

नाच्यौ बहुत गोपाल - सन् 1978

नवीन शैली शिल्प में रचित नागर जी का सामाजिक उपन्यास है "नाच्यौ बहुत गोपाल" । निर्गुनिया के माध्यम से नारी जीवन की विवशता और मेहतर समाज के माध्यम से निम्न वर्गीय समाज की विरूपता इसमें दिखाई गई है ।

उपन्यास शर्मा जी तथा श्रीमती निर्गुनिया की भेंट वार्ता से प्रारंभ होता है । निर्गुनिया का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था । बचपन में ही माता का स्नेह उसे नष्ट हो गया । उसके पिता ने उसे अपने मालिक वटुकप्रसाद के सुपुर्द कर दिया । वहाँ उसका विवाह वृद्ध मसुरिया दीन से हुआ । मसुरिया दीन से यौन तृप्ति न पाकर निर्गुनिया मोहना मेहतर के साथ भाग जाती है । मोहना एक कुख्यात डाकू बन जाता है । वह पुलीस मुठभेड में मारा गया । छावनी के रिवरेण्ड फादर और डॉ॰ अण्डरसन ने निर्गुनिया और उसकी सन्तान का पालन पोषण किया । निर्गुनिया की पुत्री शकुन्तला को अमरीका भेजकर शिक्षा दी । निर्गुनिया की मृत्यु हो जाती है ।

"नाच्यौ बहुत गोपाल" का प्रमुख चरित्र श्रीमती निर्गुनिया का है । निर्गुनिया के संपूर्ण व्यक्तित्व में एक ओर अटल आत्म विश्वास, निष्ठा और समर्पण तो दूसरी ओर निर्मलता, पवित्रता और ममत्व के साथ बाधाओं को आत्मसात करने की अद्भुत क्षमता है । मेहतरानी बनकर जीने में वह संकोच नहीं करती । उसके प्रति हमारे हृदय में घृणा न उत्पन्न होकर सहानुभूति की भावना जागृत होती है । निर्गुनिया नागर जी की अभूतपूर्व उपलब्धि है जिसके समान एक तेजस्विनी नारी हिन्दी उपन्यास जगत में मिलना दुर्लभ है ।

मोहना "नाच्यौ बहुत गोपाल" का मुख्य पुरुष पात्र है । वह जन्म से ठाकुर, जाति का मेहतर और कर्म का डाकू है । अपने व्यक्तित्व की चमक से पंडिताइन निर्गुनिया को अपने साथ भगा लाता है । एक ओर वह अँग्रेज़ी अफसरों को लूटता है और दूसरी ओर वह गरीबों असहायों विशेषकर मेहतरों की सहायता करता है।

भाषा शैली के एक जीवन्त रूप और हिन्दी अँग्रेज़ी शब्दों के मिले जुले रूप को दिखाकर भाषा के शिल्पी जादूगर नागरजी ने अपनी अनोखी प्रतिभा को प्रदर्शित किया है ।

समग्रत: "नाच्यौ बहुत गोपाल" में नागर जी ने अपनी चिरन्तन आस्था और प्रखर मानवीयता दर्शायी है । निश्चय ही यह कृति अपने शीर्षक को सार्थक करती हुई सदियों से चले आये एक वर्ग की पीडा का प्रखर विद्रोह है ।

अग्निगर्भा - सन् 1984

पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी शोषण का चित्रण ही अग्निगर्भा में प्रतिपादित है । यह एक सामाजिक उपन्यास है ।। इसमें नारी की सामाजिक स्थिति को नागरजी ने स्पष्ट किया है ।

सीता पाण्डेय निम्न मध्यपरिवार की युवती है । एम॰ए॰ तक प्रथम श्रेणी में पास हुई है । वह आगे पढना चाहती है । पिता की संकीर्ण दृष्टि लडकियों के संबन्ध में और आर्थिक विवशता उसकी पढाई में बाधा बनती है । पढाई में कमज़ोर कुसुम और मैत्रेयी का संभ्रान्त परिवार में विवाह हुआ, प्रतिष्ठित महिलाएं बनीं । मैत्रेयी का विवाह अन्तर्जातीय सारस्वत प्रतिष्ठान की निर्देशक पद तक पहुँचती है । सीता पी-एच॰डी॰ करती है। दहेज की विवशता और पिता की संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण सीता को कालेज में नौकरी

कराना चाहते हैं। घर की प्रतिकूल परिस्थिति से न पति न नौकरी मिल जाती है। अपने एक रिश्तेदार रामेश्वर की सहायता से कालेज में अस्थायी नियुक्ति प्राप्त कर लेती है। रामेश्वर-सीता का विवाह होता है। रामेश्वर के प्रेम में आत्मीयता न होकर स्वार्थ ही अधिक है। सीता अपने पति के इस स्वार्थी दृष्टिकोण को समझ लेती है। सीता के हृदय में पुरुष जाति के प्रति विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। वह नारी वर्ग को संगठित करती है। यातनाएं और असमानताएं लेखों के माध्यम से समाज के सम्मुख प्रस्तुत करती है। एक विरोधी व्यक्ति हिम्मतराय छिप रहकर उसे गोली मारता है। सीता का कारुणिक अन्त होता है।

सीता इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। लेखक ने उसकी कल्पना एक निम्न मध्यवर्ग की पढी लिखी प्रतिभा संपन्न युवती के रूप में की है। वह विकट परिस्थितियों में धैर्य नहीं खोती अपितु स्थिति को कुशलता से संभाल लेती है।

रामेश्वर इस उपन्यास का मुख्य पुरुष पात्र है। अवसरवादिता और सफलता उसके जीवन के ये दो ही मूलमन्त्र है। उनके संपर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को वह अपने लाभ के लिए इस्तेमाल करता है। इस कार्य में किसी उचित - अनुचित की परवाह वह नहीं करता। सीता का मनोबल तोडने केलिए वह उसे उसके बच्चे से नहीं मिलने देता। दहेज का लालची, पैसे का भूखा रामेश्वर मानवता, उदारता, शील, सहानुभूति आदि गुणों से एकदम शून्य है। वह निम्न प्रकृति का एक अशिष्ट व्यक्ति है जो पैसे के लिए ही जीता है।

इस उपन्यास में नागरजी का विचार पक्ष अत्यन्त पुष्ट है। समसामयिक जीवन के अनेक पक्षों पर लेखक ने संवेदनात्मक दृष्टि डाली है। तथा एक वैज्ञानिक के समान उन पर विचार किया है।

उपन्यास के कुछ पात्रों की भाषा आंचलिक है। यह प्रयोग उपन्यास में कलात्मक सौन्दर्य लाने में सक्षम रहा है। उसी समय रामेश्वर की भाषा भद्दी गालियों से भरी हुई है। मुसलमान पात्रों से ठेठ उर्दू का प्रयोग कराया गया है।

बिखरे तिनके - सन् 1982

युवा पीढी की शक्ति, पुरानी एवं नई पीढी का संघर्ष आदि को मुख्यता देते हुए लिखा गया सामाजिक उपन्यास है "बिखरे तिनके"। अपने इस उपन्यास में नागर जी ने पुरानी पीढी के लोगों के साथ नई पीढी का संघर्ष और पूंजीपतियों एवं चोर बाजारियों के विरुद्ध गतिशील युवकों का संघर्ष व्यक्त किया है।

युवा पीढी के कर्मवीर युवक हैं बिल्लू तथा उसके साथी चुन्नीलाल। बिल्लू पूंजीपति लोगों को साधारण जनता का शोषण करते समझ लेता है। बिल्लू अपने साथी चुन्नीलाल के साथ मुनाफाखोरों के गुप्त भण्डारों का पता लगाते हैं। उनके विरुद्ध बडे कार्य वाही करने का आग्रह करते हैं। अवैध रूप से धन-संपत्ति को प्राप्त करना वह नहीं चाहता है।

इस उपन्यास का मुख्य पात्र है बिल्लू । न्याय और नीति की स्थापना के लिए वह खड़ा होता है । अपने पिता को वह भ्रष्टाचारी जान लेता है। इसलिए उनके साथ बात करना तक वह पाप समझता है । वह घर छोड़कर दूसरे शहर जाकर रहता है । सामाजिक दुर्व्यवस्था को वह बदलना चाहता है । उसके सभी साथी अपने जीविकोपार्जन के लिए चले जाते हैं तो बिल्लू अपने सिद्धान्तों पर अटल रहता है ।

युवा पीढी की शक्ति को दिखाने के लिए नागर जी ने यह उपन्यास लिखा है । नागर जी ठीक जानते हैं कि युवा पीढी राष्ट्र की अमूल्य संपत्ति है । उन्होंने दिखाया है कि जन समुदाय आर्थिक तौर पर पीडित है । उसमें अपने अपने वर्ग के उद्धार के लिए आक्रोश का स्वर है । वह जानता है कि बढती हुई पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में साधारण जनता की सुख सुविधाओं की पूर्ति असंभव है ।

इस उपन्यास की भाषा युवकों की तीक्ष्णता को दिखाने में पर्याप्त बन गई है । नागर जी की अपनी सरल-सरस-प्रवाहमयी शैली भी इस उपन्यास को महानता प्रदान करती है ।

करवट - सन् 1985

श्री, अमृतलाल नागर की एक विराट औपन्यासिक कृति है "करवट" । बहुत विशाल ऐतिहासिक चित्रपट, अनगिनत पात्र, भारत के बहुत निकट के समाचारों के विविध रंग इसकी विशेषता है ।

एक महाकाव्यात्मक उपन्यास के क्रम में यह लिखा गया है । अंग्रेज़ों के व्यापारी के रूप में आकर स्वयं शासक बन बैठने की कथा यहाँ विस्तार रूप से कही गई है । लाहौर-लखनऊ से लेकर कलकत्ता तक का उत्तरी भारत इस कथाक्रम की घटना स्थली है । तनकुन लखनऊ के एक खत्री परिवार का अत्यन्त होनहार, कुशाग्रबुद्धि, शिक्षित तथा बुद्धिमान लड़का है । नौ वर्ष की आयु में उसका विवाह एक स्वजातीय कन्या चमेली के साथ हो गया था । बारह वर्ष की आयु में तनकुन को शैक्षणिक योग्यताओं के लिए आलम फाजल की उपाधि मिली । तो एक धनाढ्य नारी मन्नो से उसका विवाह होने का प्रस्ताव पिता ने स्वीकार किया । पर पुत्र ने यह न माना । वह घर छोड़कर चला गया । अंग्रेज़ों के साथ रहकर अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त कर ली । लखनऊ में उसने अंग्रेज़ी स्कूल चलाया । पत्नी चंपक का नाम भी उसने चंपकलता रख दिया । उनका पुत्र देश दीपक डाक्टर बन गया । लखनऊ में प्लेग की महामारी फैल गई । बीमार बनकर तनकुन भी चल बसे । महामारी के कारण लाशों को ठिकाने लगाने केलिए कार्यकर्ता उपलब्ध नहीं हो रहे थे । इतने में बाबा जी नामक एक वृद्ध साधु शहर में अवतरित हुआ जो अकेले ही दो दो लाशों को कन्धे पर डालकर अग्नि अर्पण कर आता था । उस निराले साधु की आँखों में देखते ही देशदीपक की मनोदशा बदल गई । वह भगवान का भक्त बन गया ।

इस कथानक के द्वारा नागर जी ने भारत में अँग्रेज़ी राज्य जमने की तथा भारत में प्रगतिशील जीवन पद्धतियों के आरंभ होने की कथा विस्तार से दे दी है । बीसवीं शती में प्रवेश करके उपन्यास समाप्त हो जाता है । भारत का राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक पूरा वृत्तान्त इसमें वर्णित है । सामाजिक क्षेत्र का वर्णन तो खूब सजीव है । एक विशाल एलबम के समान यह उपन्यास पृष्ठ-पर-पृष्ठ नई नई घटनाओं को प्रस्तुत करता ही चलता है । अन्तिम शब्द तक यह उपन्यास अपनी रोचकता को बनाए रखता है ।

तनकुन वंसीधर इस उपन्यास का एक मुख्य पात्र है । वह महत्वाकांक्षी भारतीय का प्रतीक है । वह अपनी संस्कृति से प्रेम करते हुए अँग्रेज़ों से दण्डवत करते रहने को ही सफलता का मूलमंत्र समझता है । तनकुन का पुत्र देशदीपक वास्तव में उस औसत भारतीय के चित्र को पूरा करता है । देशदीपक का चरित्र एक सफल, कुशल, होनहार व्यक्ति का चरित्र है ।

इसकी भाषा पात्रों के भाव को प्रकट करने के लिए पर्याप्त बन गई है । सरल एवं सरल भाषा शैली के कारण यह उपन्यास आदि से अन्त तक रोचक बन पड़ा है ।

<u>शतरंज के मोहरे - सन् 1958</u>

यह नागर जी का एक ऐतिहासिक उपन्यास है । अपने इस उपन्यास में नागरजी 1857 के गदरकाल से कुछ समय पूर्व के लखनऊ की नवाबी संस्कृति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है ।

इस कृति में पाँच प्रमुख कथाप्रसंग है ।
§1§ शाहे अवध गाजी उद्दीन हैदर और बादशाह बेगम प्रसंग §2§ दुलारी प्रसंग §3§ कुदसिया बेगम और नवाब नसीरूद्दीन हैदर प्रसंग §4§ कुलसम और दिग्विजय ब्रह्मचारी प्रसंग §5§ भुलनी और स्मिथ प्रसंग ।

बादशाह बेगम नवाब गाजी उद्दीन हैदर की बेगम है । वह अपने पति को शतरंज का मोहरा समझती है । गाजी उद्दीन हैदर पत्नी के प्रेम से वंचित होकर एक बाँदी से प्रेम करता है । उस बाँदी में उसका नसीरूद्दीन नामक पुत्र पैदा होता है । बादशाह बेगम बाँदी की हत्या करवाती है । बच्चे के पालन-पोषण के लिए दुलारी नियुक्त की गई । गाजी उद्दीन की मृत्यु के बाद नसीरूद्दीन सिंहासनारूढ हुआ । और उस ओर दुलारी ने शाही तन्त्र की लगाम अपने हाथ में ले ली । नसीरूद्दीन ने दुलारी की सुन्दरता पर रीझकर उसे अपनी बेगम बना लिया ।

नवाब नसीरूद्दीन हैदर की प्रेमिका थी कुदसिया बेगम । अन्त:पुर के षडयन्त्र से प्रभावित होकर नसीरूद्दीन उससे घृणा करने लगा । अत्यन्त दुखी होकर निरपराधिनी कुदसिया ने विष खाकर आत्महत्या कर ली । इस घटना से पश्चात्तापवश कुछ दिनों बाद नसीरूद्दीन का भी देहावसान हो गया ।

कुलसुम की देखरेख करनेवाला था मृत्युंजयसिंह । उसने कुलसुम को प्रसिद्ध जमीन्दार लाल कुँवर सिंह की शरण में दिया । जमीन्दार की मृत्यु के बाद कुलसुम वेश्या बनने विवश होती है ।

झुनी अपनी माँ के साथ नील कोठी में काम पर जाया करती थी । दुर्भाग्यवश वह नील कोठी के मुनीम मिस्टर स्मिथ की वासना का शिकार बना ली गई । आत्मग्लानि के कारण झुनी ने अपना प्राणान्त कर लिया ।

बादशाह गाजीउद्दीन हैदर इस उपन्यास का एक मुख्य पात्र है । वह शान्त और कर्तव्यनिष्ठ था । परन्तु तत्कालीन विषम परिस्थितियों के सम्मुख उसका भविष्य अन्धकारमय हो जाता है ।

नसीरुद्दीन हैदर और एक चरित्र है जिसमें पिता की दुर्बलताएं दीख पड़ती हैं । कुदसिया की मृत्यु के पश्चात् उसका मानसिक सन्तुलन बिगड जाता है ।

इस उपन्यास की भाषा भावानुकूल, सजीव, सरस एवं प्रवाहपूर्ण है । यह उपन्यास नवाबी सांस्कृतिक परिवेश में रचित होने के कारण अरबी फारसी भाषा की शब्दावली से पूर्ण है । आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है । कभी कभी अवधी भाषा का प्रयोग भी कर जाते हैं ।

"शतरंज के मोहरे" अवध के नवाबी जमाने की कथा है । नागर जी ने कथानक की सृष्टि में अवध के इतिहास से संबन्धित ग्रंथों एवं लोक प्रचलित कथाओं से पर्याप्त सहायता ली है । नवाबों के क्रिया-कलाप, अन्तःपुर में दिन-रात चलनेवाले कुचक्र, नवाबों की बढ़ती हुई विलासिता आदि इतिहास सम्मत है । ऐतिहासिक घटनाओं के परिवेश में रचित इस उपन्यास में भावप्रवणता एवं मार्मिकता लाने के लिए अनेक सरस प्रसंगों की उद्भावना की गई है ।

सात घूँघटवाला मुखडा - सन् 1968

यह नागर जी का ऐतिहासिक चरित्र प्रधान उपन्यास है । बेगम समरू के चरित्र को पुनरुज्जीवित करने का सफल प्रयास इसमें किया गया है ।

बेगम समरू नवाब समरू की विवाहिता थी । राजनीतिक महत्वाकांक्षा के कारण बेगम समरू नवाब समरू के विरुद्ध षड्यन्त्र करती है । नवाब आत्महत्या करता है । समरू की मृत्यु के बाद उसने लीवायस नामक फ्रांसीसी युवक से विवाह कर लिया । इस पर प्रजा ने विद्रोह किया । फलत: ली वायस ने आत्महत्या कर ली । उसकी मृत्यु के बाद विद्रोहियों ने बेगम समरू को गिरफ्तार किया । लंबी बीमारी के साथ उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई ।

जुआना बेगम समरू उपन्यास का सर्वप्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्त्री पात्र है । वह अलग अलग समयों में मुन्नी, दिलाराम, टामस प्रिया, लवसूल प्रिया आदि नाम से जानी गई है । ये नाम उसके चरित्र के विकास का परिचय देते हैं ।

नवाब समरू पुरुष कथापात्रों में एक है । अपने बुढापे में उसे जुआना बेगम जैसी सुन्दर महत्वाकांक्षा पत्नी मिलती है । बेगम समरू के व्यवहार में उद्विग्न होकर वह ज़िन्दगी से उदासीन होता है । ज़िन्दगी की लडाई में विवश होकर वह आत्महत्या कर लेता है ।

लवसुल उपन्यास का प्रमुख पुरुष पात्र है । वह चतुर ईमानदार और संयम की मर्यादा से बन्धा हुआ युवक है । वह अपने व्यक्तित्व से प्रभावित करता हुआ अन्तत: विनष्ट हो जाता है ।

इस उपन्यास का संवाद पात्रों की मन:स्थिति, उनके व्यावहारिक क्रियाकलाप तथा घटनाओं को उद्घाटित करता है । इसकी भाषा रंजक, कवित्वमय और प्रवाहपूर्ण है ।

यह आकार में एक लघु उपन्यास है । काल्पनिकता से भरपूर चरित्र प्रधान उपन्यास के रूप में इसका एक प्रमुख स्थान है । बेगम समरू की प्रशासकीय क्षमता और उसका प्रभावशाली व्यक्तित्व उपन्यास में दिखाया है ।

एकदा नैमिषारण्ये - सन् 1971

पौराणिक पृष्ठ भूमि पर रचित नागर जी का सांस्कृतिक उपन्यास है यह । वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टि से यह हिन्दी में अप्रतिम है । यह एक गंभीर राष्ट्रीय तीर्थाटन जैसा आलोच्य सांस्कृतिक उपन्यास है ।

मनोरंजक प्रसंगों से उपन्यास का आरंभ होता है । महर्षि नारद मध्य एशिया से घूमकर रेणुका क्षेत्र आते हैं । वहाँ तुलसी मण्डप के पोखरे में नग्न स्नान करती वृन्दाओं को देख लेते हैं । वे वृन्दाएं उन्हें मुख्य पुजारिन के वेश में सेवा में डाल देती हैं । नारद उन्हें श्रीकृष्ण को भजने का सन्देश देकर वहाँ से चले जाते हैं । भार्गव सोमाहुति व्यास का व्यक्तिगत जीवन इस उपन्यास का केन्द्र है ।

उसकी पत्नी काश्यपी कन्या इज्या अपने पति को "प्रचेता" का पिता बनाकर "बलि" हो जाती है । शौनक ऋषि की मृत्यु के बाद प्रचेता नैमिषारण्ये की व्यासगद्दी पर अधिष्ठित होते हैं । भारत-प्रज्ञा की कथा इसके साथ समानान्तर रूप से चलती है । भारत लुटेरों द्वारा प्रताड़ित होकर अपना विवेक खो बैठता है । किन्तु भार्गव सोमाहुति के प्रयत्नों द्वारा आत्मविश्वास प्राप्त करता है और सम्राट चन्द्रगुप्त के शासन में सहायक बनता है ।

इस कथा का मुख्य पात्र है भार्गव सोमाहुति व्यास । उसने राष्ट्रीय समन्वय के लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति की समन्वित पीठिका निर्मित की । और अधर्म से संघर्ष करने के लिए जन-जन को उद्बोधित किया । सर्वम् विश्वात्मकम् विष्णु: का अमोघ मंत्र जन जन में फूंकना आरंभ किया । उन्होंने नैमिषारण्य में महासत्र का आयोजन किया और सांस्कृतिक एकता की पताका फहरायी ।

नारद उपन्यास का और एक पुरुष पात्र है । नारद के प्रकाण्ड पाण्डित्य से सभी राजा-महाराजा प्रभावित हैं । अपने प्रवचन के माध्यम से जन-जन के हृदय में उन्होंने वैष्णव भक्ति का संचार किया ।

तीसरा प्रमुख पात्र है प्रकाण्ड तान्त्रिक योगविद्या में निपुण भारतचन्द्र । नागर जी ने उन्हें तत्कालीन विघटित भारत के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है । वे चन्द्रगुप्त की स्थान प्रतिष्ठा में सहयोग देते हैं ।

"एकदा नैमिषारण्ये" में नागरजी की भाषा विषय के अनुसार दार्शनिक, गंभीर, चिन्तन प्रधान, परिमार्जित और सुसंस्कृत है । पात्रों के अनुसार भाषा में परिवर्तन होता गया है ।

"एकदा नैमिषारण्ये" नागर जी के सांस्कृतिक मन्थन की अमूल्य निधि है । भावात्मक एकता के माध्यम से "वसुधैककुटुम्बकम्" की भावना को इसमें स्पष्ट किया गया है । भावात्मक एकता की पृष्ठभूमि में ब्राह्मण और श्रमण का समन्वय इसमें साधित हुआ है ।

मानस का हंस - सन् 1971

"मानस का हंस" ऐतिहासिक धरातल पर लिखा हुआ सांस्कृतिक उपन्यास है । युगकवि महात्मा तुलसीदास के अज्ञात जीवन और महासृजन की मनोविश्लेषणात्मक कथा है जिसमें तुलसीदास को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है । तुलसी के संपूर्ण जीवन चरित्र और समसामयिक वातावरण को यह ग्रन्थ उद्घाटित करता है । यह उपन्यास उनकी भक्ति ही का दूसरा रूप है । "उनकी भक्ति ही मानों वाणी का आवरण पहनकर कविता के रूप में व्यक्त हुई है ।"[1]

तुलसीदास का जन्म विक्रमपुर गांव में अभुक्त मूलनक्षत्र में सन् 1532 ई॰ को हुआ था । बालक के जन्म के बाद शीघ्र ही माता का देहान्त हुआ । पिता ने बालक को दासी के साथ दूर भिजवा दिया । वह दासी अपनी सास पार्वती को इस बालक को सौंप आयी । पांच-छः वर्ष बाद पार्वती अम्मा का भी देहान्त हुआ । भटकते भटकते उसकी भेंट बाबा नरहरिदास से हुई जो उसके गुरु तथा अभिभावक बने । उन्होंने बालक को तुलसी नाम दिया । और शेष सनातन की पाठशाला में छोड आये । वहां तुलसी की कवि प्रतिभा जागी । विद्या समाप्त करके अध्यापक बने । काशी में उनका परिचय मेघा भगत से हुआ और उनके साथ तीर्थ स्थानों के भ्रमणार्थ निकल पडे । तीर्थाटन में अनेक विघ्नों को उन्होंने पार किया ।

1. हिन्दी साहित्य विवेचन - योगेन्द्रनाथ शर्मा, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ, प्रथम संस्करण, कार्तिक पूर्णिमा-2028, पृ॰370

अपने जन्मस्थान विक्रमपुर पहुँचकर सफल ज्योतिषी के रूप में सब के आदरपात्र बने । यमुनापुर के एक गाँव के विद्वान ज्योतिषी पं॰दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली से विवाह किया । उनका एक पुत्र तारापति पैदाहुआ । अयोध्या की जनभाषा अवधी में उन्होंने रामचरितमानस की रचना की । अपने अन्तिम दिन काशी में बिताने वे काशी पहुँचे । श्रावणकृष्णा तीज की ब्रह्मवेला में इस असार संसार को वे छोड गये ।

महाकवि तुलसीदास के जीवन और रचना जगत को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है "मानस का हंस" । तुलसी राम-काम के बीच लड़कर पस्त होते हुए भी अपने ही हिन्दू समाज की कुरूपताओं से लड रहे थे । इस उपन्यास का एक नया शिल्प सौष्ठव है । कथावस्तु, भाव और उद्देश्य के रूप में यह उपन्यास पूर्णत: सफल हुआ है ।

अवध की पृष्ठभूमि में रचित होने के कारण इस उपन्यास में अवधी भाषा का रूप दिखाई पड़ता है । इसकी भाषा पात्रों और घटनाओं को जीवन्तता प्रदान करने में सक्षम है । ग्रामीण पात्रों के वार्तालाप में ठेठ अवधी का प्रयोग मिलता है । भाषा में काव्यात्मकता और चित्रात्मकता का कुशल संयोजन हुआ है ।

खंजन नायन - सन् 1981

महाकवि सूरदास के जीवन के आधार पर लिखा गया उपन्यास है "खंजन नयन" । यह सोलहवीं शताब्दी के उत्तर भारत की सामाजिक सांस्कृतिक धड़कनों को कथारूप देता है ।

नेत्रविहीन सूरदास का जन्म परासौली ग्राम में हुआ । वह संगीत व माधुर्य एवं कला में सबसे आगे निकला । नौ वर्ष की आयु में वह घर छोड देता है । नेत्र ज्योति के अभाव में स्पर्श एवं श्रवण के माध्यम से बाह्य दुनिया को जानना पहचानना सीखता है । माँ ने सूरदास का परिचय कृष्ण विग्रह से करा दिया था । आजीवन वह बालक उस हृदय स्थित कृष्ण से बातें करता है, बहस करता हैऔर प्यार करता है । उन्नीस वर्ष की आयु तक सूरदास ज्योतिष, संगीत काव्य शास्त्र, काव्यरचना सबमें निपुण हो जाते हैं । कन्तो नामक मल्लाहिन के प्रेम निमंत्रणों को सूरदास बार बार निर्ममता से ठुकरा देते हैं । लेकिन निराश्रिता कन्तो अपनी आस्था व श्रद्धा के साथ सूरदास के साथ रहती है । अयोध्या के रास्ते में पैदल जाती हुई अपने अन्धे साथी के अपमान कर्ता से जूझती हुई गला घोंटकर मार दी जाती है। सूरदास अयोध्या से काशी पहुंचते हैं । फिर वे व्रजभूमि लौटते हैं । तुलसीदास और मीराबाई सूरदास से मिलने आते हैं । धीरे धीरे राधाभाव को प्राप्त कर कृष्ण को भजते गाते 105 वें जन्मदिन सूरबाबा परासौली में ही आचार्य बिट्ठल के हाथों में प्राण त्याग देते हैं ।

नागर जी ने इस उपन्यास को लिखने के पहले कृष्ण काव्य, भक्तिशास्त्र और प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थों का गंभीर अध्ययन करके अपने को पूरी तरह तैयार किया है । श्याम और काम के बीच का गहरा द्वन्द्व कन्तो की उपस्थिति के कारण जीवन्त हुआ है । कन्तो प्रिया नागर जी की उर्वर कल्पना की सृष्टि है जो सूरदास के मन को समझने में पाठक की बहुत सहायता करती है । सूरदास के जीवन की घटनाएं बहुत कम हैं । दृष्टि विहीन अन्धे गायक के जीवन में घटना वैविध्य का अवसर भी नहीं, किन्तु नागर जी का सर्जक कथाकार थोडे से जीवन सूत्रों के सहारे उस महाकवि की पूरी रचना-प्रक्रिया का ही कथारूप दे देने में सफल हुआ है ।

सूरदास ही "खंजन नयन" का मुख्य पात्र है । श्याम और काम के बीच का गहरा द्वन्द्व कन्तो की उपस्थिति के कारण जीवन्त हुआ है । सूरदास का पन्द्रह दिनों तक बैल की तरह कोल्हू में जुतना, संसार के ताप को उस रूप में उनके सामने रखता है जैसा दूसरों के अनुभव में कम आया है । "अब की माधो मोहि उबारि" जैसे पदों में भवसागर के दुखों का जैसा वर्णन सूर करते हैं जो दुखानुभूति में वे संप्रेषित करते हैं उसके लिए ऐसे अनुभव ही आधार हो सकते थे ।

"खंजन नयन" कई दृष्टियों से अद्भुत उपन्यास है । पात्रों के स्वभाव के अनुसार ही भाषा और शैली का प्रयोग हुआ है । सूरदास की बातचीत में संस्कृत निष्ठ शब्दों का प्रयोग हुआ है जब कन्तो की बोली बोलचाल की होती है । सरस-सरल भाषा के प्रयोग ने उपन्यास को सजीव बनाया है ।

नागर जी ने अपने उपन्यासों में मानव-मूल्यों से संबन्ध रखनेवाले मूल्यों की अभिव्यक्ति की है । कारण स्वातंत्र्यपूर्व के भारत के परिवर्तित मूल्यों को उन्होंने अनुभव किया है । इसलिए उसकी जीवन्त झांकी प्रस्तुत की है । उपन्यासों में अतीत और वर्तमान दोनों को उन्होंने समेट लिया और अतीत को वर्तमान से और वर्तमान को भविष्य से संबद्ध किया है । व्यक्ति और समाज का संबन्ध "महाकाल", "बूंद और समुद्र" तथा "अमृत और विष" में उन्होंने व्यक्त किया है । देखे और जिये हुए अनुभव हैं नागरजी के । वे यथार्थ की चोट सहते सहते घोर निराशा और टूटन पलायनवादिता तक पहुँचने पर भी अन्धकार में रोशनी छोड़ते हैं तो आगे का रास्ता स्पष्ट दिखाई देने लगता है । नागर जी के उपन्यासों का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य यह है कि जिन्दगी अपनी संपूर्ण गहराई और विस्तार के साथ उनमें अंकित है । नागरजी की प्रत्येक नई कृति यह प्रमाणित करती है कि

उनका जीवनानुभव अभी चुका नहीं है । उनके एक भी उपन्यासका कथापात्र किसी उपन्यास के पात्र की नकल नहीं है । प्रत्येक कृति में नागरजी पूरे ताजेपन के साथ हमारे सामने आते हैं । उपन्यास रचना में प्रवृत्त होने के पूर्व वे अपेक्षित स्थलों पर जाकर संबद्ध व्यक्तियों से मिलते हैं और प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करते हैं । इस दृष्टि से नागर जी के सामयिक और ऐतिहासिक-सांस्कृतिक उपन्यास साहित्य की अमूल्य निधि तो है ही ।

निष्कर्ष

अमृत लाल नागर राजनैतिक चिन्तक, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, धार्मिक एवं अध्यात्मिक चिन्तक आदि के साथ साथ महान साहित्यकार भी रहे । उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में ये सारे तत्व प्रतिफलित हैं । उनके उपन्यासों में समाजवाद के साथ साथ गान्धी दर्शन एवं साम्यवाद का भी प्रयोग मिलता है । प्रसाद और शरत बाबू की भावप्रवणता, निराला की संघर्षशीलता, हेमिंग्वे की प्रबल जिजीविषा नागर जी में दिखाई पड़ती है । उनके उपन्यास हिन्दी साहित्य के लिए एक अमूल्य देन है ।

तीसरा अध्याय

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में कथानक एवं चरित्र - चित्रण

तीसरा अध्याय

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में कथानक एवं चरित्र चित्रण

उपन्यास में कथानक की महत्ता

उपन्यास का शाब्दिक अर्थ है "कथा का लघुरूप" या "कथा का सारांश"। कथानक का प्रयोग अंग्रेजी के प्लाट शब्द के समानार्थक रूप में होता है। "उपन्यास की मूलकथा को ही कथानक कहते हैं।[1]" उपन्यास शिल्प में कथानक का महत्वपूर्ण स्थान है। कथानक की आधार शिला पर उपन्यास का ढांचा निर्मित किया जाता है। "कथानक के अभाव में उपन्यास के अस्तित्व की कल्पना

---

1. हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युग बोध -
   श्रीमती वसन्ती पंत
   पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1973, पृ॰28

आधार रहित भवन की स्थिति के समान है[1]।" उपन्यास में कथानक का महत्व इससे स्पष्ट हो जाता है। कुछ उपन्यासकार अपने उपन्यासों को शिल्प ही शिल्प में बांधते हैं। ऐसे उपन्यासकारों ने कथानक के बन्धनों को सर्वथा अस्वीकार किया है। लेकिन डॉ॰ भागीरथ मिश्र ने कथानक की आवश्यकता के बारे में कहा है - "यद्यपि आधुनिक काल में कथानक का महत्व कम समझा जाता है। पर यह उपन्यास का मूल है। उपन्यास में व्याप्त कुतूहल का तत्व कथानक के सहारे ही विकास पाता है। उपन्यास का समग्र रूप कथानक के ढांचे पर ही विकसित होता है ..... यह कारण भ्रांत है कि उपन्यास में कथानक का कोई महत्व नहीं या सामान्य कथानक को ही वर्णन कौशल द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है[2]।" इस प्रकार कथानक उपन्यास का मूलतत्व रह जाता है बाकी सब उत्तम बनाने की विधियाँ हैं। यद्यपि कुछ उपन्यासकारों ने कथातत्व को महत्वपूर्ण नहीं कहा है तो भी अधिकतर उपन्यासकार कथातत्व की प्रमुखता पर बल देते हैं। डॉ॰ भागीरथ मिश्र ने आगे कहा है - "कथातत्व उपन्यासों का सर्वाधिक साधारण किन्तु अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व है जिसमें सामान्यतः आकर्षक घटनाओं का कुशल संगुफन होता है[3]।" फार्स्टर भी इसी से सहमत दिखाई देते हैं। उन्होंने कहा है - "सच पूछा जाय तो कथातत्व के अभाव में उपन्यास का अस्तित्व भी संभव नहीं है[4]।" कथानक की महत्ता का आधार इस पर निर्भर है कि उसमें उपयोगिता का अंश कितना और उसमें घटनाओं

---

1. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास - डॉ॰कैलाश प्रकाश
   हिन्दी साहित्य संसार 1962, पृ॰49
2. प्रेमचन्द और नानकसिंह के उपन्यास - डॉ॰तिलकराज बडेहरा,
   जीवन ज्योति प्रकाशन, दिल्ली,प्रथम संस्करण 1985,पृ॰49
3. 'The most simple form of prose fiction is the story which records a succession of events generally marvellous'.
   The structure 6f the Novel - Edwin Muir, p.17
4. Aspects of the Novel - E.M. Forster, p.33-34

का कुशल संगुफन कैसे किया गया है । इस दृष्टि से कथानक को दो भागों में बाँटा जा सकता है सुगठित कथानक और विश्रृंखलित कथानक ।

1. <u>सुगठित कथानक</u> -

इसमें घटनाएँ अत्यन्त सुगठित रूप में प्रस्तुत की जाती हैं प्रेमचन्द का "गोदान", यशपाल का "झूठा सच", अमृतलाल नागर का "महाकाल", सुहाग के नूपुर आदि का कथानक सुसंयोजित है ।

2. <u>विश्रृंखलित कथानक</u>

इसमें घटनाएँ बिखरी हुई होती हैं । उपन्यासकार उन्हें एक सूत्र में आबद्ध करने का प्रयास नहीं करता । जैनेन्द्रकुमार की "परख", अमृतलाल नागर का "बूँद और समुद्र" - इस ढंग के उपन्यास हैं ।

<u>कथानक की विशेषताएँ</u>

प्रत्येक उपन्यास के कथानक की कई विशेषताएँ होती हैं । इनमें प्रमुख हैं "कथानक की संबद्धता", "कथानक की मौलिकता", "कथानक की रोचकता" तथा "कथानक की नाटकीयता" ।

1· कथानक की संबद्धता

यह कथानक की पहली विशेषता है । मानव जीवन एक अनिश्चित गति से प्रवहमान है । इसलिए कथानक में भी एक नियोजन की आवश्यकता है । घटनाओं को व्यवस्था देने का महत्वपूर्ण कार्य उपन्यासकार का है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस बात में कहा है - "कोई उपन्यास सफल है या नहीं, इस बात की प्रथम कसौटी यह है कि कहानी कहनेवाले ने कहानी ठीक ठीक सुनाई है या नहीं, अनावश्यक बातों को तूल तो नहीं दिया है । ..... सौ बात की एक बात यह कि वह शुरू से अन्त तक सुननेवाले की उत्सुकता जागृत रखने में नाकामयाब तो नहीं रहा ।[1]" नागरजी के प्राय: सभी उपन्यासों में कथानक की यह संबद्धता देखी जा सकती है । "महाकाल", "सुहाग के नूपुर", "मानस का हंस", "खंजन नयन", "अग्निगर्भा" इन उपन्यासों में इस तत्व का निर्वाह पूर्ण रूप से हुआ है। दुर्भिक्ष की रूक्षता, पांचू का नैतिक बोध, परिवार की भद्रता के लिए उनकी प्रवृत्तियां, जमीन्दारों और पूंजीपतियों का शोषण मनोभाव, साधारण जनता का रोदन आदि आदि बारी बारी से उन्होंने दर्शाये हैं । ये सब एक दूसरे से संबद्ध हैं और सब मिलाकर कथानक को गति प्रदान करते हैं । "सुहाग के नूपुर" में विदेश से कोवलन का आगमन, उसकेलिए आयोजित स्वागत सम्मेलन, कोवलन के वैवाहिक जीवन में वेश्या माधवी का प्रवेश, पतिव्रता कन्नगी के प्रति कोवलन की विरक्ति, कुलवधू बनने की माधवी का उतावलापन, राज्य की ओर से माधवी को दिया हुआ दंड - इस प्रकार क्रम क्रम से घटनाओं के वर्णन इसमें पाये जाते हैं । ये घटनाएं एक दूसरे से संबद्ध हैं और सब मिलाकर कथा बनती है । वैसे ही तुलसीदास के जीवन का बाल्यकाल, बाबा

1· साहित्य का साथी - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ·82

नरहरिदास से उनका मिलन, शिक्षा-दीक्षा, रामभक्त बन जाना, विवाह, ज्योतिष और गानकला में वैदग्ध्य पाना, संपूर्ण देश का आराध्य बन जाना, मृत्यु का वरण करना - इन कार्यों का क्रमबद्ध वर्णन "मानस का हंस" में मिलता है । "खंजन नयन" में भी कथा का क्रमबद्ध संचालन देखा जा सकता है । सूरदास का जन्म, पितृभवन को छोडना, कृष्ण भक्त बन जाना, कन्तो प्रिया से उनका संबन्ध, ज्योतिष और संगीतकला के परम पण्डित बनना, देशवासियों के संगठन से कन्तो की मृत्यु, व्रजभूमि में लौट जाना, मार्ग में श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तनिये पद पर नियुक्त होना, अपने जन्म देश परासोली में ही आचार्य बिट्ठल के हाथों प्राणत्याग देना - इतना कार्य बारी बारी से वर्णित है ।

कथानक की मौलिकता

प्रत्येक उपन्यासकार का व्यक्तित्व उसके उपन्यास में प्रतिफलित होता है । प्राय: ऐतिहासिक या पौराणिक कथानकों को आधार बनाकर जो उपन्यास लिखे जाते हैं उनमें कथाकार की मौलिकता का प्रश्न ज्यादा महत्वपूर्ण रहता है । यों तो मौलिकता का अर्थ यह भी है कि उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में जो कुछ कहा है वह अपने जीवनानुभवों से है या नहीं । अनुभवों की यथार्थता और व्यक्तित्व का प्रतिफलन उपन्यास की मौलिकता का कारण हो सकता है । "अमृत और विष" के अरविन्द शंकर के माध्यम से नागर जी के व्यक्तित्व का प्रतिफलन और ईश्वर विश्वास पर आधारित अनुभवों की यथार्थता व्यक्त हुई है । "सत्य:श्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धि:" इस आधार पर टिके हुए आत्मविश्वास का नाम ही ईश्वर है । और वह ईश्वर मेरे साथ है । अन्यत्र उन्होने कहा है - "मैं फेशनेबुल हेकडी के साथ भाग्यवाद के सिद्धांत को नकार तो अब हरगिज़ न सकूँगा । ऐसा लगता है

जीवन के पीछे कोई महाविधान है और यह भी मानता हूँ कि मनुष्य अपना भाग्य बना सकता है ...... और यह भी उस महानियम के अन्तर्गत ही ।" इन पंक्तियों में असल में नागर जी का जीवन दर्शन ही प्रस्फुरित हुआ है । ऐतिहासिक और पौराणिक उपन्यासों के कथानकों में प्राचीन कथानकों के अंशों के साथ साथ कथाकार की अपनी कल्पना का भी योग रहता है । अक्सर कल्पना की व्यक्ति लेखक के अनुभूत तथ्यों के आकर्षक नियोजन पर ही आधारित रहते हैं । नागर जी के उपन्यासों में यह प्रवृत्ति खूब देखी जाती है ।

कथानक की रोचकता

उपन्यास में जीवन के छोटे या बडे अंशों का सजीव चित्रण रहता है जो मानव की चेतना को व्यंजित करता है । कथानक में रोचकता रहनी चाहिए । कुशल उपन्यासकार विश्रृंखलित कथानक को भी उस कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करते हैं कि जिसमें रोचकता बराबर बनी रहे । यदि उपन्यास में कहानी नहीं है और कहानी में रोचकता नहीं है तो लेखक के बडे से बडे आयोजन से भी उपन्यास प्रभावहीन हो जाता है । जैनेन्द्रकुमार के "सुनीता", "त्यागपत्र", "विवर्त" आदि उपन्यासों में विश्रृंखलित कथानक है । उनमें कहानी के नाम पर कुछ नहीं, कुछ कथापात्रों को प्रकाशित करने के लिए ही उनकी रचना हुई है। लेकिन उनमें रोचकता इतनी है कि पाठकों को विरसता का अनुभव नहीं होता । तब बात तो यह है कि यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि आखिर रोचकता है क्या । इसका स्तर क्या है ? एक ही कथानक कुछ लोगों को रोचक प्रतीत होता है और कुछ को नीरस । उदाहरण केलिए "शेखर एक जीवनी" का कथानक एक खास वर्ग के लोगों के लिए रोचक मालूम होता है, वे पूर्ण तन्मयता के साथ उसमें खोये रहते हैं । लेकिन कलाविहीन उपन्यास पढ़नेवाले अधिकांश पाठक उसमें आनन्द अनुभव नहीं कर सकते । इसलिए औपन्यासिक रोचकता का स्तर इन दोनों वर्गों के बीच होना चाहिए और उसके लायक ही कथानक का

संगठन भी होना चाहिए । अत: उपन्यासकार यह ध्यान में रखें कि कथानक में अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक घटनाओं का ही संगुफन करें । इससे जाना जा चुका है कि उपन्यासों का मूलभूत आधार कथानक होता है । उपन्यास ऐसी घटनाओं को नियोजित करते हैं जिन्होंने अपनी आँखों देखा है और स्वयं अनुभव किया है । पढ़ने पर पाठकों को ऐसा अनुभव हो कि वह स्वयं एक यथार्थ घटना का अनुभव कर रहा हो । कथानक में स्वाभाविकता, सत्यता और यथार्थता अनिवार्य आवश्यकताएं होती हैं । घटनाओं का संयोजन कथाकार इस कौशल से करता है कि घटनाएं एक सूत्र में बन्धी हुई दीख पड़ती है और उसमें अनुभूति की तीव्रता बनी रहती है । आज के उपन्यासों में वर्ग-वैषम्य, शोषण, मुनाफाखोरी, आर्थिक असमानताएं, रूढियां तथा जर्जरित परंपराएं आदि जीवन्त समस्याएं चित्रित करने की अनिवार्यता आ गई है । इसलिए आज के उपन्यासों में प्रगतिशील तत्व की प्रमुखता है । औपन्यासिक संवेदना की दृष्टि से कथानक की महत्वपूर्ण विशेषता होती है । नागर जी के "अमृत और विष" में अरविन्दशंकर और "महाकाल" में महिपाल स्वयं साहित्यकार बनकर भी अनुभव करनेवाली आर्थिक विषमता पर विचार करते हैं । नागर जी के प्राय: सभी उपन्यासों के कथानकों में यह रोचकता बनी रहती है चाहे वह सुसंबद्ध हो चाहे विश्रृंखलित हो । "बूंद और समुद्र" का कथानक विश्रृंखलित है तो भी वह खूब कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया है । ताई की कहानी के बाद सज्जन की, वनकन्या की, बाद महिपाल, कल्याणी और शीला स्विंग की सबके मेल में पाठक को अरोचकता अनुभव नहीं होती । "सुहाग के नूपुर" का कथानक सुसंगठित है । पाठक को उसे पढने की खूब चाव बनी रहती है । अन्त तक पढे बिना कोई वह किताब नीचे नहीं रखता । समाज में घटित होनेवाली यथार्थ घटनाओं से ही नागर जी ने अपने उपन्यासों को भरा है । जमीन्दार दयाल

और मोनाई का स्वार्थ मनोभाव आज के सभी व्यापारियों और जमीन्दारों का ही है । "शतरंज के मोहरे" के नवाबों के जैसे विलासप्रिय अधिकारी लोग भी समाज में कम नहीं । "अमृत और विष" और "बिखरे तिनके" में दीख पड़नेवाले पीढ़ियों के बीच का भेदभाव आज भी दिखाई पड़ता है । "बूंद और समुद्र" के महिपाल और कल्याणी का बेमेल विवाह, "अमृत और विष" में रमेश और रानीबाला का, "बिखरे तिनके" में सुहाग-सरस्वतिया का अन्तर्जातीय विवाह आज के समाज के नित्य परिचित संभव हैं । इस प्रकार नागर जी के उपन्यासों में जहाँ भी देखे कथानक की रोचकता ही हम अनुभव कर पाते हैं । तो हम कलाकार के रूप में नागर जी के व्यक्तित्व और आर्थिक विषमता से परिचित होते हैं ।

कथानक की नाटकीयता

"कथानक की नाटकीयता कथानक की और एक विशेषता है।"[1] नाटकीयता से तात्पर्य कथावस्तु के समुचित विकास, उत्कर्ष, चरमस्थिति तथा समापन आदि के सम्यक् नाटकीय विधान से है । इस विधान के अनुसार "कथाकार अपने तथ्य को वार्ता प्रमुख बनाकर घटना और पात्र में उत्तरोत्तर संघात उत्पन्न करता हुआ अधिक से अधिक मात्रा में प्रभावोन्मुखी बनाता जाता है[2] ।" अनुभूति की पूर्ण अभिव्यक्ति इसमें होनी चाहिए । मानव जीवन की समस्याओं की व्याख्या कथानक में होनी चाहिए और जीवन की विविध अवस्थाओं का चित्रण तथा

---

1. The Craft of Fiction - Percy Lubbock, p.120

2. हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य - डॉ• प्रेम भटनागर अर्चना प्रकाश, जयपुर प्रथम संस्करण 1968, पृ•332

जीवन पक्षों के महत्व का मूल्यांकन होना चाहिए । अपने गहरे अनुभवों और दूसरों की तुलना में अपने विशद ज्ञान के आश्रय से उपन्यासकार एक दृश्य के पश्चात् दूसरे दृश्य के अनुसार घटनाएँ उपस्थित करता है । कथानक का चरमोत्कर्ष जब जब निकट आ जाता है तो घटनाएँ एक स्थान पर एकत्रित सी होने लगती हैं । कुछ उपन्यासकार यह नाटक रचने में असमर्थ होते हैं । एक सर्वांग चित्र उपस्थित करके रह जाते हैं । ज्यादातर उपन्यासकार इन दोनों प्रक्रियाओं को महत्व देते हैं । कथानक की नाटकीयता वहीं तक विशेषता रखती है जहाँ तक उसमें स्वाभाविकता बनी रहती है ।

नागर जी के सारे उपन्यासों में यह नाटकीयता देखी जा सकती है । "महाकाल" में बंगाल की दुर्भिक्षता का उग्र भाव, अन्न के अभाव के कारण साधारण जनता का, शिक्षक पाँचू की दयनीय स्थिति, दयाल और मोनाई का शोषक मनोभाव,, सुहाग के नूपुर में कोवलन का आगमन, उसका विवाह, वेश्या माधवी पर उसका अनुराग, स्वपत्नी कन्नगी से उसकी घृणा, माधवी द्वारा कोवलन का तिरस्कार, कोवलन - कन्नगी की पुन: प्रतिष्ठा आदि आदि कार्य एक दृश्य के बाद एक होकर उपस्थित किया गया है । इस प्रकार एक नाटकीय दृश्य नागरजी के उपन्यासों में दर्शित हैं ।

नागर जी के उपन्यासों में कथानक

उपन्यास में कथावस्तु का नियोजन और उसकी सामान्य तथा अनिवार्य विशेषताओं के उल्लेख के बाद हम नागर जी के उपन्यासों पर विचार करते हैं तो आसानी से मालूम किया जा सकता है कि नागर जी ने अपने उपन्यासों में कथातत्व को समुचित महत्व दिया है ।

यह कथातत्व नागर जी को प्रेमचन्द परंपरा के उत्तराधिकार के रूप में मिला है । नागर जी के लिए भी कथातत्व प्राथमिक शर्त है । "महाकाल", "बूंद और समुद्र", "एकदा नैमिषारण्ये", "सुहाग के नूपुर", नाच्यौ बहुत गोपाल" आदि आदि उपन्यासों के कथानक सशक्त रहे हैं । उनके अधिकांश कथानकों में प्राय: कथानक के लिए आवश्यक सभी विशेषताएं हैं । आगे हम नागर जी के उपन्यासों के कथानक का इस दृष्टि से विश्लेषण करेंगे ।

घटनाओं का क्रमबद्ध संचालन

अच्छे कथानक में घटनाओं का क्रमबद्ध संचालन होता है । नागर जी के "सुहाग के नूपुर" उपन्यास में घटनाएं एक क्रम से घटित हुई हैं । उपन्यास का आरंभ "कोवलन" के विदेशवास" से हुआ है। यात्रा पूरी करके वह वापस आता है तो उसके पिता उसके लिए उचित विवाह का निश्चय करते हैं । विवाह के बाद भी कोवलन वेश्या माधवी से अपना संबन्ध बनाये रखता है । माधवी और कोवलन की पत्नी कन्नगी के बीच में अन्तर्द्वंद्व बना रहता है । अन्त में कोवलन को माधवी धोखा देती है तो कन्नगी उसे आश्रय देती है । फिर वह नया दांपत्य जीवन आरंभ करता है । इस प्रकार एक के बाद एक करके क्रम से घटनाओं का संचालन हुआ है । यह क्रमबद्ध संगुफन ही इस उपन्यास की सफलता है । इसी प्रकार महाकाल, मानस का हंस, नाच्यौ बहुत गोपाल, अग्निगर्भा और करवट इस दृष्टि से सफल कहे जा सकते हैं । "महाकाल" का आरंभ सद् नायक पांचू गोपाल से हुआ है । मोनाई केवट, दयाल जमीन्दार, अकाल पीड़ित साधारण जनता इन सबसे होकर कथानक एक सूत्र में बन्धकर अन्त तक पहुंच गया है । वैसे ही "मानस का हंस" में तुलसीदास का बाल्यकाल, कष्टतापूर्ण जीवन, राम के प्रेम में

आ जाना, अच्छा गायक और कथावाचक बन जाना इतने क्रम से रखा गया है कि पाठक को आगेआगे पढने का आग्रह बना रहता है । "नाच्यौ बहुत गोपाल" का कथानक भी सुसंगठित है । निर्गुनिया का जीवन चरित्र अनेकों घटनाओं में गुम्फित करके पाठकों के लिए आकर्षक बनाया है । निर्गुनिया का विवाह, भंगी मोहन के साथ भाग जाना, मोहन के अभाव में अकेला जीवन आदि आदि में घटनाओं का सम्यक् नियोजन हुआ है । इसी प्रकार "अग्निगर्भा" में सीता का बचपन, शिक्षा, विवाह, पारिवारिक जीवन, प्रगतिवादी प्रवर्तन, मृत्यु सब बारी बारी से वर्णित है । "करवट" में भी कथाक्रम की सफलता का ~~क्र~~ निर्वाह हुआ है । वंसीधर की नौ वर्ष की आयु से लेकर उसकी मृत्यु तक का पूरा हाल वहाँ दिया गया है । उसका परिवार, गली-मुहल्लों के लोग, बिरादरी, उसके मित्र-साथी, उसके माता-पिता, पत्नी, पुत्र-पुत्री, पुत्र का परिवार, बादशाह वाजिद अलीशाह की बेगमात व उनकी कथाएं उपन्यास में इतना कुछ है कि यह पाठक केलिए पृष्ठ-पर-पृष्ठ रोचक बना रहता है ।

कथानक की मौलिकता

कथानक के लिए मौलिकता अत्यन्त आवश्यक है । अनुभव का याथार्थ्य ही कथानक में मौलिकता की सृष्टि करता है । अपने चारों तरफ घटित होनेवाली घटनाओं एवं नित्य प्रति जीवन से कहानीकार अपनी सामग्री का संकलन करता है । नागरजी के सारे उपन्यासों की कथा अपने भोगे हुए अनुभव से उद्भूत है । महाकाल में वर्णित अकाल का चित्र बंगाल के भीषण और हिला देनेवाले अकाल का चित्रण है । इसलिए यथातथा वर्णन करने में वे सफल हुए हैं । एक संवेदनशील रचनाकार के रूप में नागरजी ने इसे प्रस्तुत किया है न कि

इतिहासकार के रूप में । व्यक्ति के स्वार्थ को अपनी तीखी वाणी से वे अभिव्यक्त कर सके हैं । जन साधारण का दुख दर्द, जमीन्दारों के विलास का व्यंग्यात्मक शिल्प खूब मौलिकता के साथ किया गया है । नागर जी ने प्रतिभाशाली और प्रबुद्ध सर्जक के रूप में भारत के समाज, इतिहास और संस्कृति की तस्वीरें खींची हैं । अनुभव की प्रौढता के कारण जीवन के बारीक से बारीक क्षेत्रों को पकडने की गहरी दृष्टि उन्हें मिली है । प्रेमचन्दजी द्वारा प्राप्त लेखकीय प्रोत्साहन से बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध को - अपने झेले हुए जीवन को - अपने उपन्यासों में दर्शित किया । महाकाल के वर्णित अकाल के बारे में नागर जी ने "भूख" की भूमिका में कहा है - "महाकाल" उपन्यास इतिहास प्रसिद्ध घटना पर आधारित है । उसका दारुण और भयंकर रूप संवेदनशील कथाकारको मथ गया है - सन् 1943 के बंग दुर्भिक्ष में मनुष्य की चरम दयनीयता और परम दानवता के दृश्य मैं ने कलकत्ते में अपनी आंखों से देखे थे ।"[1] पांचू की सारी क्रिया-प्रतिक्रियाएं और चिन्तन धारा नागर जी के अपने विचारों की वाहिका है । व्यक्ति का स्वार्थ और सामाजिक हित के अन्तर्गत तीव्र द्वन्द्व का जो यथार्थ चित्रण इसमें वर्णित है वह लेखक के मानसिक आक्रोश और वैज्ञानिक द्वन्द्व के स्वर हैं । "नाच्यौ बहुत गोपाल" अब तक के उपन्यासों की लीक से बढकर सर्वथा मौलिक नवीनतम कृति है ।

नवीन प्रयोग

नागर जी ने अपने उपन्यासों में आदि से अन्त तक कहानी कहने की रीति से बदलकर एक नवीन प्रयोग अपनाया है । "मानस का हंस" के प्रारंभ में फ्लेश बेक शैली का प्रयोग ही किया गया है। तुलसी के जीवन काल के अन्तिम समय से इसका आरंभ होता है ।

---

1. "भूख" भूमिका - अमृतलाल नागर, पृ. ख

इसके बाद विगत काल का स्मरण कराते हुए तुलसी के जन्म तथा बाल्यकाल की स्थितियों को बताता है । "अमृत और विष" में दोहरे कथानक की सृष्टि हुई है । यह उपन्यास शिल्प की दृष्टि से नागर जी का एक अभिनव प्रयोग है । पुरानी और नयी पीढी का संघर्ष दिखाते हुए रचनाकार ने उसे अमृत और विष से युक्त देखा है । उपन्यास के भीतर नागर जी की उपन्यास रचना की एक नूतन परिकल्पना है । अरविन्दशंकर को अपना प्रतिनिधि बनाकर स्वयं की ही नहीं बल्कि प्रत्येक रचनाकार के जीवन की समस्याओं का सजीव चित्रण किया गया है । उपन्यासकार अरविन्दशंकर की आत्मस्वीकृति से मालूम होता है कि उनका देश प्रेम, ईमानदारी, मानवता आदि से उन्हें किसी प्रकार का सुख नहीं मिल गया । उपन्यास का दूसरा कथासूत्र पुत्तीगुरु की लड़की मुन्नी के विवाह की तैयारियों के साथ प्रारंभ होता है । इस उपन्यास में एक कथा न होकर अनेक कथाएं हैं । ये सब कथाएं नागरजी के खट्टे मीठे अनुभवों की कथाएं हैं ।

"नाच्यौ बहुत गोपाल" नागर जी का सर्वथा मौलिक और नवीन शैली शिल्प में रचित सामाजिक उपन्यास है । उपेक्षित और अपमानित मेहतर वर्ग को नागर जी ने निकट से देखा और उसे पूरी यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया है । उपन्यास शर्माजी तथा केन्द्रीय पात्र श्रीमती निर्गुनिया की भेंटवार्ता से प्रारंभ होता है । नागर जी की सबसे बडी विशेषता यह है कि जीवन को उन्होंने संपूर्ण गहराई के साथ देखा है । उनकी प्रत्येक नयी कृति यह प्रमाणित करती है कि उनका जीवनानुभव अभी चुका नहीं है । उनके उपन्यास को पढ़कर कोई यह नहीं कहे कि वह अमुक उपन्यास की नकल है । प्रत्येक कृति में नागरजी पूरी नवीनता के साथ सामने आते हैं । इसका तो कारण यह है कि सामग्री संकलन करते समय वे पात्रों से संबन्धित स्थलों पर जाकर संबद्ध व्यक्तियों से मिलते हैं और आवश्यक जानकारी प्राप्त करते हैं ।

यथार्थवादी कथानक

प्रेमचन्द की परंपरा में आनेवाले उपन्यासकारों ने उनकी उपन्यास संबन्धी मान्यताओं को विरासत के रूप में ग्रहण कर अपने कथाशिल्प को समृद्ध बनाया है । उनके पास जीवन के यथार्थ और अनुभव जन्य कथासामग्री है जिसे नवागत पीढी के लिए अपने उपन्यासों में प्रस्तुत करना वे चाहते हैं ।

नागर जी की प्रथम कृति "महाकाल" मध्यवर्गीय समाज की यथार्थ मूलक करुण गाथा है । कथानक को यथार्थ सिद्ध करते हुए नागरजी की आत्मस्वीकृति है - "बंगाल के महाकाल को मैं ने अपनी आँखों से देखा है । उन दिनों सियालदह रेलवेस्टेशन भुक्खरों से भरा पडा था । जब कभी उन भुक्खरों का स्मरण करता हूँ तो आत्मा कराह उठती है । दृश्य इतना बीभत्स था कि घर आने पर भोजन करने की इच्छा नहीं होती थी । मुझे अन्न से घृणा हो गई थी । परन्तु समय के साथ दृश्य की प्रभावात्मकता क्षीण होने लगी और अवसर पाकर महाकाल के रूप में फूट पडी ।[1]" कहीं भी नागर जी ने इस यथार्थ को गप्पों के माध्यम से प्रस्तुत किया है । "सेठ बांकेमल" छोटे छोटे रोचक हास्य व्यंग्य मिश्रित प्रसंगों के वर्णन से औपन्यासिक शिल्प का रूप प्रदान करती है । महाकाल जब अकाल की करुण कथा कहता है वहीं सेठ बांकेमल हास्य-व्यंग्य के द्वारा आनन्द की सृष्टि करता है । यथार्थ की बैकग्राउण्ड पर इसका निर्माण हुआ है । डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखा है - "गप्प लिखना भी एक आर्ट है और कल्पना की तगडी कसरत पर निर्भर करता है । लेकिन ये गप्पें सर्वथा कल्पना पर निर्भर नहीं, यथार्थ की इनमें ऐसी तगडी बैकग्राउण्ड है कि गप्पे मारनेवालों का आप कभी शक

---

1. आज - रविवार विशेषांक - 19 अगस्त 1979

नहीं कर सकते । सभी पात्र अपनी विशेषताएं लिए सचित्र और विचित्र पाठक के सामने उपस्थित होते हैं।[1]"

"बूंद और समुद्र" में स्वातंत्र्योत्तर भारत समाज व्यवस्था के टूटते संबन्धों का यथार्थ चित्रण है । मध्यवर्गीय समाज का यथातथ्य वर्णन हुआ है जिसमें स्वयं लेखक भी जुडा हुआ है । डॉ• धर्मवीर भारती ने कहा है - "आज तक हिन्दी के किसी कथाकार ने उच्च से उच्च और निम्नवर्ग के जीवन से इतनी निकटता और घनिष्टता स्थापित करने और उसका चित्रण करने में इतनी सफलता नहीं पायी है[2]।" महिपाल की शादी माता-पिता द्वारा तय की गई थी । कल्याणी अन्त तक अपने पति महिपाल को प्यार करती है । शकुन्तला का विवाह अपनी लडकी के जैसे कराने का आग्रह करती है । डॉ•शीला स्विंग महिपाल के प्रति प्रेम रखती है जिसकी स्वीकृति समाज में नहीं होती । जब महिपाल दो दिन तक अपने घर से अलग रहता है तो कर्नल ही उसे कौटुंबिक जीवन की महत्ता समझाकर उसे कल्याणी से मिलाता है । उसी प्रकार सज्जन वनकन्या से अलग होकर चित्रा राजदान को प्यार करने लगता है तो कर्नल उसे यथार्थता का बोध कराके उसका विवाह वनकन्या से करा देता है ।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में रचित "सुहाग के नूपुर" का कोवलन आज के समाज के नब्बे फसिदी पुरुष वर्ग का प्रतिनिधि है । पतिव्रता कन्नगी भारतीय स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है । पुरुष के परम अधिकार एवं स्त्री पीडन से समाज के यथार्थ को ही नागर जी ने इस उपन्यास में दर्शाया है ।

1• नवाबी मसनद - डॉ• रामविलास शर्मा, भूमिका, पृ•2

2• सीमान्त प्रहरी - अमृत लाल नागर, अंक 15 अगस्त 1966, पृ•51

विषय की दृष्टि से नागर जी के उपन्यासों के कथानकों को दो रूपों में बाँटा जा सकता है ।

1. सामाजिक
2. ऐतिहासिक-पौराणिक एवं सांस्कृतिक

सामाजिक कथानक

महाकाल, सेठ बांकेमल, बूंद और समुद्र, अमृत और विष, नाच्यौ बहुत गोपाल, सुहाग के नूपुर, बिखरे तिनके, करवट, अग्निगर्भा ये नागरजी के सामाजिक उपन्यास हैं । वर्तमान यथार्थ युग जीवन को उन्होंने अपने इन उपन्यासों में चित्रित किया है । अपने प्रथम उपन्यास "महाकाल" में बंगाल के प्रसिद्ध अकाल को केन्द्र में रखकर तत्कालीन जीवन का जीता जागता वर्णन किया है । "सेठ बांकेमल" में समाप्त होती हुई सामन्तवादी संस्कृति के एक वर्ग विशेष को उन्होंने अपने कथानक का विषय बनाया है। बूंद और समुद्र नामक अपने प्रसिद्ध उपन्यास में उन्होंने लखनऊ के चौक मुहल्ले को केन्द्र में रखकर उसके माध्यम से भारतीय नागरिक जीवन तथा समाज के मध्यवर्ग के समस्त आकार को प्रस्तुत किया है । उनका और एक उपन्यास है "अमृत और विष" । इसमें आज की व्यवस्था में एक स्वतंत्र लेखक की स्थिति का सजीव चित्र खींचा गया है । "नाच्यौ बहुत गोपाल" नवीन शैली शिल्प में रचित नागरजी का सामाजिक उपन्यास है । नारी जीवन की विवशता और मेहतर समाज के माध्यम से निम्न-वर्गीय समाज की विरूपता का आलेख है । दहेज की प्रथा के कारण नारी पीडन की सामाजिक समस्या "अग्निगर्भा" में प्रकाशित की है । पुरुषों के अधिकारों की छाया में नारी जीवन का संघर्ष "सुहाग के नूपुर" में नागर जी ने दर्शाया है । समाज की उन्नति के लिए युवाशक्ति का उपयोग जितना अधिक किया जा सकता है, यह "बिखरे तिनके" के बिल्लू के चरित्र से मालूम होता है । "करवट" में कलकत्ता

तथा लखनऊ के लोगों का रहन-सहन, रीति-रिवाज़, पारिवारिक संरचनाएं, पारिवारिक द्वेष-कलह आदि का जीवन्त चित्र गूंथकर नागर जी ने इसका सामाजिक क्षेत्र सजीव बनाया है ।

ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सांस्कृतिक कथानक

शतरंज के मोहरे, सात घूंघटवाला मुखड़ा, मानस का हंस, खंजन नयन, एकदा नैमिषारण्ये - इन उपन्यासों के कथानक इस कोटि के हैं ।

"शतरंज के मोहरे" में अवध के ह्रासशील, नवाबी शासन का जीवन्त चित्रण किया गया है । गजीउद्दीन हैदर और नसीरुद्दीन हैदर के शासनकाल में अवध का शासन शिथिल हो गया । उन दोनों नवाबों के जीवनकाल की सभी तरह की विसंगतियों और कुचक्रों के कारण उत्पन्न दुर्बलताओं का विस्तृत लेखा-जोखा "शतरंज के मोहरे" में मिलता है । अन्त:पुर में दिन-रात चलनेवाले कुचक्र, मलिक ए जमानिया दुलारी का संघर्ष, नवाबों की बढ़ती हुई विलासिता, शासन के प्रति उनकी दृष्टि हीनता और अंग्रेज़ रेसिडेन्टों की साजिशें सर्वथा इतिहास सम्मत है । अहंकारिणी बेगम, अपने पति गाजी उद्दीन हैदर पर अपना अंकुश जमाकर शासन सूत्र हथियाना चाहती है । किन्तु आगामीर जैसे कुशल प्रबन्धक के कारण उसकी योजना का निष्फल हो जाना पाठकों में रोचकता उत्पन्न करता है । इस प्रकार के रोचक प्रसंगों के कारण उपन्यास का रस सूख नहीं गया है । पिता की मृत्यु के बाद नसीरुद्दीन नवाब बन गया और धात्री दुलारी महारानी । नसीरुद्दीन के शासनकाल में बादशाह बेगम अपने पुराने शत्रु आगामीर को अपदस्थ करवा देती है । फलत: अवध की स्थिति दिन-ब-दिन

बिगड़ने लगती है । इस प्रकार नवाबी शासन की ह्रासशील कहानी को नागरजी ने शतरंज के मोहरे में बड़ी रोचकता के साथ इतिहास के तथ्य को नियोजित करते हुए प्रस्तुत किया है ।

"सात घूंघटवाला मुखड़ा" नागरजी का ऐतिहासिक चरित्र प्रधान लघु उपन्यास है । इसमें बेगम समरू के ऐतिहासिक किन्तु किंवदन्तियों के कुहासे से आच्छन्न चरित्र को पुनरुज्जीवित करने का सफल प्रयास किया गया है । बेगम समरू हिन्दुस्तान की मल्लिका बनने के लिए नवाब समरू के विरुद्ध षड्यन्त्र करती है । किन्तु नवाब समरू आत्महत्या कर लेता है तो पश्चात्ताप की अग्नि में वह सुलग जाती है । अठारहवीं शती के अंग्रेज़ों और मुगलों का संघर्ष ही इस उपन्यास का प्रतिपाद्य है । अंग्रेज़ों को पराजित करके शासकीय स्थान पर अवरोधित नवाब समरू का जीवन पत्नी बेगम समरू के कारण शिथिल हो जाता है । इस प्रकार नवाबी शासन की ऐतिहासिक शासन रीति को काव्यात्मक रोचकता के साथ इस उपन्यास में उद्घाटित किया है ।

"मानस का हंस" नागर जी की एक कलात्मक कृति है जिसका आधार इतिहास है । गोस्वामी तुलसीदास के विवादग्रस्त जीवनवृत्त को नागरजी ने अपनी मौलिक प्रतिभा से परम विश्वसनीय बना लिया है । राष्ट्र की भावात्मक एकता का सद्उद्देश्य भी इस ग्रंथ के निर्माण के पीछे है । गोस्वामी जी के लोक जीवन से विरक्ति, रामनाम में प्रगाढ समर्पण आदि को प्रदीप्त करनेवाले रोचक कथानक के ज़रिए भारत की सांस्कृतिक परिस्थिति को उद्दीप्त कर दिया गया है । तुलसीदास के जन्म से लेकर मृत्यु तक की घटनाओं को एक के बाद एक के क्रम से वर्णन कर नागर जी ने भी दुनियां रूपी सरोवर में रहकर ईश्वर को पाने का आग्रह प्रकट किया है । लहर रूपी कठिनाइयां मार्ग में बाधा बनकर उपस्थित होती है तो भी तुलसीदास उन सबको

रामनाम जपकर पार करता है । "मानस का हंस" की यह सांस्कृतिक चेतना मध्ययुगीन समाज को मूर्तित करती है और वर्तमान सन्दर्भ में भी सर्वथा समीचीन और प्रासंगिक है ।

"खंजन नयन" की रचना भी मध्यकालीन हिन्दी भक्तकवि सूरदास की कथा को लेकर की गई है । सूरदास के जीवन वृत्त को सजीव व वास्तविक बनाने के लिए पात्रों की एक बडी भीड उपस्थित की गई है । एक पूरा मध्यकालीन समाज यहाँ प्रस्तुत है । तत्कालीन जनजीवन का जीता जागता चित्र इसमें उपलब्ध है ।

"एकदा नैमिषारण्ये" पौराणिक पृष्ठभूमि पर रचित नागर जी का उपन्यास है । नागर जी की सांस्कृतिक चेतना का सन्देश इसमें दिया गया है । भारतीय संस्कृति में सन्निहित भावात्मक एकता और उसकी स्थापना के लिए किये गये प्रयासों ने हमारी राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण रखा है । वैष्णव मुनि नारद और भार्गव सोमाहुति ने अपने ज्ञान, तपोबल और समन्वयकारिणी प्रतिभा से देश को एकता के सूत्र में बांधने का संकल्प किया । इस प्रकार पुराण की पृष्ठभूमि पर नागर जी का सांस्कारिक विचार इस उपन्यास में प्रकट किया गया है । इस प्रकार "महाकाल" में बंगाल की दुर्भिक्षता, "सेठ बांकेमल" में समाप्त होती हुई सामन्तवादी संस्कृति, "अमृत और विष" में एक स्वतंत्र लेखक की आर्थिक दुस्थिति, नई पीढी एवं पुरानी पीढी का संघर्ष, "नाच्यौ बहुत गोपाल" में गरीबों की खासकर नारी जाति की विवशता, "सुहाग के नूपुर" में पुरुषों की अधिकार प्रमत्तता, "करवट" में अंग्रेज़ों के शासनकाल में भारतीय परिवार की संरचना, "शतरंज के मोहरे" में अवध के नवाबी शासन का ह्रास, "मानस का हंस" में मध्य कालीन इतिहास का चित्रण, "खंजन नयन" में सूरदास के जीवन वृत्त के जरिए पूरे मध्यकालीन समाज का चित्र और "एकदा नैमिषारण्ये" में पौराणिक पृष्ठभूमि पर स्थापित भावात्मक एकता का चित्रण नागर जी ने सफल रूप मे प्रस्तुत किया है ।

नागर जी के कथानकों की मूल विशेषताएं

नागर जी की कथाओं के अन्तर्गत कई अनिवार्य विशेषताएं मिलती हैं। अपने उपन्यासों में साधारण जनता से संबन्धित समस्याओं का उद्घाटन करके उन्हें हल करने का प्रयास उन्होंने किया है। मध्यवर्ग की जनता ही उनके ज्यादातर उपन्यासों का विषय है। अपने भोगे हुए अनुभवों से ही कथावस्तु का निर्माण उन्होंने किया है। जनता के बीच के संघर्षमय जीवन को उन्होंने प्रस्तुत किया है। उनके कथानकों में पुनरावृत्तिजन्य विरसता नहीं है। कथानकों में विविधता लाई हुई है। अकाल, गरीबी, वेश्याओं का उद्धार, शिक्षित वर्ग की आर्थिक पराधीनता आदि आदि विविध विषय का वर्णन उनके कथानकों की मुख्य विशेषताएं हैं।

नागरजी के कथानकों में जीवनगत सत्य

नागर जी के कथानक जीवन में घटित होनेवाली प्रतिदिन की घटनाओं से भरे पडे हैं। "महाकाल" के स्वार्थचित्त मोनाई, जमीन्दार दयाल और आदर्शमात्र पाँचू, "सुहाग के नूपुर" का कोवलन और कन्नगी आदि से संबन्धित घटनाएं मानव.जीवन में प्रतिदिन घटित होनेवाली हैं। नागर जी के उपन्यास चाहे ऐतिहासिक या पौराणिक क्यों न हो उनमें सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति बराबर मिलती है। समाज में दीख पड़नेवाली पूंजीवादी मनोवृत्ति का साकार प्रतीक है "महाकाल" का मोनाई। नागर जी ने यथार्थ के अत्यन्त गाढे रंगों से उसके चरित्र को चित्रित किया है। जब तक गाँववालों के घर की एक एक चीज़ अपने अपने हाथ में नहीं आती तब तक मुट्ठी भर चावल

वह उनको नहीं देता है । आराम से दूसरों का शोषण करने के सारे उपाय वह जानता है । उसी प्रकार जमीन्दार दयाल का भी संबन्ध समाज के शोषक वर्ग से है । भूखों की भीड पर बिना किसी झिझक से गोलियाँ चलवाकर अंग्रेज़ों से मिल जुलकर अपना खजाना भरता है । इन स्वार्थी लोगों को अपनी रचना के जरिए समाज के सामने नागर जी ने रख दिया है । उसी समय पाँचू जैसे आदर्शवादियों संवेदनशील व्यक्तियों को भी अपना पात्र बनाया है । "सुहाग के नूपुर" का कोवलन आज के समाज के उद्धत पुरुषों का प्रतीक है । कन्नगी तो सारा अपमान सहकर अपनी वंश प्रतिष्ठा को बनाये रखनेवाली है । भारतीय संस्कृति के अनुरूप अपने धूर्त पति की निन्दायें सहती हुई वह जीती है । इस प्रकार जीवन में दीख पड़नेवाले सत्य को अपने पात्रों के जरिए नागर जी ने व्यक्त किया है ।

अनुभूति की सच्चाई

अनुभव की प्रचुरता नागर जी के औपन्यासिक कथ्य को समृद्ध बनाती है । उनका अनुभव क्षेत्र बहुत व्यापक है । जीवन की यथार्थ स्थितियों को पूरी तन्मयता के साथ ग्रहण करके एक जीवन्त समाज को संपूर्णता के साथ उन्होंने चित्रित किया है । "अमृत और विष", "खंजन नयन", "नाच्यौ बहुत गोपाल" - इन उपन्यासों में उनके अनुभव क्षेत्र का सच्चा परिचय हमें मिलता है ।

"अमृत और विष" में एक जगह पर नागर जी ने बताया है - स्वतन्त्रतापूर्व अपने बचपन में उन्होंने जिस भारत को देखा था अपने संपूर्णता के साथ आज वे देख नहीं पा रहे हैं । यह दुख सत्य जिसका अनुभव अमृतलाल नागर ने अपने जीवन में कर लिया है उसी के प्रकाशन में

अरविंदशंकर के माध्यम से वे व्यक्त करते हैं - "आज के जीवन में मुझे एक प्रकार का खोखलापन जान पड़ता है । एक ओर जहाँ मुझे अपना आज का भारत पहले से कहीं अधिक उन्नत और वैभवशाली लगता है वहीं मुझे अपने बचपन और जवानी के दिनों से यह देश कहीं अधिक खोया हुआ निष्प्राण निकम्मा लगता है[1] ।"

"खंजन नयन" की रचना के लिए नागर जी मथुरा में भगवान के मंदिर में ही आकर डेरा डालकर रहे थे । "खंजन नयन" में सूरदास पिता के साथ गुआँव में कथापाठ सुन रहा है[2] । वहाँ से भावद्भक्ति पाकर सूरदास शिवालय पर जाता है । वह प्रसंग देखिये - पुराना शिवालय दिन में प्राय:निर्जन ही रहता था । मंदिर के गोल घेरे में एक एक मूर्ति से वह परिचित हो गया था । घुसते ही दाहिने हाथ आले में सिन्दूर पुते बड़े से गणेश जी फिर सूर्य भगवान सात घोड़ों के रथ पर विराजमान है ।" सूरदास शिवालय में प्रवेश करके वहाँ के एक एक मूर्ति से परिचित होता है । पार्वती जी का ठिकाना मालूम कर लेता है । इससे स्पष्ट है कि भगवान के मंदिर को नागर जी ने बहुत ही निकट से देखा था । और अपने ही अनुभवों का चित्रण सूरदास के माध्यम से कराया था ।

"नाच्यौ बहुत गोपाल" के निवेदन में नागर जी ने स्वयं कहा है कि अपनी सुनी हुई एक कहानी के आधार पर ही निर्गुनिया की कथा उन्होंने रच डाली । उन्होंने कहा है - "मैं ने सुना कि एक धनी वृद्ध ब्राह्मण व्यापारी की तरुणी भार्या एक मेहतर युवक के साथ भागी थी । अपने साथ वह काफी गहने और रुपये भी ले गई थी[3] ।"

---

1. अमृतलाल नागर के उपन्यास - आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, आनन्द प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1981

2. खंजन नयन, पृ.39

3. नाच्यौ बहुत गोपाल "निवेदन" दूसरा अनुच्छेद

इसी सुनी जानकारी से ही उन्होंने निर्गुनिया का विवाह एक वृद्ध ब्राह्मण से कराया । फिर भी मोहन के साथ अपने पिता से प्राप्त सारे धन को इकट्ठा कर निर्गुनिया के भाग जाने की कथा कही है - "छठे दिन निर्गुन अपने जोडे हुए 8000 रुपये, सोने के पांच गुट्टे, साठ गुन्नियाँ और ब्याह के समय बाप से पाये हुए गहने, चार-छह साडी जंपरों के साथ, पोटली में बांधकर शाम के समय मसुरिया दीन के घर लौटने के पहले, पीछे के दुरवाजे से भाग खडी हुई[1] । ..... यह तो इसको प्रमाणित करता है कि अपनी सुनी हुई कथा के अनुसार ही निर्गुनिया के भाग जाने की कहानी उन्होंने रची ।

"अमृत और विष" में भी अपनी अनुभूत आर्थिक कठिनाई का प्रतिफलन देखा जासकता है । "अमृत और विष" के "कथनीय" में नागर जी ने उपन्यास लिखने की तकलीफ के बारे में कहा है - "सन् 1961 में एक बृहद् उपन्यास रचने की योजना मन में आई । कई परिच्छेद लिख डालने के बाद यह लगा कि बढती महंगाई के दिनों में अनेक वर्षों में पूरा होनेवाला काम उठाना मेरे लिए सम्भव न होगा[2] ।" यही आर्थिक कठिनाई अरविन्दशंकर के शब्दों में नागर जी ने सुनाई है "मुझे लग रहा है कि हाल के दूसरे कोने से अभी एक पुस्तक प्रकाशक अपने कडे स्वर में ललकारेगा । "ये नीच डेढ साल से मेरे दो हज़ार रुपये डकारे बैठा है, न अभी तक उपन्यास लिखकर दिया और न मेरे पत्रों के जवाब ही देता है[3] ।" उपन्यासकार के रूप में अपनी आर्थिक कठिनाई ही इससे प्रतिबिंबित होती है ।

---

1. नाच्यो बहुत गोपाल, पृ. 72
2. अमृत और विष - कथनीय, पहला परिच्छेद
3. वही, पृ. 30

इतने से मालूम किया जा सकता है कि अपनी व्यापक अनुभूति से ही नागरजी ने अपने उपन्यास लिखे हैं ।

द्वन्द्वपूर्ण कथानक

नागर जी के अधिकांश उपन्यासों के कथानक द्वन्द्वपूर्ण हैं । "महाकाल" में अकाल के सम्मुख पाँचू गोपाल का संघर्षमय जीवन पाठकों के सामने है । चिरकाल से संचित अपना आदर्श और कोरे यथार्थ के बीच उसकी आत्मा कराह उठती है । बूंद और समुद्र में महिपाल का जीवन दो तहों में है । परंपरा में लीन अपनी पत्नी कल्याणी और अपने साहित्यिक जीवन को प्रेरणा देनेवाली अपनी प्रेमिका शीला स्विंग - इन दोनों में किसको अपनावें, पारिवारिक जीवन की शिथिलता को कैसे दूर करें ये चिन्ताएं महिपाल के जीवन को द्वन्द्वपूर्ण बनाती हैं । "सुहाग के नूपुर" का कथानक भी इसी द्वन्द्वात्मकता से पूर्ण है । कोवलन वेश्या माधवी और कुलवधू कन्नगी के प्रेम के बीच पड़े हैं । कोवलन की माधवी में उत्पन्न पुत्री मणिमेकला का नाम कोवलन के वंशवृक्ष में अंकित करने से कोवलन सहमत नहीं हुआ । अपने कुल पर कलंक लगाना वह नहीं चाहता । तो माधवी सिंहनी की भांति तड़प उठती है । उसके सामने विवश कोवलन कहता है - "तुम्हारे प्राणों के प्रति मेरा मोह अपार है । तुम्हें लेकर अब मैं जग से इतनी दूर चला आया हूं कि लौटने की संभावना नहीं, साहस भी नहीं । लिखो, लिखो अपनी बेटी का नाम और उसके साथ यह भी अंकित करा देना कि अब से इस वंश में वासना, विलास और दैहिक प्रेम के सार्थ चलेंगे । देवन्ती, अपनी सखी से कह देना कि उनके साथ ही साथ मैं विवेक और न्याय का परित्याग भी कर चुका हूं ।"[1] कोवलन का अप्रतिम मानसिक द्वन्द्व यहां स्पष्ट रूप से चित्रित है । माधवी कन्नगी के नूपुरों को भी अपनाकर कुलवधू का स्थान प्राप्त करने का परिश्रम करती है।

---

1. सुहाग के नूपुर, पृ.154

नूपुर को अपनाकर नगरवधू से कुलवधू बनने के आवेश में माधवी कहती है - "मुझे प्राण नहीं, सुहाग के नूपुर चाहिए । यदि उसके प्राण हरकर नूपुर लाए तो महाराज फिर मुझे जीता न छोड़ें।[1]" इस प्रकार देखा जा सकता है कि कई अन्तर्द्वन्द्वों के चित्रण से "सुहाग के नूपुर" का कथानक द्वन्द्वपूर्ण बन गया है । "अमृत और विष" का कथानक भी द्वन्द्वपूर्ण है । सक्रिय महत्वाकांक्षी तरुण वर्ग एक ओर । रूढिवादिता और धार्मिक अन्धविश्वासों में पडी हुई पुरानी पीढी दूसरी ओर । नयी पीढी के प्रतिनिधि रमेश परंपरा के विरुद्ध बाल विधवा रानीबाला को ब्याहना चाहता है । पुरानी पीढी के प्रतिनिधि पुत्तीगुरु रमेश के पिता - इस विवाह का विरोध करता है । इस हालत में पुरानी पीढी और नई पीढी में द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है । तो भी रमेश बालविधवा से विवाह कर युवपीढी के समक्ष नवीन आदर्श प्रस्तुत करता है । इस प्रेम विवाह में रमेश और रानीबाला को पर्याप्त संघर्ष करना पडता है क्योंकि पुरानी पीढी के लोग अभी भी पुरातन मूल्यों से चिपके हुए हैं ।

इसी प्रकार "बिखरे तिनके" में भी सुहागी तथा सरसुतिया अन्तर्जातीय प्रेमविवाह करते हैं । पुरानी पीढी को पराजित करते हुए नई पीढी उस विवाह को संपन्न करा देती है । यहाँ भी पुरानी और नई पीढी में संघर्ष या द्वन्द्व जारी रहता है ।

"अग्नि गर्भा" का कथानक रामेश्वर और सीता का संघर्षमय जीवन है । इस प्रकार समाज में दिखाई पड़नेवाली अनेकों द्वन्द्वपूर्ण यथार्थ घटनाएं नागर जी के कई उपन्यासों में दर्शित हैं ।

---

1. सुहाग के नूपुर, पृ.203

कथानकों की विविधता

नागरजी के उपन्यासों में कथानक की अपनी विशेषताएं होती हैं। उनके उपन्यासों के कथानक विषय की विविधता के कारण अपने ढंग के अलग हैं। "महाकाल" में अकाल, " बूंद और समुद्र" में समाज के टूटते मध्यवर्ग का चित्रण, "करवट" में ऐतिहासिक धरातल पर सामाजिक यथार्थ का चित्रण, "सुहाग के नूपुर" में पुरुषवर्ग की उन्मत्तता और आधिपत्य, मानस का हंस में तुलसीदास का जीवन, खंजन नयन में सूरदास का जीवन - इस प्रकार कथानकों में विविधता ही विविधता है। पुनरावृत्तिजन्य विरसता किसी उपन्यास में नहीं है। पुरानी पीढी और नयी पीढी का संघर्ष, दहेज की प्रथा का दोष आदि नवीन विषय भी उनके कथानक की विशेषताएं कही जा सकती हैं। अन्य उपन्यासकारों की अपेक्षा नागर जी के उपन्यासों के कथानकों में नवीनता ही नवीनता दीख पडती है। पुरानी पीढी के विरुद्ध नई पीढी का संघर्ष एक नया कथानक है। दहेज की कुप्रथा ही "महाकाल" के महिपाल की आत्महत्या का मूल कारण है। "अग्निगर्भा" की सीता के लिए योग्य वर के न मिलने का कारण ही दहेज की कुरीति है। इस प्रकार तत्कालीन समाज में दर्शित नये नये विषयों को ही नागर जी ने अपने उपन्यासों के लिए चुन लिया है।

प्रेमचन्द की परंपरा में आनेवाले कथाकारों ने उनकी उपन्यास संबन्धी मान्यताओं को विरासत के रूप में ग्रहण कर अपने कथाशिल्प को समृद्धतर बनाया है। नागर जी ने अपनी अनुभवजन्य कथासामग्री को नवागत पीढी के लिए अपने उपन्यासों में उंडेल दिया। कथानक की मौलिकता, नवीनता, विविधता आदि के कारण नागर जी के उपन्यास औपन्यासिक स्तर पर ऊंचा स्थान प्राप्त कर चुके हैं। घटनाओं और क्रियाओं के संचयन के साथ संगठन भी नागर जी के कथानकों में है। कहानी के माध्यम से उन्होंने अपना निश्चित

दृष्टिकोण व्यक्त किया है । नागर जी का जीवन ही उनके सभी उपन्यासों में देखा गया है । अमृतलाल नागर साहित्यकार, पत्रकार, समाजसुधारक, विचारक, भाषाभिमानी सब कुछ थे । उनके जीवन के सभी आयामों का अध्ययन ही उनका समूचा अध्ययन है । उनके उपन्यासों में यह बराबर मिलता है । नागर जी के सारे उपन्यासों के कथानक असल में लक्ष्य पर पहुँच गये हैं । मानवजीवन की संवेदनशील घटनाओं का सहारा लेकर चुने गये सारे कथानक नागर जी के उपन्यासों में जीवित हैं ।

नागर जी के उपन्यासों में चरित्र चित्रण

चरित्र क्या है ?

उपन्यास का प्रत्यक्ष संबन्ध मानव जीवन से होता है । औपन्यासिक पात्र मानव जीवन से भिन्न नहीं होते । ई.एम.फार्स्टर औपन्यासिक पात्र का स्वरूप यों बताते हैं - "उपन्यासकार कुछ शब्दजाल आत्माभिव्यक्ति करता हुआ बुन देता है । उसे नाम देता है । उसमें प्राण संचारित करता है, स्त्री पुरुष का भेद प्रदान करता है, उन्हें अनुभव देने के साथ ही उनसे उद्धरण चिह्नों के माध्यम से वार्तालाप भी करवाता है । वे औपन्यासिक पात्र ही होते हैं[1] ।" साहित्य कोश में चरित्र के संबन्ध में इससे मिलते जुलते विचार प्रकट किये हुए हैं - "जिन व्यक्तियों के माध्यम से कथा की घटनाएं घटती हैं जो उन घटनाओं से प्रभावित रहते हैं और कथानक का निर्माण ही जिन व्यक्तियों के क्रिया कलाप से होता है उन्हें चरित्र कहा जाता है[2] ।"

---

1. एस्पेक्टस ऑफ द नोवल - ई.एम.फार्स्टर, पृ.49
2. साहित्य कोश - भाग - 1, पृ.488

स्पष्ट है कि उपन्यासों में चरित्रों का अपना विशेष महत्व रहता है। इनके बिना कथा आगे नहीं बढ सकती। जो सुख और दुख मनुष्य अनुभव करते हैं ये पात्र भी उन सुख दुखों से होकर गुजरते हैं। अत: औपन्यासिक पात्रों का क्षेत्र मनुष्यों तक सीमित है। पर यह चरम सीमा नहीं है। इन पात्रों के कई स्वरूप औपन्यासिक कौशल से प्रस्तुत किये जाते हैं। - "उपन्यासकार मानवजीवन के व्यक्तियों को ज्यों का त्यों ही अपने उपन्यासों के संसार में नहीं ला बिठाता।[1]" ये पात्र मन में क्या सोचते हैं वह हम पूर्ण रूप से जान नहीं सकते जब तक वे स्वयं नहीं कहे कि वह ऐसा है। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं को मन में छिपाकर रखता है और ऊपर आदर्शवादिता का आवरण डालता है। इसलिए व्यक्ति व्यक्ति में आपस की पहचान नहीं होती। लेकिन उपन्यास के पात्रों का कोई कार्य हम से छिपा नहीं रहता। इसलिए इन पात्रों का मूल्यांकन करना हमारे लिए कठिन नहीं होता। पर इनकी चरित्रगत विशेषताएं मानवजीवन के व्यक्तियों से भिन्न नहीं होतीं। उपन्यासकार के पात्रों का उपन्यास में महत्वपूर्ण स्थान होता है। आवश्यक पात्रों का निर्माण करने से ही उसका उपन्यास सफल रहता है।

पात्रों के संबन्ध में कहा जाय तो उनके लिए यह बात आवश्यक है कि वे वास्तविक हों। अवास्तविक पात्र पाठकों पर कोई प्रभाव डाल नहीं सकते। उनकी क्रियाएं अमानवीय होती हैं। इसलिए वे पात्र असफल होते हैं। उपन्यासकार के उद्देश्यों की पूर्ति उपन्यासकार के पात्र ही करते हैं। सत्यान्वेषण, मूल्य निर्माण, दिशा निर्देशन आदि उपन्यासकार का दायित्व अपने उपन्यास के पात्रों के

---

1. Yet for all their likeness to real people, fictional characters are not real people. They do not have to function in life, but in the novel, which is an art form'.

'A treataise on the Novel, London 1960, p.97

ज़रिए ही पाठकों तक पहुँचाया जाता है । अतः इन पात्रों का वास्तविक होना आवश्यक है । नागर जी की कन्नगी, माधवी, सीता, कर्नल, पांचू गोपाल, रमेश आदि पात्र हमारे अत्यन्त निकट प्रतीत होते हैं । उन पात्रों में जीवन के प्रति सच्चाई और वास्तविकता है, संघर्ष के प्रति ईमानदारी है ।

पात्रों की संख्या चाहे अधिक हो, पर उनका सफल निर्वाह होना चाहिए । प्रायः यह देखा जाता है कि पात्र तो अनेक होते हैं पर उनका सफल निर्वाह अत्यन्त कठिन रहता है । उपन्यासकार इन सभी पात्रों के स्वाभाविक चारित्रिक विकास की ओर ध्यान नहीं दे सकता । वास्तव में पात्रों की संख्या उतनी ही होनी चाहिए जिससे कथानक की आवश्यकताएं और लेखक का उद्देश्य पूर्ण हो जाय । इसी में उपन्यास की सफलता निहित है ।

पात्रों का वर्गभेद

पात्रों के दो वर्ग होते हैं । एक वर्ग में हम नायक-नायिका को रख सकते हैं और दूसरे वर्ग में सहनायक-सहनायिका और गौण पात्रों को रख सकते हैं ।

"नायक कथा का संचालन सा करता प्रतीत होता है ।"[1] अंग्रेज़ी में उसे "हीरो" कहते हैं । यह तो आवश्यक नहीं कि प्रत्येक उपन्यास में नायक हो । नायक का व्यक्तित्व दुर्बल या सशक्त हो सकता है । कथानक की आवश्यकता पर नायक का व्यक्तित्व निर्भर रहता है । मानव जीवन में पुरुषों के रूप भिन्न होते हैं । उसी प्रकार नायक भी कई श्रेणियों के हो सकते हैं ।

---

1. The Craft of Fiction - Percy Lubbock, London 1960 p.131

1. प्रेमी नायक
2. आदर्श नायक
3. गृहस्थ नायक
4. वीर नायक
5. दुर्बल नायक
5. धूर्त नायक

ये नायक कथानक के प्रारंभ से अन्त तक घटनाओं के विकास क्रम में उपस्थित होते हैं ।

नायिका

प्रत्येक उपन्यास में पुरुष पात्रों की भांति अनेक नारी पात्र होते हैं । कथानक की आवश्यकतानुसार नारी पात्र किसी भी संख्या में हो सकते हैं । लेकिन प्रत्येक उपन्यास में नायिका का होना अनिवार्य नहीं है। नागर जी के "सेठ बाकेमल" में कोई नायिका नहीं है । ऐसी कुछ नारियाँ होती हैं जो कथानक में अन्त तक महत्वपूर्ण रहती हैं । उन नारियों का व्यक्तित्व प्रबल एवं आकर्षक रहता है । इस विशेष नारी पात्र को हम नायिका कहते हैं । मानवीय जीवन की विविधता के अनुसार नारियों में भी विविधता होती है । वीरांगना, माँ, विलासिनी आदि । नागर जी के उपन्यास "बूंद और समुद्र" में वनकन्या, एकदा नैमिषारण्ये में इज्या वीरांगनाएं हैं । बूंद और समुद्र की ताई और कल्याणी "माँ" हैं । सुहाग के नूपुर में माधवी और पेरियनायकी "विलासिनी" हैं ।

सहनायक-सहनायिका

नायक-नायिका के बाद सहनायक-सहनायिका का स्थान होता है । कथानक में इनका महत्वपूर्ण स्थान होता है तो भी

प्रत्येक उपन्यास में इनकी आवश्यकता अनिवार्य नहीं । उपन्यास में नायक या नायिका के बाद क्रमश: जो प्रधान पुरुष और नारी पात्र होताहै जो कथानक में फलागम की ओर अग्रसर होते हैं वही सहनायक और सहनायिका होते हैं । नागर जी के उपन्यास "बूंद और समुद्र में कर्नल सहनायक है और ताई सहनायिका है । "महाकाल" में मोनाई और दयाल, "शतरंज के मोहरे" में नसीरूद्दीन हैदर, "अमृत और विष" में खन्ना-दंपति और लच्छू, एकदा नैमिषारण्ये में भारत चन्द्र सहनायक हैं । बूंद और समुद्र में शीला स्विंग, सुहाग के नूपुर में माधवी और देवन्ती, अमृत और विष में रानी बाला, "मानस का हंस" में रत्नावली आदि नागरजी के उपन्यासों की सहनायिकायें हैं ।

गौण पात्र

ये पात्र उपन्यास में कथानक की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं होते । वे केवल मुख्य पात्रों की महत्ता प्रतिपादित करने केलिए होते हैं । चरित्र प्रधान उपन्यासों में इनका महत्व कम होता है क्योंकि एक या दो चरित्र से उपन्यासकार का काम चल जाता है । उपन्यासकार इनके चरित्र चित्रणकी ओर विशेष प्रयत्नशील नहीं होते ।

स्वभाव के अनुसार पात्रों के स्थिर पात्र और विकसन शील पात्र ये दो भेद होते हैं ।

स्थिर पात्र

परिस्थिति के अनुसार स्थिर पात्र का परिवर्तन नहीं होता । जीवन में आनेवाला सुख-दु:ख उन पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ता । दु:ख में दैन्य भाव या सुख में उल्लास उनमें नहीं ।

वे दृढ स्वभाव के साथ अचंचल रहते हैं । कभी कभी उन्हें टाइप कहते हैं । वे वास्तव में किसी न किसी वर्ग के प्रतिनिधि बनकर आते हैं । इन पात्रों में उपन्यासकार उस वर्ग की सारी विशेषताएं भर देता है । महाकाल का पांचू स्वयं उन बुद्धि जीवियों का प्रतिनिधि है । वह जीवन भर संघर्षरत रहता है । ऐसे पात्र पाठकों की चेतना में स्मरणीय रहते हैं । "मानस का हंस" में तुलसीदास भी पाठक के स्मृतिपथ से कभी अदृश्य नहीं होते । तुलसीदास के बारे में "मानस का हंस" की भूमिका में नागर जी ने कहा है - "मुझे लगा कि तुलसी और तुलसी के राम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सुझाए शब्द के अनुसार निश्चय ही लोकधर्मी थे ।"[1]

विकसनशील पात्र

ये पात्र परिस्थितियों के प्रवाह में पड़कर बहते चले जाते हैं । दुःख-सुख और आशा-निराशा में जीवन में नई दिशाएं प्राप्त करते हैं । उनमें आ जानेवाले परिवर्तन के लिए उपन्यासकार आवश्यक प्रमाण देते हैं । महिपाल एक परिवर्तनशील चरित्र है । प्रारंभ मे उसका विवाह जीवन सुखी नहीं है । उसे सन्तोष नहीं प्राप्त होता और अपनी पत्नी कल्याणी से वह खिंचा खिंचा सा रहता है । पर कर्नल के बीच आने से नई दिशा प्राप्त होती है और तदनन्तर महिपाल में जो चारित्रिक विकास आता है उसके लिए पर्याप्त कारण दिये गये हैं । और उसके अन्तर्मन का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । कहने का तात्पर्य यह है कि विकसनशील पात्रों के चरित्रों में परिवर्तन की स्वाभाविकता बनाये रखने के लिए पर्याप्त कारण उपस्थित किये जाने चाहिए ।

---

1. मानस का हंस - अमृतलाल नागर - भूमिका,
राजपाल एण्ड सन्स, छात्र विशेष संस्करण 1986

चरित्र चित्रण का महत्व

साहित्य की आधुनिक विधाओं में चरित्र चित्रण का महत्व निर्विवाद है । चरित्र चित्रण उपन्यास का अनिवार्य तत्व ही नहीं, उसका प्रधान आकर्षण भी है । उपन्यास में चरित्र चित्रण की सहायता से ही पाठक पात्रों से सायुज्य स्थापित करके आत्म विभोर हो जाता है । वास्तव में पात्रों के चरित्र का उद्घाटन उपन्यास की प्रमुख समस्या है । उपन्यासकार को अपने चरित्रों का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए जिससे उनके पूर्णतया सत्य होने का भ्रम पैदा हो ।

पात्रों के व्यक्ति स्वभाव को प्रकाश में लाने की एक विधि है चरित्र-चित्रण । उपन्यास के चरित्र ही उसका मेरुदण्ड माने जाते हैं । हम इस तथ्य से कभी इन्कार नहीं कर सकते कि उपन्यास मुख्य विषय मानव और उसका चरित्र है । मानव जीवन के रहस्य को सुलझाने की प्रवृत्ति प्रत्येक उपन्यास में मिलती है । यह चारित्रिक गुत्थियों को सुलझाने से ही संभव है । इसलिए यह कहना असंगत न होगा कि चरित्र चित्रण उपन्यास का प्राणभूत तत्व है । चरित्र-चित्रण की सुदृढ नींव पर ही उपन्यास का भव्य प्रासाद टिका है । उपन्यास में चरित्र चित्रण की सहायता से पाठक पात्रों से सायुज्य स्थापित करके आत्मविभोर हो जाता है । पात्रों के चरित्र का उद्घाटन उपन्यास की प्रमुख समस्या है । श्री रणवीर रांग्रा ने चरित्र चित्रण की महत्ता के बारे में कहा है - "चरित्र चित्रण के बिना उपन्यास-कार का उपन्यास "उपन्यास" नहीं कहला सकता और चाहे कुछ कहलाए, क्योंकि उपन्यास का मूलाधार मानव और उसका चरित्र है और चरित्र अभिव्यक्ति मांगता है।[1]"

---

1. चरित्र चित्रण का विकास - श्री० रणवीर रांग्रा
   प्राक्कथन, पृष्ठ क, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, 1961

चरित्र के सामान्यत: दो स्वरूप बताये जाते हैं - सत् और असत् । सच्चरित्र से अभिप्राय है मनुष्य का वह आचरण जो नीति सम्मत और समाज के अनुकूल हो । इससे उलटा आचरण जो समाज और उसकी नीति के विरुद्ध हो "असत" चरित्र माना है । अन्त:करण से ही मनुष्य का विकास होता है । विकासोन्मुख अन्तकरण ही मूलचरित्र है । और किसी रूपविशेष की उसकी विकासावस्था है मनुष्य का व्यक्तित्व । प्रकृति के विकारों के फलस्वरूप बुद्धि, अहंकार और मन पूर्व काम के अनुसार कम या अधिक सात्त्विक राजस और तामस होकर उसका विकास करते हैं, चरित्र का निर्माण करते हैं ।

कथावस्तु और चरित्र निर्माण

कथावस्तु और चरित्र निर्माण परस्पर पूरक हैं । चरित्रों के अभाव में उपन्यास की कथा का निर्माण या संवादों की योजना नहीं हो सकती । वास्तव में चरित्र उपन्यास के सभी तत्वों को अस्तित्व प्रदान करता है । कथानक की अभिव्यक्ति पात्रों द्वारा ही होती है । साहित्यकार यथार्थ जगत की घटनाओं द्वारा यथार्थ जगत के पात्रों को परिचित बना देता है । डॉ॰श्यामसुन्दर दास के अनुसार वह "वास्तविकता का परिज्ञान" ही किसी उपन्यासकार की सफलता की कसौटी है[1] ।" डॉ॰ गुलाबराय ने कहा है - मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है । "चरित्र के ही कारण हम एक मनुष्य को दूसरे से पृथक् करते हैं । चरित्र के द्वारा हम मनुष्य के आपे (पर्सनालिटी) को प्रकाश में लाते हैं[2] ।"

1· साहित्यालोचन, पृ॰150

2· काव्य के रूप - डॉ॰ गुलाबराय, पृ॰178

उपन्यास में पात्र ही कथा को सप्राण बनाते हैं। क्योंकि ये मानवीय चरित्र के चित्र मात्र हैं। प्रेमचन्द उपन्यास को मानवीय चरित्र का चित्र मात्र समझते हैं। उनके अनुसार मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास का मूलतत्त्व है[1]।

चरित्र चित्रण की महत्ता बतलाते हुए डॉ॰गुलाबराय का कहना है कि "यदि उपन्यास का विषय मनुष्य है चरित्र चित्रण उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है। चरित्र के ही कारण हम एक मनुष्य को दूसरे से पृथक् करते हैं। चरित्र में मनुष्य का बाहरी आपा और भीतरी आपा दोनों ही आ जाते हैं। बाहरी आपे में मनुष्य का आकार-प्रकार, वेशभूषा, आचार-विचार, रहन-सहन, चाल-ढाल, बातचीत के विशेष ढंग और कार्य-कलाप भी आ जाते हैं। भीतरी आपा इन सब बातों से अनुमेय रहता है। पात्र के भीतरी आपे का चित्रण बाहरी आपे के चित्रण से कहीं अधिक कठिन होता है[2]।" उपन्यासकार अपने पात्रों को रूप और रंग देते हैं तो भी उनके ईश्वरीय होने का आभास देते हैं। इसके बारे में हड्सण कहते हैं - "उपन्यासकार अपने कौशल से उनमें ऐसे गुण भर देता है कि उनसे हमारा निकटतम तादात्म्य स्थापित हो जाता है और उनके सुख-दुख हमारे अपने से प्रतीत होते हैं[3]।"

1· साहित्य का उद्देश्य, पृ·54

2· काव्य के रूप - डॉ· गुलाब राय, पृ·178

3 . An Introduction to the study of literature - W.H. Hudson, p.145

उपन्यास के अन्तर्गत चरित्र चित्रण की दो प्रमुख विधियाँ बताई गई हैं ।

1· प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक विधि
2· परोक्ष या नाटकीय विधि

"प्रथम विधि के अन्तर्गत उपन्यासकार पात्र के चरित्र, उसके आचार-विचार आदि पर स्वत: प्रकाश डालता है और दूसरी विधि के अन्तर्गत पात्र स्वत: कथोपकथन आदि के माध्यम से अपने चरित्र को स्पष्ट करते हैं[1]।" "सुहाग के नूपुर" के कोवलन, कन्नगी, माधवी, "बूँद और समुद्र" का महिपाल, कर्नल, ताई, एकदा नैमिषारण्ये का भार्गव सोमाहुति आदि नागर जी के उपन्यासों के पात्र प्रथम विधि के अन्तर्गत आते हैं । "महाकाल" का पाँचू गोपाल, अमृत और विष का अरविन्दशंकर आदि अपने स्वगत कथन से अपने चरित्र को स्पष्ट करते हैं । ये परोक्ष या नाटकीय विधि के अन्तर्गत आते हैं ।

पात्रों का चुनाव

पात्रों के चुनाव के बारे में यह तो जानना है कि पात्र कृत्रिम न होना चाहिए । जीवन में प्रत्यक्ष दीख पडनेवाले व्यक्तियों का औपन्यासिक रूप हों । कल्पित पात्र जीवन के यथार्थ पात्रों की समता नहीं कर सकते । पात्र तो वास्तविक प्रतीत होता है जिसके लिए वे गुण-अवगुण मिश्रित होना चाहिए । अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यासों के लिए वास्तविक पात्रों का ही चुनाव किया है । उनके उपन्यासों के सभी पात्र - पाँचू गोपाल, मोनाई, दयाल, अरविन्दशंकर, रमेश, लच्छू, कोवलन, कन्नगी, माधवी, मीता, रामेश्वर सब जीवन में प्रत्यक्ष दीख पड़नेवाले व्यक्तियों का औपन्यासिक रूप है ।

---

1. An Introduction to the study of literature - W.H. Hudson, p.146-147

स्वरूप की दृष्टि से पात्रों की दो कोटियाँ होती हैं - §1§ व्यक्ति प्रतिनिधि पात्र §2§ वर्ग प्रतिनिधि पात्र ।

1. व्यक्ति प्रतिनिधि पात्र

इस कोटि के पात्र ऐसे होते हैं जिनका अपना कुछ गुण होता है जो अन्य पात्रों में दिखाई नहीं पड़ता या अन्य बहुत ही कम व्यक्तियों में पाया जाता है । नागर जी के "महाकाल" उपन्यास के प्रतिनिधि पात्र पाँचू गोपाल, बूँद और समुद्र का सज्जन, वनकन्या, अमृत और विष का रमेश, "अग्निगर्भा" का रामेश्वर, सीता - ये सब व्यक्ति प्रतिनिधि पात्र हैं जिनका गुण बहुत विरले ही अन्य पात्रों में दिखाई पड़ता है ।

2. वर्ग प्रतिनिधि पात्र

ये पात्र ऐसे होते हैं जो एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । इन्हें "टाइप" कहते हैं । व्यक्तिगत विशेषताएं इन पात्रों की भी होती हैं तो भी एक समूचे वर्ग को हमारे सामने उपस्थित करते हैं। नागर जी के "महाकाल" उपन्यास का मुख्य पात्र पाँचू गोपाल की व्यक्तिगत विशेषताएं रहती हैं, साथ ही साथ समूचे शिक्षक एवं बुद्धिजीवियों का वह प्रतिनिधित्व करता है । वैसे ही "सुहाग के नूपुर" की माधवी, अग्निगर्भा का रामेश्वर और सीता वर्ग प्रतिनिधि पात्र है ।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में चरित्र

नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यासों को छोड़कर शेष उपन्यासों का संबन्ध समाज के मध्यवर्गीय जीवन से है । इस मध्यवर्गीय जीवन को प्रस्तुत करने केलिए लेखक ने पूर्ण भारतीय सामाजिक जीवन का आधार ग्रहण किया है । उन्होंने अपने उपन्यासों में आधुनिक जीवन की अनेक समस्याएं प्रस्तुत की हैं । और उनसे संबद्ध अनेक पात्रों की सृष्टि की है । उनके सारे पुरुष और नारी पात्र आधुनिक सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं । प्रतिनिधि पात्रों की सृष्टि के साथ साथ व्यक्तिपात्रों की सृष्टि भी उन्होंने की है । बूंद और समुद्र के बाबारामजी दास जैसे अधिक पात्र व्यक्ति हैं । नागर जी के औपन्यासिक पात्र जिन्दगी की गहरी छानबीन करनेवाले जीवित पात्र हैं । उन्होंने सामान्य जीवन से ही पात्रों को चुन लिया है । इसी कारण उनके अधिकांश पात्र मानव जीवन के प्रतिनिधि बन सके हैं । उपन्यास की ताई जैसे पात्रों को नागर जी ने गुण-दोष दोनों से पूर्ण दिखाया है ।

नागर जी के उपन्यासों के पात्रों के नाम ये हैं - "महाकाल" के पाँचु गोपाल मुखर्जी, मोनाई, दयाल, सेठ बाकेमल के सेठ बाकैमल, बूंद और समुद्र में सज्जन, वनकन्या, महिपाल, कर्नल, कल्याणी, शीला स्विंग, ताई, बाबा रामजी दास, "शतरंज के मोहरे" में नवाब गाजी उद्दीन हैदर, नसीरुद्दीन हैदर, बादशाह बेगम, दुलारी, कुदसिया बेगम, "सुहागके नूपुर" में कोवलन, कन्नगी, माधवी, "अमृत और विष" में अरविन्दशंकर, रमेश, सात घूंघटवाला मुखड़ा में बेगम समरू, नवाब समरू, जुआना बेगम, लदमूल, टॉम्स, बशीरखाँ, "एकदा नैमिषारण्ये" में व्यास सोमाहुति भार्गव, इज्या, भारत चन्द्र, प्रज्ञा, नारद, "मानस का हंस" में तुलसीदास, "नाच्यो बहुत गोपाल" में शर्माजी, श्रीमती निर्गुनिया मोहना, "खंजन नयन" में सूरदास, "करवट" में

तक्कुन या वंसीधर टंडन, "अग्निगर्भा" में सीता, रामेश्वर और बिखरे तिनके" में बिल्लू - यों बयालीस पात्र सामान्य और असामान्य चरित्रों में हैं।

बाकी सब गौण पात्र हैं। "महाकाल" के केशवबाबू, पार्वती माँ, शीबू, मंगला, तुलसी, अजीम, नूरुद्दीन, "सेठ बांकेमल" के चौबेजी के पुत्र, "बूंद और समुद्र" के भगुती सुनार, नन्दो, छोटी, बडी, तारा, मनिया, चित्रा राजदान, "शतरंज के मोहरे" में मुन्नाजान, रुस्तम अली, हकीम मेंहदी, दिग्विजय ब्रह्मचारी, नईम, भुलनी, आगामीर और मातादीन, "सुहाग के नूपुर" में पेरियनायकी, वेलम्मा, देवन्ती, नागरत्ना, सेठ मानाइहन, सेठ मासात्तुवान और व्यापारी पानसा, "अमृत और विष" में पुत्तीगुरु, रद्दूसिंह, रानीबाला, खन्ना दंपति, अनवर नवाब, महाबानो, लच्छू, मिस्टर सेन, मिस्टर माथुर, यूसुफ, मिसेज़ बोस, लाला रेवती रमन, बैजू लाला, हाजी नबू बख्श, चौधरी, लाला बैजनाथ, सुमित्रो, ठकुरानी, उमा माथुर, गोपी, श्रीमती बोस, बहीदन बेगम, खोखा मियाँ, माया और कुसुमलता खन्ना, "मानस का हंस" में रत्नावली, बाबा नरहरिदास, मोहिनी, मेघाभगत, कैलासनाथ, तारापति, गणेश्वर, आचार्य शेष सनातन, राजा भगत, गंगाराम, टोडरमल, बटेश्वर मिश्र, सन्त बेनीमाधव, गणपति, बकरीदी काका, रामजियावन, पार्वती अम्मा, पुत्तन महाराज, अयोध्या के महंत, नन्ददास, सूरदास, पण्डित दीनबन्धु पाठक, हिरदे अहीर, रामकली और अब्दुर्रहीम खानखाना, "नाच्यौ बहुत गोपाल" के नब्बू, मसीता राम चाचा, गुल्लन चाची, स्वामी वेदप्रकाशानन्द, मास्टर वसन्तलाल, मास्टर जेवसन, शर्माजी, लक्ष्मी प्रसाद जी, वेदवती, माशूक डेविड और डॉ॰ एण्डेरसन, "खंजन नयन" के अन्धरी धुन्धरी कुन्तो, "करवट" के मुल्लर बाजपेयी, छिदम्मीलाल, पार्किनसन, नैन्सी मालकम, बादशाह जाने आलम पिया, विपिन चन्द्र खन्ना, देशदीपक, कौसल्या,

चम्पकलता और नवीनचन्द्र, "बिखरे तिनके" के सुहागी-सरसुतिया, स्वतंत्र कुमार, सेठ चुन्नीलाल और राज्यमंत्री बबलू - ये नागर जी के उपन्यासों के गौण पात्र हैं ।

इन पात्रों को मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है ।

1. सामान्य पात्र
2. प्रतिनिधि पात्र
3. ऐतिहासिक एवं पौराणिक पात्र
4. प्रगतिशील पात्र
5. हास्य पात्र
6. मनोवैज्ञानिक पात्र
7. यथार्थवादी पात्र
8. आदर्शवादी पात्र

1. सामान्य पात्र

"महाकाल" में मोनाई, "बूंद और समुद्र" में कल्याणी, "शतरंज के मोहरे" में दुलारी, "सात घूंघटवाला मुखड़ा" में बेगम समरू, "एकदा नैमिषारण्ये" में इज्या, भारतचन्द्र, प्रज्ञा, "नाच्यौ बहुत गोपाल" में मोहना, "खंजन नयन" में उन्धो धुन्धरी कुन्तो, "सुहाग के नूपुर में देवन्ती - ये सामान्य पात्र के अन्तर्गत आ जाते हैं ।

मोनाई

मोनाई बनिया नागरजी की लेखन की सशक्त परिणति है। उसके चित्रण में नागर जी को सफलता मिली है । समाज के सामान्य व्यक्ति में पाये जानेवाले गुण मोनाई में भी हैं । लाशों तक को

मेडिकल कालेज में बेचकर वह लाभ कमाना चाहता है । और अपनी फटकारती हुई आत्मा को मोनाई सान्त्वना देता है - "भगवान जी ने अगर इस नये व्यापार में अच्छे पैसे बनवा दिये तो आगे चलकर एक अनाथालय और आसरम भी खुलवाय दूंगा । यही तो धरम की महिमा है ।"[1] स्वार्थसिद्धि और धनलिप्सा को सर्वोपरि माननेवाले व्यक्ति का जीवन्त रूप मोनाई की महाजनवृत्ति में प्रकट हुआ है । मोनाई केवट दीनता, मधुरता और छल-कपट से धनार्जन के नये साधन सोचकर लोगों को अपने स्वार्थ के जाल में फँसाने में सफल होता है । मोनाई इस प्रकार इस उपन्यास का न केवल यथार्थवादी है, अपितु पूरा आदमी है - ऐसा आदमी जिसकी एक नजर जीवन की यथार्थ पर है तो दूसरी दुनियादारी को पहचाननेवाली है ।

<u>कल्याणी</u>

"बूंद और समुद्र" की कल्याणी महिपाल की पत्नी है जो रूढिवादी विचारों की युवती है । लेखक महिपाल के लिए उसके हृदय में स्थान नहीं है । डॉ॰ शीला स्विंग महिपाल की प्रेमिका है । शीला जानती है कि महिपाल विवाहित है और उसकी सन्तान भी है । तो भी वह महिपाल से चिपकी रहती है । महिपाल के पारिवारिक जीवन में शीला अपने को बाधा नहीं बनाती तो भी वह महिपाल से अटूट नाता रखती है । शीला के इस काम को शिक्षित नारियों के व्यभिचार के रूप में विशेषित किया जा सकता है ।

1· महाकाल, पृ॰173

दुलारी

"शतरंज के मोहरे" में दुलारी सेना के एक घुड़सवार के सईस रुस्तम अली की पत्नी है। नसीरुद्दीन के पुत्र मुन्नाजान के पालन-पोषण के लिए वह नियुक्त की जाती है। वह एक चरित्रहीन नवयौवना थी। उसके बदचलन का समाचार पाकर रुस्तम अली उसे घर से निकाल देता है। तभी तो उसे शाही महल की नौकरी मिल गई। अपनी कूटनीति से वह नसीरुद्दीन और उसके पिता गाजी उद्दीन हैदर को अपने चंगुल में कर लेती है और शाही तन्त्र की लगाम अपने हाथ में ले लेती है।

बेगम समरू

"सात घूंघटवाला मुखड़ा" में नवाब समरू की पत्नी बेगम समरू अपने पति के विरुद्ध षड्यन्त्र करती है। प्रेम, विलास और महत्वाकांक्षा से पीड़ित है वह। नवाब समरू की आत्महत्या के बाद वह ली वायस से विवाह कर लेती है। उसकी भी आत्महत्या होने पर विद्रोहियों से गिरफ्तार की जाती है।

इज्या

"एकदा नैमिषारण्ये" में भार्गव सोमाहुति की पत्नी है इज्या। इज्या और भारतचन्द्र-प्रज्ञा का कार्यकलाप उपन्यास के गतिविधान में सहायता पहुँचाता है। उसी प्रकार नारद भी राष्ट्रीय एकता के समर्थक हैं। नारद के प्रकाण्ड पाण्डित्य और चातुर्यपूर्ण नीति से राजा महाराजा प्रभावित है। समाज में पूर्ण प्रतिष्ठा रखनेवाले वे जन-जन के हृदय में अपने प्रवचन के माध्यम से वैष्णव भक्ति का

संचार करता है । प्रारंभ में इज्या भार्गव सोमाहुति की प्रेमिका के रूप में हमारे सामने आती है । उसके व्यक्तित्व में सेवा, सौन्दर्य और ज्ञान का अद्भुत सम्मिश्रण है । रेणुका तीर्थ पर हुए शत्रुओं के आक्रमण के समय इज्या का शौर्य प्रत्यक्ष में आता है । वह पतिव्रता नारी है जो पति के सुख-दुख में अपने को संपूर्ण रूप से समर्पित करती है । अतिथिसेवा और मातृतुल्य ममत्व उसके स्वभाव में लीन है ।

भारतचन्द्र

भारतचन्द्र का एक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व है । उसकी पत्नी प्रज्ञा सौन्दर्य की मूर्ति है । भारतचन्द्र के दंभी व्यक्तित्व को आमूल परिवर्तन लाने का श्रेय प्रज्ञा को है । उसके बारे में भारतचन्द्र का कथन है - "यह मेरे लिए सुमेरु के समान है । कभी यह मेरे लिए प्रकाश ही प्रकाश थी । - सुमेरु के दीर्घ कालीन दिवस जैसी[1] ।"

मोहना

"नाच्यौ बहुत गोपाल" में निर्गुनिया का पति मोहना का एक खास स्थान है । वह एक धीर युवक है । अपने व्यक्तित्व की चमक से वह निर्गुनिया को लेकर भाग जाता है । अपनी बस्ती में उसे लेकर उसे भंगी बना देना[2], अपनी नानी के अधीन उससे सारे घरेलू काम कराके उसे अपने चंगुल में कर डालना आदि आदि कामों में उसकी स्थिर चित्तता ही दीख पड़ती है । मोहना डाकू बन जाता है[3] । डकैती से रुपया देकर निर्गुनिया से वह पाठशाला खुलवाता है, गरीबों की

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, पृ.91
2. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ.76
3. वही, पृ.239

आर्थिक सहायता करता है । गुल्लन चाची के धोखे में पड़कर वह अंग्रेज़ों से मारा जाता है ।

देवन्ती

"सुहाग के नूपुर" में देवन्ती कन्नगी की विश्वस्त दासी है । कोवलन द्वारा निष्कासित किये जाने पर कन्नगी देवन्ती के साथ ही धर्मशाला में शरण पाती है । कन्नगी की सारी पीडा का रहस्य मानाइहन को समझाने का काम देवन्ती करती है । राजपुरुष द्वारा माधवी पकडी जाती है । इसकार्य के पीछे भी देवन्ती की अद्भुत चतुराई ही दिखाई पडती है । वंशनिधि की चाभी हडप लेने का कार्य भी देवन्ती ही कोवलन के कानों में पहुँचाती है । इस प्रकार आपत्ति के दिनों में भी कन्नगी के साथ रहकर वह पाठकों के सन्तोष की अधिकारिणी बन जाती है ।

कुन्तो

"खंजन नयन" में मल्लाहिन आन्करी धुन्धरी कुन्तो अन्धे सूरदास के जीवन में प्रवेश करती है । वह सूरदास के प्रेमनिमन्त्रण करती है तो सूरदास बार बार निर्ममता से उसे ठुकरा देता है । तो भी निराश्रिता कुन्तो अपनी आस्था व श्रद्धा से सूरदास के साथ ही रहती है। मन लगाकर वह सूरदास की सेवा-शुश्रूषा करती है । सूरदास के एकाकी जीवन में अन्धे की लकडी बनकर वह जीती है ।

2. प्रतिनिधि पात्र

अमृतलाल नागर के उपन्यासों के प्रतिनिधि पात्र सच्चरित्र और असत् चरित्र दोनों कोटि के होते हैं। इन असामान्य पात्रों के अन्तर्गत -

1. शोषक वर्ग के प्रतिनिधि
2. बौद्धिक पात्रों के प्रतिनिधि
3. वेश्या वर्ग के प्रतिनिधि
4. पतिव्रताओं की प्रतिनिधि
5. गरीबों के प्रतिनिधि पाये जाते हैं।

1. शोषक वर्ग के प्रतिनिधि

"महाकाल" के शोषक वर्ग के प्रतिनिधि जमीन्दार दयाल शोषण के ताने बाने में बुना हुआ एक सशक्त चरित्र है। नागरजी ने दयाल का चरित्रांकन मोटी मोटी रेखाओं से किया है। "गाँव के मरघट में वह छैला बना घूमता है। उसका अहंकार, राजापन, विलासिता और स्वार्थ अपनी हर प्रतिक्रिया में व्यंग्य उपस्थित करते हैं। एक ओर वह भूखों की भीड पर गोलियाँ चलवाता है, दूसरी ओर मोनाई बनिये को नीचा दिखाने के लिए उनमें चावल बंटवा सकता है, ब्रह्मभोज का आयोजन करवाता है। गाँव में अकाल है, लोग दाने-दाने को मोहताज है और उसके यहाँ शराब के दौर चल रहे हैं। उसके चरित्र के माध्यम से तत्कालीन राजनीतिक षड्यन्त्रोंका पर्दाफाश किया

गया है । यह अकाल प्रकृति जनित नहीं, मनुष्य जनित था जो सत्ताधारियों और पूंजीपतियों के स्वार्थ तले कुचले हुए, रौंदे हुए गरीबों शोषितों का हाहाकार था । सामन्तवादियों की चारित्रिक प्रवृत्तियां, यश और धन लिप्सा, काम लिप्सा उन्हें मदान्ध बनाए हुए थी । अपने लाभ के लिए वह मोनाई से भी विश्वास घात करता है । दयाल और मोनाई के इस संघर्ष के द्वारा लेखक ने लाभ के सन्दर्भ में होनेवाली शोषक वर्ग की आपसी टकराहट को भी गहरी राजनीतिक समझ के साथ चित्रित किया है[1] ।" दयाल के इन शब्दों में वर्गगत ईर्ष्या दिखाई पड़ती है - "बनिये भी कभी राजा हो सकते हैं ? मगर अब कलियुग में तो हो ही रहे हैं । देखो - गान्धी जैसा महात्मा वैश्यों में जन्म लेता है । जर्मनी ने वेद चुरा लिये हमारे नहीं तो आज इस पृथ्वी पर क्षत्रियों का ही चक्रवर्ती साम्राज्य होता[2] ।" दयाल को नेता बनाने की धुन सवार होती है - "कांग्रेस के टिकट पर भी खड़ा हो सकता हूं - मगर उसमें जेल जाना पड़ता है । ..... हिन्दू महा सभा भी ठीक है । नाम का नाम होगा और परम पवित्र सनातन धर्म की रक्षा भी होती रहेगी[3] ।"

2· बौद्धिक वर्ग के प्रतिनिधि पात्र

नागरजी का पहला उपन्यास "महाकाल" का पांचू गोपाल और "अमृत और विष" का अरविन्दशंकर इस वर्ग के प्रतिनिधि हैं ।

पांचू गोपाल

"महाकाल" का सत् चरित्र पांचू गोपाल इस वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है । वह लेखक के अपने विचारों का वाहक है ।

अकाल संबन्धी और युगजीवन संबन्धी मान्यताएं नागर जी ने उसी के माध्यम से व्यक्त की है । उसका चरित्र सबसे अधिक बौद्धिक बन गया है । उसका आदर्शवाद भावुकता और संवेदनशीलता के कारण बौद्धिकता बोझिल नहीं हुई है । उसके सारे विचार उसके अनुभवों का प्रतिबिंब है । पांचू के माध्यम से नागरजी के अपने विचार अभिव्यक्ति पाते हैं । वे एक अध्यापक के लिए योग्य सारे गुणों से संपन्न हैं । अपने विद्यार्थी गणेश के भूख से लड़कर मरने का समाचार सुनकर उनके मन को धक्का लगा । चार दिनों से भूखा रहने पर भी इतना दुख उन्हें नहीं हुआ था । लोगों की भूख मिटाने का कोई काम किये बिना अर्थरहित पोस्टर लगाना आदि व्यक्ति को मार्गभ्रष्ट करने की क्रिया को वह घृणा की दृष्टि से ही देखता था । अपने छात्रों की भलाई चाहनेवाले एक कर्तव्य निरत अध्यापक को पांचू गोपाल में हम देख सकते हैं । पांचू आदर्शों को माननेवाला है । तभी तो अपनी मां का कथन वह याद करता है - "पांचू, घबराना मत बेटा, मुसीबत में ही तो नारायण परीक्षा लेते हैं । उन्हें जब उबारना होता है तो आप आते हैं[1] ।" दुर्भिक्ष के बढ़ जाने पर अपने परिवार को पेट की ज्वाला से बचाने केलिए जमीन्दार का झाड़ूकारी तक कर देने पांचू का मन तैयार है । वह मानता है - "पेटे भरे पर आबरू भी भली लगती है[2] ।" जाति पांति का विचार रखे बिना, सबको विद्या पाने का अधिकार है, यही पांचू का मत था । वह नीची जाति के गणेश को उसके पिता की याचना के अनुसार विद्या देने से वह सहमत होता है । सारा गांव पांचू के खिलाफ उठ खड़ा होता है तो पांचू का बौद्धिक मन कह रहा था - "सबको विद्या पाने का समान अधिकार है[3] ।" पांचू के ज़रिए नागर जी का जातिभेद के प्रति विरोध यहां दिखाई देता है ।

---

1. महाकाल, पृ.14
2. वही, पृ.35
3. वही, पृ.35

पाँचू गोपाल अपने व्यक्तित्व से आदर्शवादी, भावुक तथा संवेदनशील है । आदर्श और यथार्थ की द्वन्द्वात्मक स्थिति में उसके चरित्र का विकास दिखाया गया है । यथार्थ की कड़ुआहट पाँचू गोपाल के आदर्श को चूर चूर कर उसे पलायनवादी बना देती है । गरीबी के कारण पाँचू को अपना अभिमान खो देना पड़ता है । पाँचू अपनी ऊँची मानसिक स्थिति भूलकर मोनाई की खुशामद करता है जिससे अपने परिवार के पालन पोषण में कुछ फायदा मिल जाय । गरीबी से परिवार की रक्षा करने के लिए वह अपना सारा अभिमान खो देता है। चावल मिलने पर ईश्वरीय विचार रखनेवाले पाँचू भगवान की दयालुता पर सन्तोष प्रकट करता है । शोषक वर्ग द्वारा शोषितों का जन्मसिद्ध अधिकार छीन लेते देखकर पाँचू क्षुब्ध होता है । पाँचू की चिन्ता वास्तव में भारत के शोषित वर्ग की चिन्ता है । ज़मीन्दार के पास बैठे हुए अपने सामने मरे पड़े भाग्यहीन व्यक्तियों के लिए पाँचू चिन्तित है ।[1] पाँचू का व्यक्तित्व श्रेष्ठ है । भोला भाला और अपने में दृढ[2] । गरीबों का खून चूसनेवाले जमीन्दार की बात पाँचू के लिए हास्यास्पद है। ब्रिटीश सरकार का पक्ष लेकर गरीबों का गला घोंटनेवाले दयाल से पाँचू का कथन है - "एकता की दुहाई देना भी आजकल का एक फैशन है । चिल्लाता सब है, लेकिन कोई उसे सही तरीके से महसूस नहीं करता[3] ।" स्त्रियों पर के अत्याचार का पाँचू खूब विरोध करता है[4] । स्त्रियों पर क्रुद्ध होनेवाले पुरुषों की चीख सुनकर पाँचू का निष्कर्ष है - "हमें सबका समान अधिकार स्वीकार करना ही होगा । जब तक एक भी स्त्री दासी रहेगी, उसके गर्भ से दास ही उत्पन्न होंगे । दासता जीवन को मृत्यु की जड़ता से बाँध देती है । यह अकाल हमारी दासता का परिणाम है[5] ।"

1· महाकाल, पृ·106-107
2· वही, पृ· 109
3· वही, पृ· 119

इस प्रकार अपनी बुद्धि एवं नैतिकता के कारण सम्पृष्ट गरीबों पर दया रखनेवाले, समाज की अनीति के विरुद्ध शब्द उठानेवाले पाँचू का चित्र नागर जी ने सफलतापूर्वक अंकित किया है । बौद्धिक वर्ग के प्रतिनिधि पाँचू की अहम्मन्यता और आर्थिक परवशता उन्होंने दिखाई है । अपने समाज में सभी लोगों को वह समान रूप से देखना चाहता है। पाँचू जब घर छोड़कर भागता है तो उसे रास्ते में सद्य: जात बच्चा मिलता है । वह उसे लेकर उसका पालन पोषण करने की बात सोचता है । वह कहता है - "हमारा बलिदान, हमारी कर्मण्यता और हमारी क्रान्ति इस बच्चे की दुनिया को इन्सान को रहने योग्य बनायेगी जिसमें अमीर-गरीब न होंगे, रंगभेद न होगा । जातीयता और राष्ट्रीयता न होगी - एक दुनिया एक समाज होगा[1] ।"

नागर जी का यह पाँचू केवल व्यक्ति नहीं, एक वर्ग का प्रतिनिधि है । उसका हर काम एक एक का प्रतिनिधित्व करता है । उसके उद्‌गार उपन्यासकार की जीवनदृष्टि का आभास देता है । अहं को छोड़कर विशाल जगत की रक्षा के लिए पाँचू प्रवेश करता है । पाँचू के चरित्रांकन में अभिव्यक्त मानवतावाद ही नागरजी का अभीष्ट है ।

अरविन्दशंकर

"अमृत और विष" का प्रमुख पात्र अरविन्दशंकर भी इस बौद्धिक वर्ग का है । कथा का आरंभ ही उपन्यासकार अरविन्दशंकर के षष्टिपूर्ति समारोह से करता है । उन्होंने पद्‌मनाभ नामक प्रकाशक से पहले से ही दो हजार रुपये ले लिया हैं । षष्टिपूर्ति समारोह में वे इसलिए भयाक्रान्त हैं कि कहीं पद्‌मनाभ उनका भण्डाफोड न कर दे कि उनन्यास देने का वादा उन्होंने नहीं निभाया है । अरविन्द शंकर की

---

1. महाकाल, पृ.223

मानसिक स्थिति से मध्यवर्गीय भारतीय लेखक की विपन्नावस्था को चित्रित किया है । रानी विक्टोरिया के युग से लेकर 1965 तक की कहानी इसमें दी गई है । अरविन्दशंकर एक समय स्वतंत्रता संग्राम में सेनानी और आज लब्ध प्रतिष्ठ लेखक है । आर्थिक विपन्नता एवं पारिवारिक समस्याएं उनके साहस एवं धैर्य की कमर को तोड चुकी हैं । नौकरी प्राप्त होने पर बडा लड़का विनयशंकर माता-पिता से अलग रहता है । दूसरा लड़का प्रेम विवाह करके शिश्न जीवी हो जाता है । तीसरा ऐ०ए०एस० होकर आत्महत्या कर लेता है । उनकी लड़की एक मुसलमान के प्रेमपाश में पड़कर गर्भवती बन जाती है । और वह मुसलमान पाकिस्तान भाग जाता है । अरविन्द शंकर की चारों सन्तानें आज के समाज का प्रतीक बनकर खड़ी हैं । अपनी सन्तानों से अप्रत्याशित फल पाकर अरविन्दशंकर स्वयं टूट जाता है ।

बेटे की बुरी करनियों से वह घृणा प्रकट करता है । उन्हें अपने में घोर निन्दा होती है । "...... अपने बच्चे की आरती उतारी है और इस कामना से उतारी कि वह मेरा कुलदीपक बने । मेरे उस बेटे का बेटा कुलदीपक बने, जो अपनी पत्नी को छोड़कर स्वार्थवश एक धन-संपन्न औरत का रखैल बन गया है । .... मेरे रोएं रोएं में जहर बुझी सैकडों सुइयां एक साथ चुभ जाती हैं जब यह ख्याल भी मन में आ जाता है ।[1]" लेखक की आर्थिक दुस्थिति और उनकी अवगणना के बारे में नागर जी चिन्तित हैं । लेखक पुरी से निन्दित हो जाने पर अरविन्द शंकर कहता है - "मैं मंत्री या एं०पी० होता, सेठ होता तो पुरी हरगिज मेरी अवज्ञा न करता । एक भारतीय लेखक और वह भी हिन्दी का लेखक उसकी दृष्टि में कौडी मोल का भी नहीं है ।[2]" अरविन्दशंकर के शब्द प्रत्येक रचनाकार के शब्द हैं - "लगता है सारा जीवन खोखला हो गया है, न कुछ दिया

1· अमृत और विष, पृ·215

2· वही, पृ·294

न लिया । मैं सैंतीस अड़तीस छोटी बड़ी किताबें जिन्हें मैं ने पूरी निष्ठा और तन्मयता के साथ रचा, अब मुझे बेकार का श्रम मालूम पड़ती है । जीवन भर देश प्रेम, मानवता, सत्य, न्याय और ईमानदारी को ही भला समझता और समझाता रहा, पर ये सब बातें सारहीन लगती हैं । इनसे न तो वह संसार ही बदला जिसे बदलने की भावना से मेरे मन में उथल पुथल मचकर नये से नये विचार और कल्पनाएं स्वतः स्फूर्त होती रहीं और न मुझे सुख ही मिला[1] ।" प्रत्येक बौद्धिक का जीवन सत्य अरविन्द के माध्यम से नागर जी प्रकट करते हैं - "तनके ठेले पर लदा हुआ यह जीवन का भारी बोझ खींचते खींचते मेरे प्राणों का भूखा अशक्त भैंसा अब बेदम होकर जेठ की चिलचिलाती धूप में तपती सड़क में गिर पड़ा है[2] ।" सभी चिन्ताओं के बीच अरविन्द स्वयं धैर्य धारण करता है । वह कर्तव्योन्मुख होने का आह्वान स्वयं करता है। "आओ अरविन्द, दुनिया के चक्कर छोड़ो, काम में रमो, इसमें सभी प्रकार की समाधियां लग जाती हैं । ...... चेतना अन्तर्मुखी होते ही सचमुच दैवीशक्ति हो जाती है[3] ।"

मध्यवर्ग का साधारण गृहस्थ अरविन्द शंकर का जीवन असन्तोष, विवाद एवं पारिवारिक कटुताओं से पूर्ण है । उनके सम्मुख अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, स्वच्छन्द प्रेम, सेक्स आदि बड़ी बड़ी समस्यायें हैं । बड़ा लड़का भवानी खत्री होकर भी ब्राह्मण युवती उषा से वह प्रेमसंबन्ध स्थापित करके आर्यसमाजी विवाह करता है । समय बीतने पर उनमें अनबन होती है । एम॰ए॰ में अच्छे अंक न मिलने का कारण वह उषा पर आरोपता है । इस समस्या के बारे में

1· अमृत और विष, पृ॰68

2· वही, पृ॰44

3· वही, पृ॰296

अरविन्दशंकर कहता है - "मैं अन्तर्जातीय प्रेमविवाहों के दो दुखान्त प्रकरण देख चुका हूँ । यह अन्तर्जातीय प्रेम, विवाह से पहले रूढियों के प्रति बगावत करके मनुष्य को संकीर्णता से व्यापकता के दायरे में ले जाता है, लेकिन विवाह के बाद यही संकीर्ण जातिगत चेतना पति-पत्नी के बीच कभी बेतुकी और चुभन भरी स्थितियां ला देती हैं[1] ।" अरविन्द शंकर विधवा विवाह का समर्थन करते हैं और उस समय ऐसा करना एक धीर काम मानते हैं - "मैं ने विधवाओं और अन्तर्जातीय विवाहों के प्रति अपने समाज की घोर घृणा देखी है । ऐसे विवाह किसी समय पाप थे, किन्तु आज वे पुण्य हैं । विधवा से विवाह करनेवाला अथवा अन्तर्जातीय प्रेम विवाह करनेवाला युवक अपने आपको किसी हीरो से कम नहीं समझता[2] ।"

आजादी के बाद आये फूट, विलास, व्यभिचार, लूट, डाके, खून आदि देखकर नागर जी को पुरानी बातें याद आती हैं । अरविन्दशंकर कहते हैं - "आज के जीवन में मुझे एक प्रकार का खोखलापन जान पड़ता है । एक ओर जहाँ मुझे अपना आज का भारत पहले से कहीं अधिक उन्नत और वैभवशाली लगता है वहीं मुझे अपने बचपन और जवानी के दिनों से यह देश कहीं अधिक खोया हुआ निष्प्राण और निकम्मा लगता है । मेरे बचपन में सदियों से सोता हुआ राष्ट्र फिर से करवटें बदलने लगा था[3] ।"

अरविन्दशंकर ईश्वर पर विश्वास रखनेवाले हैं । उनका मत है सभी मनुष्य आपत्ति में या अपने प्राणों की रक्षा करने ईश्वर को बुलाते हैं । अरविन्दशंकर के जरिए नागरजी का आस्तिक वाद प्रबल हो उठा है - "यह मानता हूँ कि कभी कभी ऐसे अवसर आते रहते हैं जब

---

1. अमृत और विष, पृ. 94
2. वही, पृ. 610
3. वही, पृ. 185

सहसा ईश्वर या ऐसी ही किसी परमशक्ति का सहारा लेने की इच्छा अनायास ही होने लगती है, अपने आदिम जमाने के संस्कार वश हम उस परम शक्ति को ईश्वर अल्ला कह लेते हैं और न सही तो मुहावरे के तौर पर उसका दूसरा नाम ले लेते हैं। परन्तु आस्तिक की इस बात को हम अपने ढंग से क्यों न कहें कि असहाय डूबते मनुष्य की जूझती जीनेच्छा उस नये चेतना स्तर को पाने केलिए प्रेरित होती है, जिसके ज्ञान प्रकाश में वह अपनी जान बचाने की सूझ भरी राह पा ले[1]।" सभी दृष्टियों से अरविन्दशंकर आज के दारिद्र्यग्रस्त निराशापीड़ित दुखी साहित्यकार का पूर्णतः प्रतिनिधित्व करता है जिसके सामने भगवान के सिवा और कोई चारा नहीं रहता।

इस प्रकार बौद्धिक पात्र पाँचू के चित्रण से गरीबों को भी शिक्षा देने, साधारण जनता पर शासक वर्गों के शोषण को हटाने और निराशा में भी आस्थावान होने का उद्बोधन नागर जी ने किया है। अरविन्दशंकर का चित्रण करके नागर जी यही तो दिखाना चाहते हैं कि लेखक को समाज में खूब मान्यता दें और आर्थिक पराधीनता को दूर कर देने का सफल आयोजन बनावें।

3. वेश्या वर्ग की प्रतिनिधि - माधवी

"सुहाग के नूपुर" के प्रारंभ में ही वेश्या वर्ग की सशक्त प्रतिनिधि बनकर माधवी पाठकों के सामने आती है। वह पेरियनायकी की पोष्यपुत्री और नृत्यकुशला चेलम्मा की शिष्या है। वेश्याओं की दुनिया में खूब महत्व रखनेवाली है। रूप और गुण दोनों ही में वह इतना अद्वितीय है कि पहली दृष्टि में ही कोवलन उस पर

---

1. अमृत और विष, पृ.394

मुग्ध होता है । "माधवी की बडी बडी मीन सी चंचल आँखें क्षण भर के लिए कोवलन के चेहरे पर टिक गईं । कोवलन मुग्ध होकर उन्हें देखने लगा । फिर अपने गले से बडे बडे शुभ्र मोतियों का मूल्यवान हार उतारकर उसने माधवी के गले में डाल दिया और कहा - "मेरे शकुन पंछी की जय हो[1] ।" तब से लेकर कन्नगी से कोवलन को अलग करके उसे अपनाने की बात वह सोचती है । चकवे चकवी को एक पिंजडे में देखकर दासी नागरत्ना से माधवी कहती है - "दम्पति का वियोग ही वेश्या का इष्ट है । कल से इन्हें आमने सामने अलग अलग पिंजरों में देखना चाहती हूं, सुना ?[2]" अपनी नृत्यकला से भरी दरबार को कामदेव का धनुष बनकर वह रहती है । पेरियनायकी के आशीर्वाद की तरह ही माधवी चिरकाल तक पतियों के गले का मोती और पत्नियों की आँख का आंसू बनी रही । माधवी अपनी स्वमाता की खोज कर रही थी । वह कुलीना होकर कोवलन की परिणीता बनना चाहती है। वह चेलम्मा से कहती है "कितना अच्छा होता मौसी और हम इस विपत्ति में न पडकर कुलीनों के समान ही जीवन का व्यवहार कर पाती[3]"। माधवी जानती है कि दुनिया में किसी भी वेश्या को कोई भी स्वीकार नहीं करता । इसलिए वह कोवलन से सुहाग के नूपुर लेना चाहती है। सुहाग के नूपुर के न मिलने पर माधवी अपने प्रेमी कोवलन को "कामी कुत्ता कहकर हवेली से भगा देती है । माधवी नारी के समस्त अधिकारों को प्राप्त करने केलिए वह हमेशा तडपती रहती है । कावेरी नदी की उस भयंकर बाढ के समय माधवी एक बौद्ध शिबिर में शरण लेती है । उस समय भी नारी के अधिकार और प्रतिष्ठा के लिए रोती माधवी को हम देखते हैं । "पुरुष जाति के स्वार्थ और दंभभरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है । उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्द्धांग नारी जाति पीडित है .... नारी के रूप में न्याय को

---

1. सुहाग के नूपुर, पृ.16
2. वही, पृ.34
3. वही, पृ.40

रहा है महाकवि । उसके आँसुओं में अग्निप्रलय भी समाई है और जलप्रलय भी[1] ।"

माधवी की यह माँग पुरुष सत्तात्मक समाज के लिए एक ललकार है जो पत्नी से सन्तान और वेश्या से मनोरंजन प्राप्त करके दोनों को अपने अधीन रखता है ।

4. पतिव्रताओं की प्रतिनिधि - कन्नगी

भारतीय संस्कृति का प्रतीक कन्नगी मानाइहन चेट्टियार की इकलौती बेटी है । उसका चरित्र आदर्श पतिव्रता का चरित्र है । अपने पति के प्रति उसका संपूर्ण समर्पण किसी भी भारतीय नारी केलिए अनुकरणीय है । पति से अपमानित और प्रताड़ित होने पर भी वह उसे दिल से प्रेम करती है । समाज से वह न्याय माँगती है । प्रतिकूल अवस्थाओं को झेलते हुए अपने धैर्य और त्याग का परिचय वह देती है । सुहागरात के दिन ही कोवलन उसे अपनी प्रेमिका वेश्या माधवी के पास ले जाता है । घुंघरू बाँधकर नाचने केलिए माधवी कहती है तो कितने शान्त भाव से कन्नगी उसका जवाब देती है - "बहन, मेरे देवतुल्य पतिकुल ने सुहाग के नूपुरों से मेरे पैरों को बाँध दिया है । वे घुंघरू तुम्हारे ही पैरों में शोभा पायेंगे[2] ।" मामात्तुवान के शब्दों में पतिव्रता कन्नगी का चरित्र और भी स्पष्ट हुआ है - "बेटी, तुम्हारा शील ही तुम्हारे पितृकुल की यशोगाथा गा रहा है[3] ।" कोवलन भी उसके चरित्र के प्रति प्रभाववान है - "तुम्हारी निष्ठा, तुम्हारे गुण बरबस मन पर प्रभाव डालते हैं । मेरे कुल की सारी संपत्ति से भी अधिक तुम्हारे गुण मूल्यवान हैं । आश्चर्य है कन्नगी मेरे जैसा दर्पयुक्त पुरुष भी तुम्हारा

---

1. सुहाग के नूपुर, पृ.95
2. वही, पृ.95
3. वही, पृ.101

आदर करता है, तुम्हें अपने से बडा मानता है[1]।" अपनी हवेली में आकर अधिकार स्थापित करके रहनेवाली माधवी और उसकी पुत्री मणिमेखला की सेवा-शुश्रूषा में कन्नगी लगी रहती है। सारी संपत्ति लूट जाने पर भी कन्नगी कोवलन से कोई झगडा नहीं करती। निर्दय रूप से पीटकर निकालने पर भी कन्नगी कुछ भी कहे बिना यह सब वह सह लेती है। उस समय भी वंशवृक्ष की चाभी और सुहाग के नूपुर इन दोनों को बहुत सूक्ष्म भावों से वह रख लेती है। आपत्ति और संकट के दिनों में भी वह अपने घर लौट नहीं जाती। उसका कथन है - "इस समय पीहर जाकर मैं श्वसुरकुल को कदापि न लजाऊँगी[2]।" अपने कुल की मर्यादा को बनाये रखने की चिन्ता उसमें हम अटल रूप में पाते हैं। सुहाग के नूपुर न देने पर तमाचा खाने पर भी वह कोवलन को नहीं धिक्कारती। शान्तभाव से पतिभक्ता बुद्धिमती कन्नगी उसे समझाती है - "मैं धर्म से विवश हूँ, नहीं तो इतनी सी बात केलिए आप को बार बार आग्रह न करना पड़ता। हाँ, आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राण अर्पित कर दूँगी। तब इस सोने का मनमाना उपयोग कर लीजिएगा[3]।" इन नूपुरों को वह अपने पति की प्रतिष्ठा का मूलसाधन मानती है। वह याद दिलाती है। "ये नूपुर आप की प्रतिष्ठा के प्रतीक हैं स्वामी, विलास के नहीं[4]।" कन्नगी भारत की संस्कृति को बनाये रखनेवाली नारियों में सुवर्ण लिपियों में अंकित हो जाएगी। माधवी से भगाए हुए कोवलन निराश्रित एवं दुःखी बनकर पतितावस्था में पहुँचते हैं तो कन्नगी उसे आश्रय और बल देती हुई अपने नूपुर उसे समर्पित कर देती है - "अप्पा मेरे पैरों से लक्ष्मी को बांध गये हैं। इन नूपुरों को बेचिये, नया जीवन आरंभ करने केलिए इनसे पर्याप्त धन मिल जाएगा[5]।" कन्नगी का नूपुर बेचते हुए

---

1. सुहाग के नूपुर, पृ.143
2. वही
3. वही, पृ.212
4. वही, पृ.240
5. वही, पृ.239

कोवलन को महारानी के नूपुर को चुराने के अपराध में मृत्यु दंड दिया जाता है । सती साध्वी कन्नगी आवेशपूर्ण स्वर में अपने पति के प्राणों के लिए आक्रोश करती है - समस्त लाज-संकोच को तोड़कर वह न्याय मांगती है - "छोड दो मेरे पति को । छोड दो, वे चोर नहीं हैं । पाण्ड्य राजा के यहां अन्याय हो रहा है, निर्दोष को चोर कहकर उसे सूली दी जा रही है । ऐसे अन्यायी राजा का शीघ्र ही अन्त होगा । उसकी रानी के पैरों के सुहाग के नूपुर सदा के लिए उतर जाएंगे ।[1]" वह राजा से अपने पति के जीवन की रक्षा ही नहीं सम्मान भी प्राप्त करती है । स्वयं मधुरा के महाराज द्वारा कन्नगी के लिए कहे गये वचन उसके सतीत्व को पूर्ण पुरस्कार दे देते हैं - "सती ही अपने पुरुष को बल प्रदान कर सकती है क्योंकि वह द्विविधा से रहित होती है[2] ।" नागर जी ने कन्नगी के चरित्र को आदर्श रेखाओं से अंकित किया है । कन्नगी का एकनिष्ठ प्रेम, वर्षों का तप सजग और सजीव हो गया है ।

5· गरीबों की प्रतिनिधि - निर्गुनिया

नागर जी के सामाजिक उपन्यास "नाच्यो बहुत गोपाल" की महत्वपूर्ण पात्र एवं उपन्यास की नायिका निर्गुनिया उच्चकुलजाता है । उचित पालन पोषण और योग्य वर से विवाह न मिलने पर अपने ब्राह्मण कुल की चिन्ता किये बिना मेहतर मोहना के साथ वह भाग जाती है । निर्गुन को पाकर मोहना अपने को भाग्यवान समझता था - "कायिक मानसिक तृप्ति, आनन्द और स्फूर्तिदायी क्षणों में मोहना के लिए अनेक सुख सिमटे थे - "वह एक सुन्दरी को भोग रहा है । वह एक ऐसे ऊंचे कुल की स्त्री को भोग रहा है जिसे उसके समान हीनकुलजन्मा

1· सुहाग के नूपुर, पृ·262

2· वही, पृ·214

व्यक्ति पाने की कल्पना भी नहीं कर सकता । उसका गर्व भरा आनन्द तृप्ति के चरम बिन्दु पर पहुँच गया है ।[1]" सास के घर की प्रतिकूल परिस्थितियों को झेलने का निश्चय वह करती है । सभी डाँट-फटकारों और लात घूसों के सामने वह चुप रहती है । जीवन के इस कटु सत्य के बीच कभी कभी उसका ब्राह्मण संस्कार जाग उठता है - "उसकी और मोहना की क्या बराबरी ? वह मेहतर, वह ब्राह्मणी । परंपरागत मान्यताओं के अनुसार वह नीच तम, वह ऊंचतम । पर अब तो पासा पलट चुका है । समाज के उच्चतम तीन वर्णों की पूजनीया श्रीमती निर्गुनिया इस समय अपने भाग्य और अपने ही मन से एक हीन जन्मा, हीन कर्मा की वेश्या है ।[2]" अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में निर्गुनिया वहाँ से भागकर वेश्याओं से जा मिलने तक की सोचती है । निर्गुन का मन भी उसे कुछ सुना रहा था । यहाँ से भाग....भाग.... भाग । लेकिन कहाँ भागूं, कैसे भागूं ? पुराने बहुत से किस्से सुने थे कि बाम्हन ठाकुरों की बहुत सी लडकियाँ भागकर रंडियों के जाल में फँस गयीं । मैं भी यहाँ से भागकर किसी तरह किसी रंडी के यहाँ पहुँच जाऊं । जी चाहे मुझे कोई मुसलमान बना ले, ईसाई बना ले, चाहे कैसे रहूँगी पर इस मेहतरपने के नरक से तो उबर जाऊँगी ।[3]" वह विवश होकर साहस के साथ परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने का प्रयत्न करती है । मेहतरानी बनकर वह अपनी जाति को ब्राह्मण जाति से भी ऊंचा मानती है - "अपने अपनी बात में मुझे और मेहतर जात को अलग क्यों कर दिया बाबू जी । अब तो मैं मेहतर ही हूँ और आप लोगों की जात से अपनी जात को ऊँचा समझती हूँ ।[4]" पूरी निष्ठा के साथ सारी घृणा को छोड़कर वह अपने को संपूर्ण रूप में मेहतर जाति को समर्पण करती है - "बनी तो अब पूरी बनकर दिखला देगी । उसके

---

1. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ.80
2. वही, पृ.90
3. वही, पृ.85
4. वही, पृ.86

मन में उस काम के प्रति घृणा नहीं, गन्ध नहीं, भार नहीं।[1]" एक पुत्री की माँ बन जाने पर निर्गुनिया पूर्णतया मेहतरानी बन चुकी है। वह बडे आत्मविश्वास के साथ कहती है - "पाप, पाप, पाप। मैं ने कोई पाप नहीं किया। ये मेरी बेटी पाप की नहीं, अपने बाप की है और अब तो सारी दुनिया यह जान गई है कि निर्गुन पण्डिताइन निर्गुनिया मेहतरानी बन गई।[2]" एक मैदानी नदी की भाँति नानाविध बाधाओं से टकराती हुई वह अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती है। उसके जीवन में कई टकराव आते हैं। मोहना द्वारा डेविड की हत्या होने पर निर्गुनिया को उससे अलग जाना पडता है। मोहना पुलीस की दृष्टि से दूर रहता है तो दारोगा बसन्तलाल से वह सताई जाती है। किन्तु निर्गुनिया की आँच प्रचण्ड होकर धधकने लगती है। लेकिन अपने बुढापे में भी वह अपना विनय भाव नहीं छोडती। दूसरों को अपने से बडा मानने में वह हिचकती नहीं। लेखक की पत्नी के पैर छूकर वह अपने को नम्र साबित करती कहती है - "बडा कोई उमर से नहीं होता, अपने भीतर के तेज से होता है। आप मुझसे बडी हैं।[3]" निर्गुनिया का बेटा निर्गुन मोहन भी अपनी माता के चरित्र से प्रभावित है। वह कहता है - "हमारी मदर भी साहब, बडी तपस्विनी महिला है, उन्होंने मुझे और मेरी सिस्टर को ऐसी लगन से पढाया लिखाया कि क्या कहूँ। आप कभी कभी भूखी सो जाती थीं, लेकिन हम लोगों को राजकुमारों की तरह से रखा - एक्जैक्टली लाइक ए प्रिंस, मैं आप से सच कहता हूँ, शी ईज़ ए ग्रेट वूमन। मैं ने अपनी तपस्विनी माँ से ही स्वाभिमान प्राप्त किया है।[4]"

---

1. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ.300
2. वही, पृ.263
3. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ.29
4. वही, पृ.36

कठोर वातावरण के बीच जीती हुई निर्गुनिया में एक क्रान्तिकारी विकास हुआ । उसने विषम परिस्थितियों से साहसपूर्वक निपटने की अद्भुत क्षमता उसमें दीख पड़ती है । यों हम देखते हैं कि नागर जी ने निर्गुनिया में एक तेजस्वी नारी को - उच्चकुल के गरीबों की प्रतिनिधि को - पाठकों के सामने दिखाया है जिसका प्रतिरूप हिन्दी उपन्यास में मिलना दुर्लभ है । यह नागर जी की अभूतपूर्व उपलब्धि है ।

3. <u>ऐतिहासिक एवं पौराणिक पात्र</u>

<u>पौराणिक पात्र</u>

"एकदा नैमिषारण्ये" का मुख्य पात्र है भार्गव सोमाहुति । वह परम गंभीर, संयमी तथा बुद्धिमान व्यक्ति है । अपने ज्ञान व व्यक्तित्व के कारण अपने सभी समकालीन राजाओं द्वारा वह समादृत है । अपनी पत्नी की मृत्यु से वह व्यथित हुआ किन्तु विक्षिप्त नहीं हुआ । जीवन के प्रारंभकाल में भृगुवत्स द्वारा उन्हें कष्ट होता है तो भी विवाह के बाद जीवन में सफलता ही उन्हें मिली है । वह समस्त भारत को एक राष्ट्र बनाने के विचार से उसे एक विश्वास में बाँध देना चाहता है । इस उद्देश्य से वह उस समय में उपलब्ध सभी संप्रदायों को नैमिष में एकत्र करता है और सभी कथाएं सुनी जाती हैं । इन व्याख्याओं से वह एक लाख श्लोकवाले महाभारत काव्य की रचना करता है । उसके द्वारा सभी धर्मों एवं विश्वासों का समन्वय दिखाया गया । मानव मात्र के लौकिक जीवन को सुख संपन्न बनाने केलिए एक विचार-व्यवस्था प्रस्तुत कर दी जाती है । जिसे कर्मयोग या ज्ञानयोग नाम दिया जाता है । सोमाहुति भार्गव विश्वास करते हैं कि इस वैचारिक एकता से राष्ट्रीय एकता भी आ जाएगी । इस प्रकार भारत

की भावात्मक एकता के सफल संघाटक और कर्मवीर के रूप में वे विख्यात बन गये हैं ।

ऐतिहासिक पात्र

नागर जी के "मानस का हंस" का नायक तुलसीदास भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करनेवाला ऐतिहासिक पात्र है । वह नागरजी के कथापात्रों में एक महत्वपूर्ण कडी है । मानसरूपी सरोवर में नीर क्षीर विवेकी तुलसीदास रूपी हंस राम तक पहुँचना चाहता है । अपने मार्ग की लहर रूपी कठिनाइयों को झेलते हुए वह अभीष्ट राम को प्राप्त कर लेता है । भीख मांगने के अपमान से थकित होकर रामबोला ने पार्वती अम्मा से कहा - "हमको भीख मांगना अच्छा नहीं लगता है अम्मा । द्वारे द्वारे घिघियाओ, गिडगिडाओ, कोई सुने, कोई न सुने गाली दे । यह रोज रोज का दुख हम से सहा नहीं जाता है।[1]" महन शक्ति, साहस और परिश्रम से वह दुखों के पहाड को धकेल देता है । बालजीवन से अनाथ और दरिद्र होने के कारण पीडा झेलने और दृढ होने की क्षमता उसमें पैदा हुई । आत्म संयम, धैर्य और स्वाभिमान उसमें आ गया । कष्टताएं भोगने पर भी तुलसी दीन नहीं था । मन्दिर में चढाई गई खीचडी से वह अपना निर्वाह करता है । आमन्त्रित न किये जाने पर वह मन्दिर में तैयार किये भोज में सम्मिलित नहीं होता । वह कहता है - "बिना बुलाए हम किसी के घर क्यों जाएं । राजा होंगे तो अपने घर के होंगे । हमारे राजा रामचन्द्र से बडे तो हैं नहीं[2] ।" फूलों को खिले देखकर उन फूलों में वह राम की सुन्दरता देखता है । बाबा नरहरिदास से राम का रूप समझकर सभी कष्टताओं को झेलकर ईश्वर को देखने का प्रयास

1. मानस का हंस, पृ.52

2. वही, पृ.65

करता है । जिज्ञासा और दृढता उसमें निहित गुण थे । छात्रों से शर्त करके अमावास्या की रात में श्मशानस्थित शिवमन्दिर में शंखनाद करके भूतप्रेतों को वश में कर दिखलाता है । ईश्वर के प्रति अटूट आस्था ने इसकी सहायता दी । अगाध आस्था, अटूट विश्वास और साहस भय को दूर करता है । अध्ययन के बाद पैतृक व्यवसाय कथावाचन और ज्योतिष विद्या को व्यावसायिक वृत्ति के रूप में उन्होंने अपनाया । सभी को प्रभावित करनेवाली कथावाचनशैली से ग्रामों में ख्याति फैल गई । उनके मधुर और ओजस्वी स्वर से विद्वद्वृन्द भी आकृष्ट थे । "नारायण भट्ट जैसे उद्भट और परमप्रतिष्ठित विद्वान के लिए काशी के कवि समाज में एक नया चेहरा कोई विशेष आकर्षण नहीं रखता था । किन्तु तुलसी के स्वर और काव्य प्रतिभा ने उन्हें क्रमशः अपनी ओर खींच लिया [1] ।" प्रवचनपटुता के साथ अध्यापन कला में भी वे निपुण थे । शेष सनातन की पाठशाला से अध्ययन समाप्त करके अध्यापन आरंभ कर दिया - "विद्यार्थी भी पण्डित तुलसीदास की अध्यापनकला पर मुग्ध रहते हैं [2] ।" वे जनप्रिय होने के साथ साथ छात्र प्रिय भी थे । ज्योतिष विद्या में वे निपुण थे । उनका भविष्य कथन सच्चा होता था। मुगल पठानों से बन्दी बनाये जाने पर ज्योतिषविद्या के कारण उन्हें छुटकारा मिला । तुलसी के ज्योतिष होने के और उनके उज्वल भविष्य के बारे में मुगलों के "बहुत बडे नजूमी" अफ्ताब मिर्जा कहते हैं - "यकीनन यह जवान अपने फन में माहिर है । इसकी पेशानी देखकर मैं यह सोचता हूं कि यह नजूमी भी अकबरशाह की तरह ही दुनिया में कुछ कर गुजरने केलिए ही आया है । एक दिन सारी दुनिया इसकी कदमें चूमेगी और एक मानी में यह अकबर शाह से ज्यादा, बडी सलतनत का मालिक बनेगा [3] ।"

---

1. मानस का हंस, पृ.388
2. वही, पृ.131
3. वही, पृ.203

जन्म पत्रिकाएं बनवाने बहुत दूर से लोग आते थे। स्नेह संबन्ध का निर्वाह करने में वे अद्वितीय थे। पांच वर्ष का बालक तुलसी अपनी पालनहारी और रोगाक्रान्त पार्वती अम्मा को प्रलयवत वर्षा से बचाता है। तुलसी के बारे में उनका एक मित्र गंगाराम कहता है "वह मेरा खरा मित्र और भाई है; कलिकाल में ऐसी त्यागभावना कम ही देखने को मिलती है[1]।" अपने अपमान किये गंगेश्वर और रत्नावली की भलाई चाहनेवाले तुलसी साक्षात् श्रीराम का प्रतिरूप मालूम होता है। "बजरंग, मेरी रत्नावली को सुमति दो। गंगेश्वर की ईर्ष्या के उत्तर में मेरी प्रतिष्ठा को और बढा दो[2]।" दाम्पत्य जीवन में नर-नारी का प्राधान्य तुलसीदास रत्नावली को समझाते हैं - नर-नारी एक दूसरे के पूरक और भाग्य विधाता हैं, वे परस्पर की रीझ और खीझ में अपने अपने अभावों और उनकी पूर्ति के लिए ही पूर्व कर्मानुसार मिलते हैं[3]।" वे कर्मफल में विश्वास करते हैं। भगवान के बडे ही आराधक हैं। बेनी माधव के शब्दों में तुलसीदास की महानता की प्रशंसा नागर जी करते हैं - "कलिकाल में यह त्याग भावना कम ही देखने को मिलती है। आप दोनों ही मित्र धन्य हैं[4]।" हार-जीत की चिन्ता किये बिना जीवन भर परिश्रम करते रहने का उद्बोधन तुलसीदास देते हैं - "हार-जीत की चिन्ता छोडो वत्स, चावल का दाना मुख में दबाकर बार बार दीवार पर चढने और गिरनेवाली चींटी के समान अपराजेय उत्साही बनो, जो सात बार गिरकर भी अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर ही मानी। पछतावे से बुरा और कोई शत्रु नहीं होता। पछतावे में बिताये जाने वाले अपने अनमोल क्षणों को राम-धुन से भर दो[5]।"

---

1. मानस का हंस, पृ.281
2. वही, पृ.225
3. वही, पृ.228
4. वही, पृ.244
5. वही, पृ.276

तुलसीदास जाति-पाँति को नहीं मानते । कहीं से आये भिखारी को स्वीकार करके उसे खिलाने पर लोगों में कहा-सुनी हुई तो तुलसीदास उन्हें समझाते कहते हैं - "भूख और निराशा की ऐसी स्थिति में तुम जरा अपनी कल्पना करके देखो, सुखदीन । जाति-पाँति, वर्ण-वर्ग आदि सब कुछ अपनी जगह पर ठीक है, पर एक जगह मनुष्य केवल मनुष्य होता है । घाट घाट में एक ही राम रमते हैं । अभी सब जने चुप रहो ।"[1] सगुण-निर्गुण का भेद छोड़कर एकमात्र ईश्वर पर विश्वास अर्पण करने को वे कहते हैं - "मैं निर्गुण का विरोध कभी नहीं करता । सगुण-निर्गुण दोनों एक ही ब्रह्म के दो स्वरूप हैं । वे अकथ, अगाध, अनादि और अनूप हैं । मैं तो केवल उन लोगों का विरोध करता हूँ जो कबीर साहब के वचनों की आड लेकर समाज की धार्मिक आस्थाओं के निकम्मे आलोचक हैं । ...... ऐसे निकम्मे आलोचक लोक-देश समाज के शत्रु होते हैं । मैं इसका विरोध करता हूँ[2] ।" तुलसीदास राम के परम भक्त हैं । एक सच्चे भक्त के सारे गुण उनमें निहित हैं । प्रतिष्ठा पाने की लालसा में भक्ति भाव कुछ कम हो जाता है तो तुलसी अपने को धिक्कारते कहते हैं - "रे तुलसी, प्रतिष्ठा का दशानन तेरी भक्ति को हर ले गया है । दम्भी रावण, समाज में प्रतिष्ठा पाने की लालसा तुझे क्यों सताती है[3] ?" विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के प्रति तुलसी का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है । यद्यपि वे रामभक्त थे तो भी अन्य देवताओं के प्रति श्रद्धा रखते थे । कृष्ण मंदिर में गोस्वामीपद ग्रहण करने के बाद वे कृष्ण की आरती उतारते हैं । दर्शनार्थियों को कृष्णभक्ति की महिमा बताते हैं । वे उदार मानवता-वादी दृष्टिकोण के पक्षपाती हैं । इसलिए भूखे ब्रह्म हत्यारे चमार को

---

1. मानस का हंस, पृ.325
2. वही, पृ.332
3. वही, पृ.371

आश्रय देकर समस्त ब्राह्मण वर्ग से विरोध मोल लेने को नहीं हिचकिचाते। काशी की जनता में तुलसी के इस कृत्य की बडी आलोचना हुई। लोकप्रियता और विरोध सहिष्णुता उनके विशेष गुण हैं। तुलसी के विरोध में षड्यन्त्र करनेवाले रविदत्तशास्त्री तथा बटेश्वर मिश्र विरोधियों के प्रति भी तुलसी के मन में विरोध नहीं है। उनसे दयाभाव ही वे रखते हैं। रविदत्त की तांत्रिक क्रियाओं पर तुलसी के भक्त उनकी भर्त्सना करते हैं तो तुलसी शान्त करने केलिए कहते हैं। तुलसी का चरित्र पूर्णत: राममय है। मोहिनी के सौन्दर्य पर मुग्ध तुलसी के मनमें राम काम द्वन्द्व छिड गया। उनका स्वगत चिन्तन ध्यान देने योग्य है, "तुलसी तेरी बदनामी फैल चुकी है। दुनिया कहने लगी कि तू राम भक्त नहीं है। छि: छि: क्या मोहिनी सचमुच मुझे जान बूझकर अपने आकर्षण पाश में फँसाना चाहती है? वह चाहे या न चाहे तू तो फँस ही गया।" "नहीं, मैं नहीं फँसा। मेरा मन अब भी रामचरण लीन है। मैं यह कभी नहीं सह पाऊँगा कि लोग बाग मुझ पर अंगुली उठाकर कहें कि यह किसी अन्य का दास है। यह ग्लानि, यह पश्चात्ताप मैं कदापि नहीं सह पाऊँगा। हे राम! मुझे इस पाप पंक में पड़ने से बचाओ। राम, मैं तुम्हारा हूँ और किसी का नहीं[1]।" तुलसीदास की आस्था देखने योग्य है। "आज के हारे-थके, हर तरह से टूटे-बुझे हुए जनजीवन को इस आस्था से भर देना चाहता हूँ कि न्याय, धर्म, त्याग और शील आज भी इस जगत में विद्यमान है। कोई चिनगारी को छोटा न समझे, वह किसी भी समय अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर निश्चय ही महाज्वाला बन जाएगी। राम थे, राम हैं, राम सदा रहेंगे - और इस पृथ्वी पर एक दिन रामराज्य आकर रहेगा[2]।" कर्म करने पर बल देते हुए वे कहते हैं - अपने संकल्प और कर्म को सदा तौलते रहना मेरा धर्म है[3]।" अपने कर्तव्य कर्म के प्रति वे जागरूक हैं।

---

1. मानस का हंस, पृ. 130
2. वही, पृ. 361
3. वही, पृ. 187

कर्तव्य के प्रति अपनी आस्था वे व्यक्त करते हैं[1]। इस प्रकार हम देखते हैं कि नागर जी की महनीय सृष्टि तुलसीदास अपनी आत्मीयता में खरा उतरा है। तुलसीदास के चरित्र के द्वारा सर्वधर्मसमन्वय की नागर जी की भावना प्रस्फुट हो गई है।

सूरदास

ईश्वर पर अटल भक्ति रखनेवाले सूरदास को नागर जी ने अपने "खंजन नयन" का नायक बनाया है। आस्था की भावना सूरदास में अधिक मात्रा में है। पठानों के आक्रमण से भयभीत अयोध्या-वासियों को धैर्य दिलाते हुए सूरदास कहते हैं - "होनी को कोई टाल नहीं सकता। यातनाएं मैं ने भी सही हैं पर रामनाम के दो अक्षरों का बल मेरे मन को कभी दुर्बल नहीं बना सका। यह रामनाम के अंक बडे अद्भुत हैं। "रा" और "म" धर्म रूपी अंकुर के दो दल हैं। मोक्षरूपी देवी के कानों के कुण्डल हैं। अज्ञान का अन्धेरा दूर करने केलिए यह दो अक्षर सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाशित हैं। इन पर भरोसा करो। यही भवमय का नाश करेंगे। तुम्हें आस्था प्रदान करेंगे[2]।" एकेश्वर का समर्थक सूरदास अल्ला का समर्थन करनेवालों से कहते हैं - "तुम उनके अल्ला और अपने राम को अलग अलग क्यों मानते हो? ब्रह्म एक है, नाम अनेक है, विश्वास ही जीतता या हारता है[3]।" संगठित बल की ज़रूरत पर सूरदास विश्वास करते हैं। वे मुसलमानों की विजय का कारण भी यह बताते हैं - "वह जीने मरने के लिए कटिबद्ध होकर यहाँ आये हैं। संगठित हैं। हमारे आप के समान असंगठित नहीं हैं। हमारे यहाँ तो व्यक्ति-व्यक्ति का स्वार्थ इतना अलग हो

---

1. मानस का हंस, पृ.188
2. खंजन नयन, पृ.134
3. वही, पृ.134

गया है कि हम कहीं मिल ही नहीं पाते । इसलिए जी भी नहीं पाते ।[1]" तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति पर सूरदास दृष्टि डालते है । वे कहते हैं - ईश्वर पर विश्वास रखनेवाले हैं, हालावादी भाव रखनेवाले हैं । परपीडन करके ईश्वर को प्रसन्न करने का मन रखनेवाले हैं, कामी, कुटिल और कुचाली हैं । भक्तगण भी है । सूरदास के मत में दुनिया बुरी और सुन्दर दोनों है । "मथुरा में केशव देव की जन्मभूमि में एक लालाजी मिले थे, एक यहाँ श्रीराम जन्म भूमि में मिले । दर्शन करने नित्य जाएगी पर राम केशव में आस्था "है और नहीं है" की बालुही स्थिति सी अस्थिर है । एक कहता है ब्रह्म नहीं है, ऋण लो और घी पिओ । एक यह है गयादीन राम की चिन्ता छोड्कर अपनी पत्नी को यह दिखलाने के लिए उतावला है कि मैं अभी जवान हूं, तू ही बुढिया होकर मेरे योग्य नहीं रही । कुद्बुद्दी मौलवी समझता है कि काफिर पर अत्याचार करके वह अपने ईश्वरको प्रसन्न कर रहा है जैसे ईश्वर एक न होकर अनेक हों और परपीडन ही उसका धर्म हो[2] ।" नागर जी के सूरदास के बारे में रामविलास शर्मा का पत्र नागर जी के नाम पर भेजा गया जिसमें वे कहते हैं - "तुम्हारे सूरस्वामी की भक्ति धर्म के ठेकेदारों से कतराती नहीं, उनसे टकराती है और इस्लामी कट्टरता के विरोधी सूफियों को साथ लेकर चलती है, इतिहास की यह परख सही है । सूरसागर का रचयितारूप इस गन्ध स्पर्श शब्द के संसार को प्यार करनेवाला, व्रज की लोक-संस्कृति का श्रेष्ठ प्रतिनिधि कवि हैं । तुम्हारे सूरस्वामी अतिशय अन्तर्मुखी हैं, उनके अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण में आवृत्ति और प्रसार अधिक, गहराई कम हैं । पन्द्रहवें अध्याय तक कथा सधी हुई गति से चलती है, उसके बाद छलांग लगाती और पाठक हांफने लगता है । सूरस्वामी अपने में पूर्ण है और पार्श्वभूमि में कन्तो और नागराज से लेकर गुण्डों और पण्डों तक सभी लघुमात्र सजीव हैं, उसके साथ तुम्हारी मथुरा, काशी, अजुध्या सजीव है[3] ।"

---

1. खंजन नयन, पृ.135
2. वही, पृ.137
3. रामविलास शर्मा का पत्र नागर के नाम पर "दस्तावेज़-30 जनवरी "86

आस्था और विश्वास की आवश्यकता पर सूरदास ने बल दिया है । सूरस्वामी एक स्थल पर लालाजी से कहते हैं -
"विश्वास लाख हथौडी की चोट से भीनहीं टूटता लाला जी ।
नीलकंठ के समान विष पान करके भी विश्वास सदा अजर अमर है -
विश्वास से भक्ति उत्पन्न होती है[1] ।"

भगवान में सच्ची भक्ति रखनेवाले एक सजीव पात्र के रूप में सूरदास को नागर जी ने चित्रित किया है और उस प्रकार भारत की धार्मिक संस्कृति का वह प्रतीक भी बन गया है।

4. प्रगतिशील पात्र

नागर जी के "बूंद और समुद्र" का सज्जन और वनकन्या, अमृत और विष का रमेश, "करवट" के तनकुन और देशदीपक वीर नायकों के रूप में प्रगतिशील विचारों का वाहक बनकर सामने आये हैं ।

सज्जन

"बूंद और समुद्र" का नायक सज्जन एक संपन्न चित्रकार है जो "मुहल्ला लाइफ स्टडी करने ताई का किरायेदार बनकर आया है । वनकन्या से मिलने पर उसका जीवन बदल जाता है । वनकन्या के साथ वह समाज सेवा करने लगता है । आर्थिक अभाव न रखने के साथ प्रभावशाली व्यक्तित्व का भी वह धनी है । अच्छाइयों और बुराइयों से मिला जुला जीवन है सज्जन का । वह परोपकारी और विनयी है ।

---

1. खंजन नयन, पृ.66

संपन्नता के कारण नारीविषयक दुर्बलताएं भी उसमें हैं । लेकिन अपनी माता से प्राप्त उच्च संस्कारों के कारण नारी के भंवर में घूमते हुए भी हर बुराई पर विजय पाता है । महिपाल की ईर्ष्या देखकर सज्जन को स्वयं संयत रहने की शक्ति मिलती है, सभी सेवाकार्य में बडे जोश के साथ वह कार्यरत होता है । विवाह के क्षेत्र में सज्जन मुक्त प्रेम का समर्थन करनेवाला है - "···· मुझे आपके ये सतीत्व और पतिभक्ति वगैरह के सिद्धान्त बेबुनियाद और जालिम लगते हैं ।[1]" सज्जन का विलासी हृदय वनकन्या के सच्चे प्रेम के आगे परास्त होता है और उससे विमुख होता है । लेकिन वनकन्या का प्रेम सज्जन के मन को खोल देता है - "काफी हद तक जिम्मेदार आदमी होते हुए भी मैं एक जगह बिगडे बच्चे की तरह बेकाबू हूं । मुझे एक जगह अपने ऊपर विश्वास नहीं । मैं तुम्हारी भक्ति पर विश्वास करना चाहता हूं कन्या । मुझे अपना विश्वास दो[2] ।" सज्जन के बारे में महिपाल का कथन है - "वह बेवकूफी करता है पर अपनी गलती महसूस करना भी जानता है । गलतियों से ऊपर उठना भी जानता है[3] ।" आत्मविश्वास और पश्चात्ताप सज्जन के मन को ऊंचा उठाता है । पत्नी के लिए उसका संकल्प था - "वह रूप के साथ सुगन्धि भी चाहता था, सुगन्धि की परिभाषा उसकी अपनी थी । वह व्रत, नियम संयम की कठोर और धरवा संभालनेवाली बहुरिया हरगिज हरगिज पसन्द नहीं कर सकता । उसे पढी लिखी नये विचारों की सुन्दर चतुर और न जाने कितनी तरह की खूबियोंवाली पत्नी की चाह थी[4] ।"

1· बूंद और समुद्र, पृ·94

2· वही, पृ·498

3· वही, पृ·367

4· वही, पृ· 87

सज्जन वनकन्या के स्थिर व्यक्तित्व और बाबा की संगति से अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाता है। सज्जन मध्यवर्ग के लिए सहकारी बैंक की स्थापना करता है, अस्पताल खोलता है। कन्या के सहयोग से स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध करता है। अन्त तक अपने सद्व्यवहार और विवेक के द्वारा नायक का सारा काम करता है।

वनकन्या

मध्यवर्गीय परिवार की प्रगतिशील लड़की वनकन्या साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित है। उसकी भाभी के साथ किये गये पाशविक व्यवहार और दुखद अन्त के कारण मनुष्य के प्रति उसमें तीव्र घृणा होती है। अपने दुराचारी पिता को सजा देने और उचित न्याय की माँग के लिए "घूँघट के पट खोल" शीर्षक से पर्चा गिराकर नारी आन्दोलन का आरंभ करती है। पुरुषों द्वारा नारी की दुर्गति बना देने के कारण उसका स्वाभिमान जागृत हो उठता है। उसका मन पुरुषों के प्रति विद्रोह कर उठता है। उसकी राय में प्रेम मन की कमज़ोरी है। उथली भावुकता से युक्त प्रेम की अनुभूति को वह प्रवंचना समझती है। उसका प्रेम असंयमित नहीं। सज्जन की संपत्ति की ओर वह आकृष्ट नहीं होती। स्त्री पुरुष के संबन्धों की चरम परिणति वह विवाह में मानती है। उसके समान संस्कारी सिद्धान्तवादी पुरुष से ही वह विवाह करना चाहती है। वह मानती है कि आज की नारी की सामाजिक स्थिति अभिशापयुक्त है। वनकन्या पूँजीवाद की घोर विरोधिनी है। वह सज्जन के अभाव की पूर्ति करती है। वनकन्या का व्यक्तित्व निष्ठा एवं विश्वास से निर्मित है। नारी सुलभ कमजोरियाँ उसमें नहीं हैं। वह वासना के कोसों दूर रहती है। वनकन्या का व्यक्तित्व और चरित्र पूरे उपन्यास में व्याप्त है।

उसके माध्यम से नागरजी ने भारतीय नारी की विवशता और समस्याओं को स्पष्ट किया है - "भाभी का अपराध यही है कि वे औरत हैं और इकनामिकली फ्री नहीं हैं[1]।" प्रेम के नाम पर नारी को धोखा देना वह कदापि पसन्द नहीं करती - "स्त्री-पुरुष जीवन में सिर्फ एक ही बार एक दूसरे को पाते हैं। मेरा इस बात में दृढ विश्वास है और पाने केलिए उन्हें आपस में अपने आप को अनेक कसौटियों पर कसना होता है। यह जिम्मेदारी का नाता है, रईसों कलाकारों मनचलों के दिल-बहलाव का खेल नहीं[2]।" इसी चारित्रिक दृढता के कारण ही सज्जन समाजसेवा की ओर प्रस्तुत हुए। वनकन्या का दृढ चरित्र अन्त में सफल दांपत्य बन कर आया। नागरजी ने वनकन्या के व्यक्तित्व को प्रतिभाशाली और संस्कार शील प्रकट किया है। वनकन्या अपने पति को नारी के उत्थान के कार्य में सहयोग देती है और "महिला मण्डल" का पर्दाफाश करने को प्रेरणा देती है - रूढिवादिता स्वयं को संहार से बचाने से पहले कठिन प्रहार करती है और भी करेगी, परन्तु दोनों पति-पत्नी आस्था पर डटे रहेंगे। व्यक्ति की सामाजिक चेतना जागकर ही रहेगी[3]।" प्रारंभ का वनकन्या के विद्रोही जीवन का अन्त सज्जन के साथ के विवाह के साथ होता है। भारतीय नारियों के दांपत्य जीवन की दुखावस्था के बारे में कन्या सोचती है - "पुरुष नब्बे प्रतिशत घरों में शक्तिशाली है, स्त्री उसकी छायामात्र है ..... विज्ञान की बातों से भेंट नहीं। पुरुष की दासता में दिन-रात का कलहयुक्त अशान्त जीवन बितानेवाली करोडों भारतीय नारियों के मुकाबले में वह कितनी मुक्त, कितनी सुखी, कितनी सौभाग्यवती है[4]।"

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.56
2. वही, पृ.205
3. वही, पृ.583
4. वही, पृ.463

रमेश

"अमृत और विष" का निर्भीक, तरुण और प्रगतिशील पात्र रमेश तारुण्य सुलभ आक्रोश, असंयम और अप्रौढता रखनेवाला युवक है । आत्मप्रशंसा और गंभीरता का अभाव उसके निम्न कथन में पाते हैं - मैं अपने पांवों पर खड़ा हुआ । मैं ने मेहनत से केरियर बनाया है । तरुण छात्र संघ की तेजस्वी आत्मा "मैं" था । बाद में मैं ने नेतृत्व किया । मैं मानता हूं, समाज क्या है । मैं जानता हूं समाज के स्वतंत्र होने के माने हैं व्यक्ति की स्वतंत्रता । आजकल मेरे लेख क्या सनसनी ढा रहे हैं - जिसे देखो "इंडिपेंडेन्ट" खरीद रहा है, जिसे देखो रमेश का नाम ले रहा है ।[1]" रानीबाला से शादी होने के पश्चात् के जीवन में रमेश के चरित्र में दुर्बलताएं आ जाती हैं । बानो के सौन्दर्य पर वह आकृष्ट होता है - "..... बानो उसे अच्छी लगती है । अब तक रानी के प्रति बन्धी हुई महीनों की चाहत में तनिक भी ढील न आयी थी पर अब यह विघ्न आया । अब तक बानो की सुन्दरता के बारे में उसे तनिक सा ख्याल तक न आता था पर अब कभी कभी बेहोशी आने लगी । खुद उसकी भी तबीयत होने लगी कि अकेलापन पाये और बानों से आंखें लगाए[2] ।" उसी समय अपने दोस्तों को स्वार्थता भूलकर वह प्यार करता है । लच्छू से एक सच्चे दोस्त के रूप में वह व्यवहार करता है । रमेश जब आत्माराम के यहां की नौकरी लच्छू को दे रहा था तो उसे लेने का उपदेश वह लच्छू को देता है जबकि उस नौकरी को पाने से रमेश को स्वयं लाभ होता है । वह लच्छू को उसके लिए प्रेरित करता है ।

---

1. अमृत और विष, पृ.617
2. वही, पृ.733

"मेरे ख्याल में तुम ये सब बकवास छोडो । डॉ॰ आत्माराम के साथ रहने और काम करने की कामना भी मुझे अपनी ओर खींच नहीं पाई, इसीलिए तुमसे कहने आया । ये एक पास मिला है, मैं न सही, तुम्हीं ले लो । खन्ना साहब तुम्हारी सिफारिश भी उसी तरह करेंगे, जैसे मेरी करते[1] ।" रानीबाला से अपना प्रेम व्यवहार वह खुले खुले करना चाहता है । वह सोचता है - ठीक ही तो है । मैं रानी के प्रति अपने इस पवित्र भाव को सामाजिक चोरी या मानसिक पाप की वस्तु क्यों बताऊं ? ..... काश कि मैं और रानी योरपीय जवानों की तरह खुले आम साथ साथ घूम सकें[2] ।" समाज के सामने रमेश अपने काम पर सुदृढ रहता है । बारहदरी का उपयोग करने के बाद-विवाद में रमेश दृढ निश्चय कर लेता है । बारहदरी युवा पीढी के लिए ही लाइब्रेरी, खेल-कूद आदि चलाने रख देने का दृढ व्रत वह कर लेता है - "संघ बारहदरी ही में रहेगा, नहीं तो मैं आमरण अनशन करूंगा[3] ।" दूसरों का गुलाम होने से वह चूकता है । रूपचन्द्र से केसर मांगने के लिए पुत्तीगुरू कहते हैं तो रमेश को उसे अभिमान का प्रश्न मालूम होता है - "छि: भीख मांगते लाज भी नहीं आती । इसी भीख ने ब्राह्मणों की स्थिति बिगाड दी, छि:[4] ।" अन्तर्जातीय विवाह अभी हमारे यहां बुरे तो माने जाते हैं, लेकिन इतने बुरे नहीं माने जाते । होने तो लगी है ऐसी शादियां[5] ।"

1· अमृत और विष, पृ·177
2· वही, पृ·159
3· वही, पृ·320
4· वही, पृ·313
5· वही, पृ·155

इस प्रकार देखा जाता है कि तारुण्य सुलभ उत्साह, निर्भीकता, क्रान्तिभावना, विद्रोह, परिश्रम और स्वाभिमान ने रमेश को एक प्रगतिशील कथापात्र बना दिया है ।

तनकुन और देशदीपक

करवट के केन्द्रीय पात्र तनकुन या वंशीधर टण्डन और उसका बेटा देशदीपक दोनों प्रगतिशील पात्र हैं । अपने पिता के दूसरे विवाह का धीर मन से वह विरोध करता है और घर छोड देता है । स्वयं अध्ययन और अध्यापन का कार्य करके जीविका कमा लेता है । अंग्रेज़ों को सन्तुष्ट करके जीना अपनी उन्नति के लिए आवश्यक समझकर अंग्रेज पार्किनसन तथा नैन्सी मालकम के मित्र तथा नौकर बनकर रहा, गदर के बीच अंग्रेज़ों से भारतीयों के प्रति अपशब्द सुने । वह बचपन से ही व्यावहारिक था । सामनेवालों का इंगित समझकर उनसे बातें करने में वह समर्थ था । उसने समझ लिया कि अंग्रेज़ों से मैत्री व मेल जोल जीवन में उन्नति करने का एकमात्र उपाय है । इसलिए उसने स्वयं को अंग्रेज़ी तरीके में ढाला और अपनी पत्नी को कलकत्ता बुलाकर अंग्रेजी सिखायी और उसका नाम चमेली से चम्पकलता रख दिया । अंग्रेज़ों की रीति के अनुसार कुत्ते पाले और मिडिल स्कूल का हेडमास्टर बनकर कलकत्ता आया तो कुत्ते को साथ लेकर आया । इस प्रकार गली मुहल्ले के सब लोगों पर अपनी अंग्रेजियत का सिक्का जमा लिया । पति से गुण्डों के हाथ उठवा दिये गये कौशल्या से अपने एकमात्र पुत्र का विवाह उसने कराया । इस प्रकार नगर में उच्चतम प्रतिष्ठा पाकर बहुत सफल और होनहार पुत्र का पिता बनकर वह जीता है । अपने विवेक और परिश्रम से ऊँचे स्थान पर वह पहुँच जाता है ।

वंशीधर का पुत्र देशदीपक भी वास्तव में एक प्रगतिवादी पात्र है । वह वंशीधर का एकमात्र पुत्र है । माता-पिता के दिये हुए वातावरण में पलकर उसने अंग्रेज़ी सीख ली । इसका आत्मबल बहुत बडा है । विलायत भेजकर पढाने का वादा देते हुए आये धनाढ्य व्यक्ति की पुत्री के विवाह बन्ध के लिए वह तैयार नहीं हुआ । विवाहिता कौशल्या की गुण्डों द्वारा उठा लिये जाने की हालत में भी देशदीपक ने आगे बढकर उससे विवाह किया । एक सच्चे आर्य वीर के समान एक विपदिग्रस्त आर्यललना की रक्षा की । वह मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं रखता । वह एक कुशल डाक्टर, एक सहृदय नागरिक तथा सफल गृहस्थ तथा सच्चा भावद्भक्त बन जाता है । अपनी प्रतिभा, लगन एवं अध्यवसाय के जरिए लौकिक एवं आध्यात्मिक उन्नति उसने प्राप्त कर ली ।

5· हास्य पात्र - सेठ बांकेमल

पुरानी पीढी के वैभव पर अभिमान देखनेवाला सेठ बांकेमल नागर जी के छोटे उपन्यास "सेठ बांकेमल" का नायक है । सेठ बांकेमल उनके मित्र पारसनाथ चौबे के पुत्र को बीती हुई जिन्दगी के चित्र सुनाते चलते हैं । वे दोनों वर्गगत चरित्र अधिक हैं व्यक्तिगत कम । पुरानी सामाजिक सांस्कृतिक परंपराओं के विविध दृश्यों को अपने बीते हुए जीवन की घटना स्मृतियों के माध्यम से रूपायित करता चलता है । "यह पुरानी पीढी नवयुग की बदलती हुई मान्यताओं को स्वीकार करने में असमर्थ है, अतः अवसर पाते ही सेठ बांकेमल अपनी भोगी हुई ज़िन्दगी के बीच पहुँचकर जैसे आगे जीने का सहारा खोज लेते हैं । उनके सामने भविष्य का कोई सवाल नहीं है ।

वर्तमान से उन्हें बेहद असन्तोष है । यह तो उनके द्वारा भोगा गया वह शानदार अतीत है जो उन्हें वर्तमान की सारी विरसता के बीच जीने का सहारा दिये हुए हैं[1] ।" डॉ॰ रामविलास शर्मा ने कहा है "सेठ बांकेमल एक भारी-भरकम चरित्र है, हास्य चरित्र की भांति कोई अतिशयोक्ति पूर्ण रूप से अंकित कार्टून नहीं[2] ।"

राजेन्द्र यादव के अनुसार "सेठ बांकेमल" एक मस्त चरित्र है । उन्होंने उनके व्यक्तित्व के बारे में लिखा है - "बांकेमल तो सचमुच ही अद्वितीय चरित्र है जो हंसते हंसते अपने युग की प्रति-क्रियावादी और प्रगतिशील दोनों धाराओं का दिग्दर्शन कराता है । वह पुराने का भक्त है, अपने से चिपका है । गाँव में जाता है तो पनिहारिनों से मजाक करने बगीची में आशिक माशूकी की शायरी करने या अपने ग्राहकों की, यहां तक कि लाला मूलचन्द्र की भी जेब काटने से नहीं चूकता । लेकिन एक जगह वह परम क्रांतिकारी है । मुसलमान बादशाह को हृदय से प्यार करता है । गरीबों की शादी के लिए छाती ठोंककर लडने को तैयार हो जाता है । सबके ऊपर उसकी सनकें तो हैं ही । वर्णनात्मक शैली की सजगता की दृष्टि से भारतीय साहित्य के बाहर भी ऐसा मस्त चरित्र मिलना मुश्किल है[3] ।" अपने छोटे जीवन में सदा मौज उडाते रहने का आदेश वे देते हैं - मेरा कामकाज तो भयो, येई है कि अपने को खुश रखो, सदा मौज में रहो । खुश्केटी में मजा नई है प्यारे एक दिन चलो मेरे साथ साजघाट पे ठडाई-फंडाई छानी जाय । .... यही मस्ती जीवन जीने का अर्थ देती है । जिन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है और मुर्दादिल साले खाकजिया करते हैं ....[4] ।"

---

1. नागर जी की उपन्यासकला - प्रकाशचन्द्र मिश्र, पृ॰76
2. कथाविवेचना और गद्यशिल्प - डॉ॰रामविलासशर्मा,वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1982, पृ॰52
3. आलोचना - हिन्दी के सामाजिक कथानकों का विकास शीर्षक लेख, राजेन्द्र यादव - 4,1954-55, पृ॰48
4. सेठ बांकेमल, पृ॰111-112

सेठ बांकेमल फैशन की सजधज अपने में समेटे हुए हैं - "हाय रे मेरे प्यारे तुझसे क्या कहूं, देखने लायक फैशन विस दिन चौबेजी का कामदार मखमली तो जुतामारा, मखमली पाड की कलकत्ते की चुन्नटदार धोती, चिकन का भरोंटदार कुर्ता, बिसपे भइयो, नीले मखमल पे काम की हुई बास्कट डाटी । और फिर जो जो धुरी सोफा लगा के चला है मेरा यार अकड़ता हुआ, तो सड़कों पे हटो बचो होने लगी भइयो, तुझसे झूठ नहीं कहूं हूं ।"[1] आधुनिक समाज के बदलते हुए परिवेश से वे खीझ उठते हैं और शिक्षित नारी की वे आलोचना करते हैं - "अब तो जमाना ई बदल गया । आजकल की पढी लिखी लडकियाँ हमारी धौंस थोडी माने है । तो बात ये है भैयो कि वे साला बाइस्कोप चला है सनीमा, जिसमें साल में रोज येई बात बताई जावे है । किसी भी साले ऐरे-गैरे कुर्कट के साथ आँख लडा ली और जो माँ-बाप भला चाहनेवाले मना करे हैं । तो विनो की छाती पे सवार हो जावे हैं ससुरी ।"[2] युवा पीढी के नैतिक ह्रास को देखकर वे अस्वस्थ हैं - "आज के लौंडों सालों की नसों में खून ही नहीं, पानी दौडे है पानी । लौंडे थोडे ही हैं, लौंडियाँ हैं लौंडियाँ रंडियों की तरह से ससुरी माँग पट्टियाँ निकाल लीनी और चले सब मूंछ मुडा के सिगरेट पीते हुए । बडी तोपगी समझते हैं - ससुरे ।"[3] पुराने जमाने की नारियों के सतीत्व पर उसे गर्व है और नये युग की स्त्रियों के प्रति उनमें आक्रोश है - "इसी हमारे भारतवर्ष में औरतें सती होती थीं तिनको देवी मानके पूजे थे । अपनी इज्ज़त बचाने के लिए ससुरिया आग में जल के भसम हो जाया करें थी और अब ये जमाना आन लगा है कि घर के घर में सब औरतें - लडकियाँ ऐसे ऐसे बाइस्कोप देख देख रंडियाँ हुई चली जायँ साली ।

1· सेठ बांकेमल, पृ·62

2· वही, पृ·105

3· वही, पृ· 43

नई मैं ने नई - कउं हूं के पेले के जमाने में सुद्ध पवित्तर ही थे ऐसे कोई वारदातों होवेइ नहीं थी । नई; होवैं थी ज़रूर, पर बहुत कम और सो भी बडी दबी - ढंकी भैयो[1] ।" नये जमाने की स्त्रियों का फेशन भी बाकेमल के लिए घृणास्पद है - "फैसन है साले, जार्जेट की साडियां पैनेंगी सब, जिसमें साला सब, बदन उघाडा दीखे । जब ऐसी मतें बिगड गई हैं तो हिस्टीरिया न होगी और ससुरे क्या होगी साले ? ससुरे लड्के पैदा होंवे हैं आजकल ? साले चूहे के बच्चे । विस जमाने में मां-बाप तन्दुरुस्त होतें थे भैयो, औलाद साली पैदा हो ते ही साल भर की मालूम पडे थी[2] ।" अपनी तन्दुरुस्ती बनाये रखने का कार्य सेठ बांकेमल के युग की प्रमुख खासियत थी । "सेर भर तो घी पीता जा सके । आध सेर दाल, आध सेर चावल, सेर भर आटा और सेर भर भइयो, लाया राबडी, बनाया भइयो, डाट के । सब कुछ पेट में उतार गये । डकार भी न लीनी । अब सोची दो घण्टे आराम किया जाय[3] ।" बाकेमल के लिए प्राचीन तंत्र मंत्र ही आज के युग के आविष्कार की अपेक्षा गणनीय है । तोप बन्दूक क्या है महाराज, जहां तक मन्तर पढके तीर फेंका तो देख लो फिर कहीं इनका पता भी नहीं चल सकेगा । महाभारत में लिखा है कि नहीं, कैसे कैसे तीर थे ससुरे कि अग्निबाण छोड दीना, सारा बिरमांड खाक हो गया ससुरा[4] ।" सेठ बाकेमल सांप्रदायिक एकता चाहनेवाला है और भारत की आजादी वह दिल से चाहता है - "जहां देखो साला हिन्दू मुसलमानों का दंगा हो रहा है । वे कहते हैं कि हिन्दू ने मेरी निमाज बिगाड दीनों वो कहो बे कि मुसलमान ने मेरी गाय काट डाली।

---

1. सेठ बाकेमल, पृ॰100
2. वही, पृ॰55
3. वही, पृ॰ 5
4. वही, पृ॰42

खुफ्केट माले । इन फोवमों को इत्ती भी तमीज नहीं आयी कि हम तो आपम में मिर फोड़ रहे हैं और अंग्रेज़ माले हमारी छाती पर बैठ खून पी रये हैं हमारा[1] ।"

इस प्रकार देखा जाता है कि हास्य व्यंग्यपूर्ण श्रृंखलाबद्ध कहानियों मे बाकेमल ने पाठकों को अनूठा रस पिलाया है ।

6· मनोवैज्ञानिक पात्र

महिपाल

"बूंद और समुद्र" का महिपाल नागर जी का सफल मनोवैज्ञानिक पात्र है । महिपाल का चरित्र गंभीर मनोवैज्ञानिकता की अपेक्षा रखता है । महिपाल उच्चकोटि का लेखक और साहित्यकार हैं । तो भी आर्थिक अभाव महिपाल को दुखी बनाता है - "सन् 37 के बाद महिपाल ने सुख की रोटी का एक दिन भी नहीं देखा । बडे परिवार को लेकर बच्चों की बीमारी, स्कूल की फीस, किताबें, कपडे, जनेऊ, मुण्डन, जन्म-मरण से बन्धी हुई रस्में, नोन-तेल लकडी की समस्या - उसे जिन्दगी की लज्जत में बराबर हतोत्साह करती रही है[2] ।" व्यक्ति के पोषण के लिए समाज का दायित्व वह जरूरी मानता है । "व्यक्ति और समाज दोनों ही दोषपूर्ण हैं । जब तक समाज नहीं बदलता तब तक व्यक्ति बेचारा क्या करेगा ? चरित्र का चरित्र पर प्रभाव पडता है जब तक समाज का निर्माण होता है और समाज द्वारा व्यक्ति का पोषण । व्यक्ति और समाज के समन्वय का यही मूलभूत आधार है । इसी से कुटुंब की रचना होती है[3] ।" देश की सुधार के

1· सेठ बाकेमल, पृ·84
2· बूंद और समुद्र, पृ·113
3· वही, पृ·434

बारे में और जातिभेद के विरोध में बातें करते हुए महिपाल कहता है "मेरा मतलब जातिभेद से है । जब तक हिन्दुस्तान में यह जटिल जातिभेद रहेगा हम लाख सुधार करने पर भी समाज को "मानव समाज" के रूप में प्रतिष्ठित करने में असमर्थ रहेंगे[1] ।" रूढिवादी कल्याणी से उसका मन नहीं रमता है । कल्याणी पुरातन संस्कारोंवाली स्त्री होने के कारण महिपाल के प्रगतिशील विचारों के विपरीत खड़ी हो जाती है । इसलिए महिपाल डॉ॰शीला स्विंग से अपनी मानसिक तृप्ति पाता है । डॉ॰ शीला अपनी पढाई और विद्वत्ता के कारण महिपाल पर अपना आधिपत्य जमाती है । महिपाल भी ऐसी एक बुद्धिमती नारी की खोज में है । डॉ॰ शीला महिपाल के थके मन का सहारा बनकर आती है । महिपाल तथा कल्याणी के विचारों में बौद्धिक साम्य नहीं है । कल्याणी का एकनिष्ठ प्रेम महिपाल जानता है । महिपाल को यह भी मालूम है कि अपने बौद्धिक व्यक्तित्व को परितृप्त करने में कल्याणी ज़रा भी सहायक नहीं होती । अपने वैवाहिक जीवन से वह असन्तुष्ट है । वह अपने माता-पिता को इसका उत्तरदायी मानता है - "मेरी शादी असफल रही जैसे माता-पिता द्वारा तय हो गई शादियां आम तौर पर होती हैं । हमारे अस्सी फीसदी घरों में ऐसी शादियाँ जीवन भर के कर्ज की तरह निभायी जाती है । नतीजा यह होता है कि कहीं पति कहीं पत्नी दोनों ही एक दूसरे के पीठ-पीछे व्यभिचार करते हैं[2] ।" महिपाल अपने विचारों से व्यक्त करता है कि पुरुष प्रधान समाज ने सदैव नारीशोषण किया है । "जहाँ पुरुष अनेक पत्नियों अनेक रखैलों के साथ सुख का जीवन बिताने केलिए स्वतंत्र है और स्त्री इस तरह बात बात पर दण्डित की जाती है वहाँ स्त्रियों द्वारा जो "पाप" न हो वह थोडा है । पुरुष ने अपनी

1· बूंद और समुद्र, पृ·433

2· वही, पृ·93

3· वही, पृ·480-481

सुख सुविधा के लिए स्त्री को गणिका भी बनाया।[1]" कल्याणी से बिगड़कर दो तीन दिन बाहर रहने के बाद वह घर की ओर वापस जाता है। अपने वैवाहिक सत्य को मानने के लिए वह मजबूर है - "पति-पत्नी की सहज जोड़ी दुनिया में रहेगी ही। वह नित्य है उसका अन्त नहीं। संस्कार युक्त उर्ध्व चेता महिपाल इस सत्य से मुँह कैसे चुरा सकता है[2]।" अपने दुर्दमनीय अहं के कारण सज्जन की प्रगति से वह ईर्ष्यालु बनता है और उसके विरुद्ध प्रचार करने लगता है। आर्थिक अभाव के कारण महिपाल ननिहाल में चोरी करता है। लाला रूपरतन के द्वारा चोरी का भण्डाफोड़ होने पर आत्मग्लानि से वह आत्महत्या करता है। महिपाल के चरित्र के बारे में सज्जन का कथन है - "जिस देश का इतिहास इतना महिमामय है। वह देश जड़ता और गन्दगी में रहना पसन्द करते हुए आज की भयंकर अशांति के रूप में आत्महत्या क्यों कर रहा है ? महिपाल और भारत अपने ज्ञान और अज्ञान को लेकर एक समान है[3]।"

इस प्रकार देखा जाता है कि महिपाल का जीवन द्वन्द्व से भरा हुआ था। वह प्रखर विचारक होते हुए भी अपने मन के अभावों और सामाजिक दायित्वों से घुटकर कुंठित और संत्रस्त होता है। वह द्वन्द्व महिपाल को अपने दारुण अन्त की ओर ले जाता है। महिपाल के मानसिक झंझावातों का चित्रण पात्र के चरित्रांकन को मनोवैज्ञानिक आयाम दिया गया है।

ताई

"बूंद और समुद्र" की ताई नागर जी का और एक मनोवैज्ञानिक पात्र है। ताई के जीवन में द्वन्द्व ही द्वन्द्व दिखाई पड़ता है।

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.480-481
2. वही, पृ.268
3. वही, पृ.604

ताई का चरित्र चित्रण सर्वाधिक सजीव और मनोवैज्ञानिक बन पडा है ।

राजबहादुर सर द्वारकादास अग्रवाल की पहली पत्नी है ताई । लड़की को जन्म देने के कारण वह राजबहादुर द्वारा परित्यक्ता बन जाती है । लड़की को लेकर वह अलग एक कमरे में रहती है तो भी कुछ महीनों बाद वह लड़की मर जाती है । निस्सहाय ताई अपने पति के पूर्व पुरुषों की पुरानी हवेली में रहने लगती है । तब से लेकर अपने मन की वेदना से जन्य प्रतिहिंसात्मक भाव को जगाकर संपूर्ण चौक मुहल्ले और पूरे शहर में उसने आतंक का वातावरण फैलाया वह कृष्ण की अनन्य भक्त, जादू-टोने में विश्वास करनेवाली, हिंसा और मानव प्रेम का सम्मिश्रण रखनेवाली बन गई जो नागर जी की उपन्यास की सजीव सृष्टि है । ताई को अपने जीवन में किसी का प्रेम प्राप्त नहीं हुआ है । इस विरक्ति भावना ने ही उसे विद्रोहिणी बनाया । प्रेम और द्वेष का परस्पर विरुद्ध भाव ही उसके जीवन में है । मुहल्ला-स्टडी करने आये सज्जन को कन्नोमल का पोत्ता बुलाकर वह प्यार करती है । बिल्ली के निरीह बच्चों को भी वह अपने समान प्यार करती है । वह सहिष्णुता एवं असहिष्णुता, संकीर्णता एवं उदारता की परस्पर विरोधी भावनाओं की शाश्वत सृष्टि है । मुहल्ले के सारे लोगों के बारे में उसका कथन है - "निगोडों के तन-मन में कीडे पडें, रोवें-रोवें में कोढे हो, मरों के पूरे घर की अर्थियां साथ साथ उठें, हैजा हो, प्लेग हो, सीतला खाय ।"[1] गर्भिणी तारा के बारे में वह कहती है - "रांड बहुत पेट लिए घूमती है, ऐसे ही काट के गिर जायें । उसके मुँह से निकलनेवाले शब्द हैं - मरो रे, फूँको रे, हैजा हो, कीडा पडें आदि आदि । उसी समय कई प्रसंगों में

---

1. बूँद और समुद्र, पृ.10

उसके हृदय के स्नेह, ममत्व, करुणा आदि सात्विक भाव फूट पड़ते हैं- बिल्ली के अबोध बच्चों पर उसका असाधारण ममत्व है । तारा के प्रसव के समय मोम की बत्ती लेकर दवा बनाने दौड़ती ताई की उद्विग्नता पाठकों पर प्रभाव छोड़ती है । राधाकृष्ण का धूमधाम से विवाह रचाती है[1] । जीवन के अन्तिम समय पर अपने पति पर मारण मंत्र का प्रयोग करने का विचार छोड़ती हुई वह कहती है - "अब मरन किनारे किसी का बुरा न चेतूंगी[2] ।" वस्तुत: ताई परंपरित विशुद्ध भारतीय संस्कारों में पली नारी का सजीव प्रतिबिंब है । विक्षिप्तावस्था में ही ताई का व्यक्तित्व प्रतिशोध और प्रतिहिंसा का प्रतिमान बनकर मूर्तित करता है । उसका मनोवैज्ञानिक उद्घाटन नागर जी ने व्यक्तिवादी धरातल पर किया है । माता-पिता के प्यार के अभाव, पति के द्वारा की गई उपेक्षा ताई के विद्रोही भावों का कारण है । उसी समय स्त्रियोचित कोमलता के कारण ही तारा पर उसे दया आती है । इस प्रकार हम देख पाते हैं कि परस्पर विरोधी अन्तर्भावनाएं उसके हृदय में हिलोरें लेती हैं । डॉ॰ रामविलास शर्मा का कथन है - "ताई का यह चित्र आंक कर अमृत लाल नागर ने हिन्दी उपन्यास को उच्चतम स्तर तक उठाया है[3] ।"

7· यथार्थवादी पात्र - कोवलन

"सुहाग के नूपुर" में कोवलन नागरजी का यथार्थवादी पात्र है । कावेरीपट्टणम् का गौरव कोवलन चेट्टियार उपन्यास का मुख्य पात्र है । प्राय: समाज में दीख पड़नेवाले उच्चकुलजात युवा पुरुषों में कोवलन का स्थान है । प्रारंभ में कोवलन एक चरित्रवान

1· बूंद और समुद्र, पृ·373

2· वही, पृ·563

3· आस्था और सौन्दर्य - डॉ·रामविलासशर्मा,पृ·141

व्यक्ति है । माधवी का सौन्दर्य उस पर कोई प्रभाव नहीं डालता । अपने मित्र कण्णन से वह कहता है - "चतुर पुरुष हाट में फिरती-फिरती धन लक्ष्मी और यौवन लक्ष्मी को महत्व नहीं दिया करते मित्र, वे उस लक्ष्मी का ही वरण करते हैं जो उनके घर में स्थायी रूप से आती है[1] ।" लेकिन पीछे माधवी के अनुपम सौन्दर्य पर वह आकृष्ट होता है यहाँ तक कि प्रथम रात्रि में ही अपनी पत्नी कन्नगी को लेकर वेश्या माधवी के पास वह जाता है और कन्नगी को उसे अर्पण कर देता है । घुंघरू बाँधकर नृत्य कर दिखाने का माधवी के आदेश पर कोवलन कोई विरोध प्रकट नहीं करता । वह माधवी के प्रेम का भिखारी बन जाता है - "तुम्हारे प्रेम धन को पाने के लिए मैं सदा तुम्हारे द्वार का भिखारी बना रहूँगा माधवी । मैं तुम्हारे आकर्षण से विवश हूँ, अपने आप से विवश हूँ[2] ।"

कोवलन का चरित्र समस्त मानवीय दुर्बलताओं से भरा पूरा है । माधवी की इच्छा की पूर्ति किये बिना वह रह न सका । इसलिए वंशनिधि कोष की चाबी माधवी के लिए उसने माँगी तो कन्नगी ने उसे देने से इन्कार कर दिया । तो कोवलन ने उसे मार मार कर लहू-लुहान कर दिया और कन्नगी की करधनी से चाबी ले ली। पर कोवलन के अन्दर यह सत्य तो गुनगुना रहा था कि उसने जो कुछ किया वह गलत है । वह कमरे का द्वार बन्द कर कुहनी टेक मुँह गडाए पड गया । वह जलन की तीव्र गति का अनुभव कर रहा था । फिर भी माधवी के आगमन से वह फिर उसकी अभिलाषा की पूर्ति कर देने में निरत रहता है । धर्मशाला में देवन्ती के साथ रहनेवाली कन्नगी से वह "सुहाग के नूपुर" माँगता है । "सुहाग के नूपुर" के न मिलने पर माधवी कोवलन को "कामी कुत्ता" कहकर भगा देती है । अपमानित और निराश्रित कोवलन को कन्नगी आश्रय देती है ।

---

1. सुहाग के नूपुर - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1960 पृ. 17

समाज के उन्मत्त, उद्धत, विवेकहीन पुरुष का यथार्थ रूप कोवलन के चित्रण से नागर जी ने यहाँ खींच दिखाया है ।

8. आदर्शवादी पात्र

कर्नल

"बूँद और समुद्र" का कर्नल नागर जी का एक आदर्शवादी पात्र है । कर्नल उच्चमध्यवर्ग का एक दूकानदार है । वह एक सशक्त एवं प्रभावशाली पात्र है । उसका सारा व्यवहार मानवतावाद से प्रेरित है । दूसरों की विपत्तियों में वह अपनी मदद पहुँचा देता है । वह परोपकारी, सहृदय एवं भावुक है । अपने परिवार से उपेक्षित वनकन्या को कर्नल अपनी स्नेहछाया में जीवनदान देता है । चित्रकार सज्जन को वह पितृतुल्य प्यार करता है । डॉ.शीला के प्रेमपाश में पड़कर कल्याणी से दूर रहनेवाले महिपाल को पारिवारिक जीवन की परम जिम्मेदारी समझाकर कल्याणी के पास भेज देता है । उसी प्रकार वनकन्या से विमुख होकर चित्रा राजदान की प्रीति में आये सज्जन को भी वहाँ से छुड़ाकर वनकन्या से उसे मिलाता है । कर्नल को लेखक ने ऐसे एक व्यक्ति के रूप में दर्शाया है जो बाधाओं के सामने घबराता नहीं, बल्कि डटकर उसका सामना करता है । एक आदर्श पुरुष का सारा गुण कर्नल में दिखाई देता है ।

बाबा रामजी दास

"बूँद और समुद्र" का बाबा रामजी दास भी नागरजी का एक आदर्श पात्र है । वे साधु परंपरा में आनेवाले कर्मयोगी और परोपकारी व्यक्ति हैं । विद्वानों ने इनकी तुलना सन्त विनोबा से

की है । वे गान्धीजी के अहिंसावाद और मानवतावाद पर बल देते हैं । उनकी पागलों की सेवा भावना सेवा मण्डल में उनकी अपार क्षमता को दिखाती है । क्रान्तिदर्शी बाबाजी अपने कर्तव्य कर्म के प्रति सचेत है - "बैठाकर खिलाना हमारे सिद्धान्त के विरुद्ध हैं । रामजी । डॅयूटी करें और पेट भर भोजन पावें, इसके लिए उद्योग कीजिए ।"[1] यों एक आदर्श पात्र का सारा गुण बाबा जी में नागर जी ने दर्शाया है ।

गौण पात्र

नागर जी के उपन्यासों के गौण पात्र मुख्य कथानक के सहारा बनकर काम करते हैं ।

"महाकाल" में केशव बाबू की पत्नी पार्वती माँ आबरू को खूब मूल्य देनेवाली माता है । शीबू अपनी पत्नी को नसीरुद्दीन के हाथों बेचने लगता है तब पतिव्रतानारी पार्वती माँ उससे आबरू की भीख मांगती है - "बेटा मेरी जान ले ले मेरी आबरू न ले ले ।" शिबू अपने पिता की चारित्रिक दुर्बलता के प्रभाव के कारण वासनात्मक प्रवृत्ति में डूबा हुआ है । नकली इज्जत को बनाये रखने वह अपनी पत्नी को बेच डालता है । शिबू की बहन तुलसी भूख से व्याकुल होकर लोकलज्जा को नगण्य मानकर नूरुद्दीन के विलास का साधन बनती है । अशिक्षित और अन्धविश्वासग्रस्त निम्न मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधि पात्र है नन्दो । नन्दो घर में ही कुट्टिनी का काम करती है । अपने शराबी पति में किसी प्रकार का प्रेम अपनी ओर न देखकर बडी (नन्दो) विरहेश की प्रेमिका बन जाती है । आधुनिक फेशन और नई

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.566

शिक्षा में निपुण उन्मुक्त प्रेम का उपभोग करनेवाली चित्रा राजदान और पश्चिमी और भारतीय नारी समन्वय डॉ॰ शीला स्विंग आदि नागरजी के दुर्बल कथापात्र हैं। दुर्बल संस्कारयुक्त छोटी, निम्न मध्य वर्गीय अशिक्षित नारी तारा भी इस विभाग की है।

माधवी की नृत्य गुरु चेलम्मा, दासी नागरत्ना, कुट्टनीकला में पारंगत पेरियनायकी, कन्नगी की दासी देवन्ती, सामाजिक मर्यादा के रक्षक सेठ मानइहन, सेठ मासात्तुवान तथा विदेशी व्यापारी पानसा भी अपने अपने क्रिया कलापों के कारण स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। इंडिपेंडेन्ट के संपादक पारिवारिक रूढिवादिता के कट्टर विरोधी आनन्द मोहन खन्ना युवा पीढी को अपना पूरा हस्तदान देता है। रमेश और रानीबाला का अन्तर्जातीय विवाह वह संपन्न करा देता है। निस्वार्थ और आदर्शवादी डॉ॰ आत्माराम आभिजात्य वर्ग का गौरव और अभिमान रखनेवाले हैं। युवा पीढी को वह प्रोत्साहन देता है और समय समय पर आर्थिक सहायता भी करता है। पूंजीवादी परिस्थिति में पलने पर भी वह सरल समाज सेवक है। निम्न मध्यवर्गीय ब्राह्मण समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाला पुत्तीगुरु रमेश के पिता हैं। रूढिवादी वह नई पीढी को भ्रष्ट एवं निकम्मा समझता है। तो भी वह न्यायप्रिय दीख पडा है। रानी बाला मध्यवर्गीय परिवार की विधवा युवती है। पारिवारिक विरोध के बीच उसका विवाह रमेश के साथ होता है। उसका एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है। वह रमेश की प्रेरणा शक्ति बनकर नई पीढी के युवतीवर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार देखा जाता है कि नागरजी के सभी कथापात्र कथानक को लक्ष्य पर पहुँचाने में सफल बनकर रहे हैं।

चरित्र चित्रण की विधियाँ

पात्रों के व्यक्तित्व को प्रभावित करने के लिए लेखक चरित्र चित्रण की दो प्रमुख विधियों का आश्रय लेता है । नागरजी ने प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक विधि और परोक्ष या नाटकीय विधि दोनों विधियों द्वारा पात्रों को विकास दिया है । प्रत्यक्ष विवरणों से युक्त चित्रण उनके भावी क्रियाकलापों को समझने में पर्याप्त है । "बूंद और समुद्र" की ताई के चरित्र के परस्पर विरोधी तत्त्व उसके पूर्वेतिहास के सन्दर्भ में ही स्पष्ट आकार ले सका है । वनकन्या का विद्रोही व्यक्तित्व लेखक के विवरण से सशक्त हो गया है - "कन्या अहंकारिणी है । नैतिकता की शक्ति उसके अहंकार का पोषण करती है । घर के गन्दे वातावरण की प्रतिक्रिया उसका बडा भाई और वह आत्मतेज से दीप्त होकर बालिग हुए । अपने विवाह की ट्रेजेडी के बाद उसके बडे भाई तो जिन्दगी से जूझते जूझते थककर बौरा गए, कन्या ने उनके दिमागी असन्तुलन से भी नसीहत लेकर अपनी नैतिकता को कसा ।[1]" नागरजी ने विवरणों के पात्रों के अतिरिक्त आंगिक चेष्टाओं एवं अनुभावों द्वारा ही पात्रों की प्रकृति को रूप दिया है । पात्रों के आपसी संवादों एवं विचारों द्वारा पात्रों के चरित्र विकास को बल मिला है । इन संवादों से पाठक निष्पक्ष निर्णय प्राप्त करते हैं । "सुहाग के नूपुर" में माधवी का कथन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है - "मैं कुट्टनी लीला से तब भी अपरिचित नहीं था और आज भी नहीं हुआ हूं । पर विवश हूं कन्नगी । मायाविनी के पास कहीं उतना ही सच्चा हृदय भी है[2] ।" माधवी के वेश्यारूप के

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.276

2. सुहाग के नूपुर, पृ.155

भीतर उनका निष्कपट प्रेमभरा हृदय छिपा है । माधवी के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का परिचय उसके शब्दों से मिल गया है । समय समय पर किये गये उद्धरणों से नागर जी के पात्रों का चरित्रोद्घाटन हुआ है। "बूंद और समुद्र" के बाबा रामजी के उद्धरण से उनके चरित्र की कर्मनिष्ठता को स्पष्ट करते हैं -

"सकल पदारथ या जग मा हीं
कर्महीन नर पावत नाहीं ।"

नागरजी के उच्चवर्गीय पात्र अपनी वर्गीय विशेषताओं के साथ दिखाई देते हैं । शोषण, एकाधिपत्य की भावना, स्वार्थता, कापट्य आदि उनके वर्गगत भाव हैं । अधिकतर तो निम्नवर्गीय पात्र सामाजिक व्यवस्था से पीड़ित हैं । उनके मध्यवर्गीय पात्रों में अस्थिर मानसिक भूमिका को प्रस्तुत किया गया है । आर्थिक पीडा से मानसिक सन्तुलन को नष्ट किया हुआ महिपाल, कामजन्य कुण्ठाओं से आक्रान्त बडी, डॉ॰शीलास्विंग अपने ही द्वारा निर्मित रूढियों से जकडी हुई ताई आदि आदि उनके मध्यवर्गीय पात्र हैं । बूंद और समुद्र के कर्नल, "महाकाल" के पांचू गोपाल तथा अमृत और विष के अरविन्दशंकर अपनी उलझती हुई जिन्दगी को छोडकर आगे की भूमिकाओं में काफी दूर तक पहुँच गये हैं । नागर जी ने अपने नारीपात्र और पुरुष पात्र दोनों को अतिरंजनाओं में डूबे बिना ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है । नारी चरित्रों को विशेष संवेदना के साथ ही उन्होंने अवतरित किया है । कन्नगी, माधवी, ताई, सीता, बडी, दुलारी आदि सभी पात्रों के प्रति अपना हृदयोद्गलित वेदनापूर्ण विचार ही प्रकटित किया है । कुलीन नारियों से लेकर वेश्याओं तक की स्त्री पात्रों की बहुरंगी सृष्टि उन्होंने की है । इतना तो स्पष्ट है कि पात्रों के क्रियाकलापों और परिस्थितियों के बीच से चरित्र चित्रण का जो स्वरूप उभरा है वह अधिक कलात्मक है ।

नागर जी ने अपने पात्रों के विश्लेषण के जरिए अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है । उनके पात्र जीवन्त, सक्रिय एवं स्वतन्त्र अस्तित्व से युक्त है । "नाच्यौ बहुत गोपाल" की निर्गुनिया, "महाकाल" का पाँचू, "अग्निगर्भा" की सीता आदि आदि । हाँ, अपनी चित्रण विधि से लेखक ने अपने चरित्रों को सजीव रूप प्रदान किया है ।

निष्कर्ष

नागर जी के उपन्यासों के प्राय: सभी मुख्य पात्र मध्यवर्ग के हैं । पाँचू गोपाल, सज्जन, महिपाल, कर्नल, बाबा रामजी दास आदि प्रमुख कथापात्र मध्यवर्गीय समाज जीवन के विशाल कैनवास पर रचे गये हैं । नागर जी के उपन्यासों में लेखक, कलाकार, दुकानदार, व्यापारी, राजा-रईस, राजनीतिज्ञ आदि विविध सामाजिक और आर्थिक स्तरों से आये हुए पात्र हैं । "अमृत और विष" में पुरानी और नई पीढी का चित्रण करके दो मध्यवर्गीय पीढियों को प्रस्तुत किया है । युवा पीढी में भी सक्रिय महत्वाकांक्षी रमेश साहस, उत्साह और आस्था का प्रतीक है । "बिखरे तिनके" का बिल्लू भी रमेश की तरह युवा पीढी की प्रवृत्तियों को उजागर करता है । उसी समय "अमृत और विष" का लच्छू विद्रोह और क्षोभ से भरे युवकों का प्रतिनिधि है । पुत्तीगुरु और रद्दूसिंह पुरानी पीढी का प्रतिनिधित्व करते हैं । नागरजी के उपन्यासों के समस्त कथापात्रों पर विचार करने पर मालूम होता है कि स्वभाव में साम्य रखनेवाले कथापात्र इस उपन्यास में विद्यमान हैं । "बूंद और समुद्र" का बाबा रामजी दास, "मानस का हंस" का बाबा नरहरिदास, "करवट" का बाबा

रामजी उचित अवसर पर प्रत्यक्ष होकर ज़रूरी मदद करते हैं । व्यक्ति और वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र भी हैं । भक्तकवि सूरदास और तुलसीदास भी आत्मीयता को लाते हुए प्रत्यक्ष होते हैं । नागर जी के अनेकों स्त्री पात्र पुरुषों द्वारा प्रताड़ित और पददलित है। वे सब समाज से न्याय मांगती खड़ी होती हैं । नीति के लिए वे प्यासी हैं । नागर जी ने अपने पात्रों के व्यक्तित्व को सजीव और सशक्त बनाने के लिए उनके चरित्र के बहिरंग और अन्तरंग दोनों पक्ष का चित्रण किया है । निष्कर्षत: नागर जी ने अपनी प्रतिभा और मौलिकता का पूर्ण विनियोजन करते हुए पात्रों का चरित्र विश्लेषण किया है ।

चौथा अध्याय

नागर जी के उपन्यासों में सामाजिक समस्यायें

चौथा अध्याय

नागर जी के उपन्यासों में सामाजिक समस्यायें

उपन्यास में समाज का गठन, समाज-व्यवस्था एवं सामाजिक मूल्यों का चित्रण होता है । उपन्यास की कथा किसी समूह, परिवार, समाज अथवा देश की होती है । वह कभी किसी व्यक्तिमात्र की नहीं होती । उसके पात्र भी किसी वर्ग या समूह के प्रतिनिधि होते हैं । उपन्यास का लक्ष्य मानव जीवन का विश्लेषण सामाजिक दृष्टि से करना होता है । लेकिन उपन्यास आलोचनात्मक दृष्टि से सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करता है । वह समाज के सुख से वंचित व्यक्ति के लिए समाज को चुनौती देता है । स्वार्थी जन की सहज गति को वह अवरुद्ध करता है । इस प्रकार सामाजिक उपन्यास व्यक्ति के विकास में सहयोग प्रदान करके उसे समाज में उचित स्थान देता है । वह समाज के असमत्व एवं अव्यवस्था पर असन्तोष प्रकट करके उन्हें सुधारने और संवारने का प्रयत्न करता है । "उपन्यासकार समाज का यथार्थ द्रष्टा होता है।

वह सामाजिक जीवन की मान्यताओं और विश्वासों की परिवर्तनशीलता को संवेदित सत्य के रूप में अपनी कथाकृति के माध्यम से अभिव्यक्त करता है[1]।" वह अपनी कथावस्तु में मानव जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। वह मानव जीवन के नानात्व में एकत्व स्थापित करता है। "कलाकार का केन्द्र और उसकी व्याप्ति व्यक्ति और समाज का पूर्ण समन्वय है[2]।"

हिन्दी में सामाजिक उपन्यासों का विकास प्रेमचन्द के काल से हुआ है। मानवमन की समस्याएं ही उनके उपन्यासों में वर्णित हैं। "उनके साहित्य में वर्णित जीवन और समस्याएं आज भी मानव मन की सहज अनुभूतियों को मार्मिकता से स्पर्श करती हैं[3]।" पूंजीवादी व्यवस्था से मनुष्य को मुक्ति दिलाने केलिए प्रेमचन्द ने गान्धीवाद का हृदयपरिवर्तन और साम्यवाद के वर्गहीन समाज के आदर्श का मार्ग स्वीकार किया। पूंजीवाद का शोषण और शोषितों की पुकार प्रेमचन्द के हृदय का मंथन कर रही थी। हृदय की इस वेदना ने ही उन्हें साहित्य की अमर प्रेरणा दी। साथ ही साथ "उनके प्रायः सभी उपन्यास किसी न किसी रूप में नारी समस्या से संबन्धित है[4]।" अपने जीवन की अनुभूतियों से ही जीवन और समस्याओं का सजीव चित्रण उन्होंने किया। उन्होंने हिन्दी उपन्यासों को एक निश्चित दिशा प्रदान की। उसे विकास की ओर

---

1. हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद-डॉ.कमलागुप्ता
   अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979, पृ.154
2. समीक्षा और आदर्श - डॉ.रांगेय राघव,
   विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्करण 1955,पृ.35
3. हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्याएं - डॉ.ज्ञान अस्थाना
   पृ.64
4. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग - मंजुलतसिंह
   आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, संस्करण 1971

ले जाने का अथक परिश्रम किया । उन्होंने व्यक्ति को एक सामाजिक इकाई के रूप में स्वीकृत किया । यथार्थ प्रेमचन्द के उपन्यासों का प्राण है । उन्होंने व्यक्ति के अस्तित्व एवं महत्व को स्वीकार करते हुए उसके जीवन का चित्रण समाज कल्याण की दृष्टि से किया । इस प्रकार सामाजिक उपन्यासकला की आधारभूत विचारधारा व्यक्ति चिन्तन से अलग होकर समाज मंगल की भावना से अनुप्रेरित है । अत: सामाजिक उपन्यासों की अपनी विशेषताएं हैं । "सामाजिक उपन्यास का उद्देश्य जीवन को सामाजिक दृष्टि से देखना है, जीवन का विवेचन-विश्लेषण सामाजिक दृष्टि से करना है, व्यष्टि सत्य को समष्टि सत्य में देना है[1] ।" प्रेमचन्द के उपन्यासों में मुख्यत: समाज कल्याण की भावना है । सामाजिक समस्याएं अन्तत: अपनी ही समस्याएं बन जाती हैं । "जहाँ तक प्रेमचन्द का सवाल है, उनके सभी उपन्यासों में हमें किसी न किसी रूप में समाज सुधार की यह प्रवृत्ति मिलती है[2] ।" इसलिए प्रेमचन्द के कथानक सामाजिक जीवन से निकटतम संबन्ध रखने पर भी व्यक्ति की अवहेलना नहीं करते । उन्होंने साहित्य को जीवन की व्याख्या व आलोचना माना है । उनकी कला का मूल उद्देश्य व्यक्ति चिन्तन न होकर लोक-मंगल की साधना है । पीड़ित वर्ग के भीतर से वे साहित्य में आये । इसलिए उन्होने दलित एवं पीड़ित जनता की समस्याओं को अपने उपन्यास में समेट कर रख दिया । "वे साधारण जनता की सुख समृद्धि की कामना करनेवाले, जनजीवन का विकास चाहनेवाले ऐसे लोकप्रिय कलाकार थे जिनके हृदय में दरिद्रों शोषितों और असहायों के प्रति गहरी और

1· हिन्दी उपन्यास सातवां दशक - डॉ·जयश्री बरहाटे
 संचयन गोविन्द नगर, कानपूर, प्रथम संस्करण 1988, पृ·15

2· हिन्दी उपन्यास में वर्गभावना - श्री· प्रताप नारायण टंडन
 लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1956, पृ·142

व्यापक करुणा थी, अत्यंत आर्द्र संवेदना थी।[1]" सेवासदन और निर्मला में दहेज की कुप्रथा का विरोध हुआ है। "सेवासदन" में उन्होंने वेश्या समस्या को उठाकर उसके माध्यम से नारी जीवन की यातनाओं का चित्रण किया है। "गोदान" में अपने घर के सामने एक गाय को बाँधने की अन्तिम अभिलाषा की पूर्ति के लिए आजीवनांत तडपनेवाले गरीब किसान "होरी" की करुण कथा की समस्या अत्यन्त हृदय विदारक रूप में चित्रित की है। दीन हीन किसानों की असहायावस्था के विरुद्ध "विद्रोह" का चित्रण "प्रेमाश्रम" में हुआ है। "कायाकल्प" में हिन्दू-मुस्लिम की संप्रदायिक समस्या का सविस्तार निरूपण हुआ है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में अपनी सामाजिक युग चेतना को वाणी दी है।

प्रेमचन्द की इस परंपरा में आगे के कई साहित्यकारों ने सामाजिक उपन्यास लिखे। अमृतलाल नागर भी इस परंपरा की कडी है।

प्रेमचन्द, सियाराम शरणगुप्त विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, अमृतलाल नागर आदि सामाजिक उपन्यासकार के रूप में स्वीकार किये गये हैं। ये समकालीन न होते हुए भी इनके दृष्टिकोण में मूलगत साम्य है। प्रेमचन्द की औपन्यासिक रचनाओं में सुधारवाद और आदर्शवाद का पुट अधिक है। सियाराम शरण गुप्त में सुधारवाद की अपेक्षा मानवतावाद और नैतिकता अधिक है। प्रेमचन्द की सामाजिक व्यापकता उनमें नहीं है। अमृतलाल नागर के उपन्यासों में

---

1. मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास - भूमसिंह भूमेन्द्र
श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1987, पृ.83

व्यष्टि और समष्टि का नूतन समन्वय दीख पड़ता है जो प्रेमचन्द प्रवृत्ति का ही विकसित रूप है । अमृतलाल नागर की "बूंद और समुद्र" जैसी कृतियों से यह मालूम होता है कि व्यक्ति समाज का एक अनिवार्य अंग है । एक व्यक्ति की उन्नति और विकास दूसरे पर आश्रित है । फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आंचल" में व्यक्ति की अपेक्षा मिथिला के जनजीवन का चित्रण ही अधिक है । इन उपन्यासकारों के प्रतिनिधि पात्र रूढि और परंपरा का विरोध करके ह्रासोन्मुख जनसमूह को प्रगतिवादी बना देते हैं । "बूंद और समुद्र" के सज्जन और वनकन्या यही काम करते हैं । विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक के उपन्यासों में सुधारवाद का प्रभाव खूब दीख पड़ता है । सियाराम शरण गुप्त की रचनाएं सत्य और अहिंसा जन्य गान्धीवादी नीति से प्रभावित जान पड़ती है । इस प्रकार देखा जाता है कि प्रेमचन्द से नागर तक उपन्यास की सामाजिक प्रकृति विकासशील रही है ।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में समस्याएं

अमृतलाल नागर के उपन्यासों का मूलभूत उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज का समन्वय है । उसके बाधक बाह्य और आन्तरिक शक्तियों पर व्यंग्यात्मक शैली में प्रहार करके मानवता का सन्देश देता है ।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों की समस्याओं का विभाजन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है ।

1. सामाजिक समस्याएं
2. सांप्रदायिक समस्याएं
3. राजनैतिक समस्याएं
4. आर्थिक समस्याएं

1. सामाजिक समस्याएं

सामाजिक संबन्धों के बिना व्यक्ति का व्यक्तित्व अधूरा है। सामाजिक संबन्धों को स्वस्थता और अनिवार्यता व्यक्ति द्वारा ही प्राप्त होती है। नागरजी का मानवतावादी दृष्टिकोण पूर्व और पश्चिम के समन्वय से उद्भूत है। उनका कलाकार भारतीय अध्यात्म आधुनिकता की समन्वित पृष्ठभूमि पर खड़ा है। व्यक्ति की महत्ता के साथ समाज की महत्ता को भी वे स्वीकार करते हैं। उन्हें मालूम है कि समाज में व्यक्ति की एक उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका रही है। अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह करने के लिए व्यक्ति को समाज का आश्रय लेना पड़ता है। समाज में ही व्यक्ति अपनी आत्मा का प्रकाश देखता है। इसलिए व्यक्ति और समाज दोनों आपस में संबन्ध रखनेवाले हैं। बूंद का अस्तित्व समुद्र में है। उसी प्रकार व्यक्ति का अस्तित्व समाज में है। बूंद बूंद करके बिखर जाने से विशाल समुद्र का अस्तित्व गिरने लगता है। व्यक्ति व्यक्ति के मेल से समाज का स्वरूप गठन होता है। जीवन विकास का मेल इसी सत्य पर निहित है। सामाजिक संबन्धों को स्वस्थता और अनिवार्यता व्यक्ति द्वारा ही प्राप्त होती है। नागर जी का "बूंद और समुद्र" उपन्यास यथार्थ जीवन का जीवित इतिहास प्रस्तुत करताहै। साथ ही साथ भारतीय मध्यवर्गीय जीवन का सजीव चित्र अंकित करते हुए व्यक्ति और समाज का संबन्ध अतीव दृढतर बनाता है। "नागर जी ने भूमिका में स्वयं कहा है - "इस उपन्यास में मैं ने अपना और आपका अपने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुणदोष भरा चित्र ज्यों का त्यों आंकने का यथामति यथासाध्य प्रयत्न किया है, अपने और आपके चरित्रों से ही इन पात्रों को गढा है। अपने इस उपन्यास में नागरजी ने कहा है - "हर बूंद का महत्व है क्योंकि वही तो अनन्त सागर है,

एक बूंद भी व्यर्थ क्यों जाय ? उसका सदुपयोग करो[1]।" व्यक्ति और समाज गुणपूर्ण बनने के लिए दोनों को अपने को परिवर्तित करना चाहिए । समस्या तो यह है कि जब तक समाज नहीं बदलता तब तक बेचारा व्यक्ति क्या करेगा । चरित्र का चरित्र पर प्रभाव पड़ता है । व्यक्ति से समाज का और समाज से व्यक्ति का निर्माण होता है । कुटुंब की रचना इसी मूलभूत तत्व के आधार पर है । नागर जी का संकेत यह है कि व्यक्ति को व्यक्तिवादी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए क्योंकि व्यक्ति के "स्व" के कारण "पर" को आघात पहुंचता है । बूंद और समुद्र में एक विशाल जीवन दर्शन दृष्टिगत होता है । लखनऊ के चौक को केन्द्र बनाकर एक नगर के समग्र जीवन और संस्कृति को देशीय परिप्रेक्ष्य में रखते हुए भारतीय समाज का चित्रण किया है । नागर जी ने सब कहीं व्यक्ति और समाज को एक दूसरे का पूरक माना है । जब व्यक्ति का कार्य जनकल्याण की भावना से युक्त होता है तब व्यक्ति का अस्तित्व गौण नहीं होता । "व्यक्ति व्यक्ति अवश्य रहे पर उसके व्यक्तिवादी चिन्तन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रहना अनिवार्य हो[2]।" व्यक्ति की प्रतिष्ठा - बूंद का सदुपयोग लेखक ने अपने चरम आस्थावादी चिन्तन की मात्रा में प्रस्तुत किया है ।

लखनऊ की सभ्यता और संस्कृति पर अंकित "बूंद और समुद्र" के कथाक्षेत्र में एक विशाल सागर की तरंगित लहरों के विविध रूप दिखाई देते हैं । डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान ने नागर जी की सृजन प्रक्रिया का सटीक चित्र खींचा है -"नागर की सृजन प्रक्रिया जब विभ्रान्त होने लगती है तब वह मथुरा वृन्दावन के भ्रमण के लिए निकल पड़ती है । बाबा के चमत्कारों में उलझने लगती है[3]।"

1॰ बूंद और समुद्र - अमृतलाल नागर, पृ॰388

2॰ वही, पृ॰606

3॰ आज का हिन्दी उपन्यास - डॉ॰इन्द्रनाथ मदान,पृ॰67

अनेक पात्रों के माध्यम से व्यक्तियों की करनियों के जरिए विशाल समाज की परंपराओं और विचारों का उद्घाटन किया गया है। नागर जी ने दिखाया है कि बंगाल के अकाल का कारण सामन्तवादी, साम्राज्यवादी और पूंजीवादी शक्तियां ही हैं। ये शक्तियां अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण पूरे समाज का शोषण करती हैं - "समस्या अन्न की है, कपड़े की है ..... जीने की है। व्यक्तिगत सत्ता का मोह सामूहिक रूप से मानव की इस समस्या पर परदा डालता रहा। .... यह अशान्ति व्यक्ति के गलत स्वार्थ की कहानी है।"[1] व्यक्ति और समाज का संबन्ध नागर जी स्वयं व्यक्त करते हैं कि "मैं अपने हर अच्छे और बुरे काम का निर्णय समाज के तराजू पर ही करता हूं। अपने हर काम में मनुष्य को दुनिया के रुख-बेरुख की ही फिक्र रहती है। फिर वह अलग कैसे हो जाता है, क्यों हो जाता है?"[2] प्रत्येक व्यक्ति को यह मालूम करना चाहिए कि उसके साथ अन्य व्यक्ति का हित जुड़ा हुआ है। यह समझकर उसे समाज में अपना हित साधन करना चाहिए। "बूंद और समुद्र" में महिपाल के माध्यम से व्यक्ति और समाज के संबन्ध पर नागरजी प्रकाश डालते हैं - "व्यक्ति-व्यक्ति अवश्य रहे, पर उसके व्यक्तिवादी चिन्तन में भी सामाजिक दृष्टिकोण का रहना अनिवार्य है।"[3] "मानस का हंस" में नागर जी ने तुलसीदास के माध्यम से व्यक्ति व्यक्ति की राममयता के आधार पर जोड़कर लोककल्याण की कामना की है - "मैं व्यक्ति के भीतर वाली सगुण निर्गुण खण्डित आस्था को दशरथ नन्दन राम की भक्ति से जोड़कर फिर खड़ा कर देना चाहता हूं। मैं अकेले नहीं, पूरे समाज के साथ राममय होना चाहता हूं।"[4] अमृत और विष, शतरंज के मोहरे,

---

1. महाकाल - आमुख
2. वही, पृ.164-165
3. बूंद और समुद्र, पृ.603
4. मानस का हंस, पृ.373

एकदा नैमिषारण्ये में नागर जी ने व्यक्ति के हित के लिए सामाजिक हित को प्रत्येक स्थान दिया है । व्यक्ति और समाज में मेल रखने के लिए मनुष्य को उसके कर्तव्य की ओर नागरजी आकृष्ट करते हैं - "मनुष्य का आत्मविश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए, मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानना चाहिए ।[1]" नागर जी पाँचू के माध्यम से यह निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं कि व्यक्ति तथा समाज परस्पर पूरक हैं । इनमें से किसी एक को वे कुछ महत्व नहीं देते - "एक ही चीज़ के दो नाम हैं - व्यक्ति और समाज - मानव और मानवता[2] ।"

व्यष्टि तथा समष्टि के समन्वय की समस्या को नागर जी ने बाबा रामजी के माध्यम से व्यक्त किया है । बाबा रामजी वनकन्या से कहता है - "हर बूंद का महत्व है क्योंकि वही तो अनन्त सागर है, एक बूंद व्यर्थ क्यों जाय[3] ।" प्रत्येक बूंद के महत्व का प्रतिपादन करते हुए नागरजी कहते हैं कि सामाजिक इकाइयों में समानता का व्यवहार होना चाहिए क्योंकि समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समाज में निजी अस्तित्व एवं महत्व है और प्रकृति की ओर से प्रत्येक व्यक्ति समान है । उनका विचार है प्रत्येक व्यक्ति में नवीन मानवीय आदर्शों एवं मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की क्षमता विद्यमान है । सज्जन के माध्यम से नागर जी ने व्यक्त किया है कि मानव जीवन को अग्रसर करने में ही समाज का अस्तित्व है । यों नागर जी व्यष्टि और समष्टि में समन्वयवादी मूल्यदृष्टि में समूची मानवता का कल्याण देखते हैं । व्यक्ति-व्यक्ति में आत्म विश्वास और आत्मसम्मान जागृत

1· बूंद और समुद्र, पृ·676

2· भूख, पृ·162

3· बूंद और समुद्र, पृ·369

हो जाएगा तो समूचा समाज स्वत: ही उन्नत होगा । व्यक्ति समाज में ही सुरक्षित है और समाज व्यक्ति के बिना निरर्थक है, पंगु है ।

नागर जी के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक समस्याओं को मुख्यत: चार विभागों में रखा जा सकता है -

1. भूख की समस्या
2. बेमेल विवाह की समस्या
3. नारी समस्या
4. वेश्या समस्या

भूख की समस्या

स्वतंत्र भारत की एक ज्वलंत समस्या है भूख की समस्या । अन्न, वायु और जल मानव की सबसे प्रमुख एवं मूल आवश्यकताएं हैं । अन्न के कार्य में भारत अभी तक स्वयं पर्याप्त बन नहीं सका है । भारत अन्न और अर्थ के लिए विदेशों के कर्जदार है । अपने पेट की ज्वाला के शमन के लिए यहाँ अब भी मानव तरसता रहता है । प्राय: सभी लूट-मार इसी भूख के नाम पर होती रहती है । भारत की इस भयानक दारुण स्थिति से नागर जी बोधवान थे । वे मानते हैं कि इस समस्या का कारण शोषित जनता नहीं बल्कि शासन सत्ता अपने अधीन रखनेवाले हैं । "महाकाल" के समर्पण में नागर जी ने स्वयं कहा है - "राजनीतिक दाव-पेंचों के बल पर यह समस्या जनमन की वास्तविक अशान्ति और उससे उत्पन्न घृणा को झूठे रूप से भड़का रही है । व्यक्ति के स्वार्थ और समाज की आर्थिक गुलामी के युग में यह भयंकर खून-खराबी, यह अमानुषिकता, भूख का यह ताण्डव,

महामारी, दुश्चिन्ताएं, यह घृणा, यह निराशा यह प्रलय ही सर्वथा शोभन और संभव है । यदि कुछ अशोभन है, असम्भव है तो विवेक, सद्बुद्धि, सद्ज्ञान, सदाचार, ऐक्य और प्रेम । यह अशोभन असम्भव ही "महाकाल" के रूप में समर्पित है ।"[1] इस समस्या का परिहार करने, सत्ताधिकारियों का ध्यान इस समस्या की ओर आकृष्ट करने के लिए ही नागरजी ने यह "महाकाल" उपन्यास लिखा है ।

बंगाल का एक एक व्यक्ति इस अकाल से पीड़ित है । पाँचू की बच्ची जागकर दूध के लिए रोती है । कुछ खाये बिना रहनेवाली माता मंगला की छाती में बच्ची को पिलाने के लिए दूध नहीं है । इस दृश्य का वर्णन महाकाल में यों दिया गया है - "दूध उतरता नहीं नन्ही सी जान रोते रोते सदा के लिए खामोश हो जाएगी । माँ अपनी छातियों में दूध कहाँ से पैदा करे ?"[2] भूख से पीड़ित पाँचू गोपाल दयाल जमीन्दार के यहाँ रहकर घोर अकाल के बारे में सोच रहा है । उसका मन मोहनपुर गाँव तक गया । भूख से मरी पड़ी बच्चों की लाशों का दृश्य पाँचू की आँखों के सामने घूमने लगता है - "दो बच्चों की नंगी लाशें पड़ी हुई थीं रामू की झोंपड़ी के पास । बच्चे शायद रामू के ही हैं । पाँचू से रहा न गया । पास जाकर देखा मौत अभी बच्चों के साथ खेल ही रही थी । घड़ी-पल के मेहमान हैं । ...... ये थकी थकी साँसें एक एक कर पल-दिन गिनती, किसी तरह अपना फर्ज पूरा होने तक साथ दिए जा रही हैं ।"[3] मोनाई की दूकान के सामने चावल खरीदने के लिए आये हुए नर-कंकालों का दृश्य

---

1. "महाकाल" - समर्पण - अमृतलाल नागर, भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सं. 2004

2. महाकाल, पृ. 54

3. वही, पृ. 64

यों दिखाया गया है - "मांस की पतली पतली झिल्लियों में चमकती हुई खुदा की खुदाई जगमगाते हुए कदमों से इधर उधर डोल रही थी। गड्ढों में धंसी हुई डगर-डगर आँखें, घूर-घूर कर अन्न के एक दाने की तलाश में मोनाई की दूकान के आस-पास मंडरा रही थीं। कितने ही नर-कंकाल झुके हुए, जमीन में चावल की सिर्फ एक कनी को खोज रहे थे[1]।"

चार दिन से भूखा मोहनपुर गाँव के स्कूल का मास्टर अपने और अपने परिवार की रक्षा के लिए जमीन्दार के यहाँ बेगार तक करने तैयार है[2]। पाँचू का बडा भाई भूख से पागल होकर अपनी पत्नी को नूरुद्दीन के हाथ बेचने को तैयार होता है। भूख की चरम सीमा पर गाँववाले अपनी बहू बेटियों तक को बेचते हैं। भूख की बढती स्थिति में नागर जी का व्यंग्यात्मक आक्रोश मोनाई की स्वार्थ लोलुपता के रूप में प्रकट हुआ है। लाशों तक मेडिकल कालेज में बेचकर मोनाई रुपया कमाता है। नागरजी ने मोनाई की मनोवृत्ति पर तीखा व्यंग्य कसा है। मोनाई जैसे स्वार्थलोलुप दुनियादारी समझनेवाला व्यक्ति ही समाज का अभिशाप है। जमीन्दार दयाल के घर में बैठे पाँचू इस अकाल पर विचार करता है। वह कह उठता है - "एक दयाल, एक मोनाई गाँव भर का अनाज खा जाता है, गाँव भर के कपडे पहन लेता है। हमारी खुराक, हमारे तन ढकने के कपडे, उनकी तिजोरियों में नोटों के बंडल, सोने चाँदी और हीरे जवाहिरात के तोडों की शक्ल में हिफाजत से रखे हैं। उनकी हिफाजत के लिए भोजपुरिये लठैत है, बन्दूकें हैं, पुलिस हैं, कानून है - और हमारी हिफाजत .... ?[3]"

---

1. महाकाल, पृ.65
2. वही, पृ.31
3. वही, पृ.62

इस प्रकार भूख की भयानक समस्या को नागरजी ने पाठकों के सामने खूब सफलता के साथ दर्शाया है । साथ ही साथ उसका कारण भी वे बताते हैं कि देश के स्वार्थी - दंभी शासक ही इसके जिम्मेदार हैं ।

बेमेल विवाह की समस्या

बेमेल विवाह की समस्या आज के भारत में दीख पडने वाली एक आम समस्या है । प्रायः सयाना होने पर लडके-लडकियों का विवाह माता-पिता ही निश्चित करते हैं । यही तो भारत की परंपरा से चली आनेवाली रीति है । लेकिन देखा जाता है कि कभी कभी ऐसा विवाह असफल बन जाता है । आधुनिक युग में जहाँ-तहाँ अपनी जीवन सखी को चुन लेने का परमाधिकार लडके-लडकियाँ अपने हाथ लेते आते हैं । तो भी परंपरा ही अधिक चलती आती है । विवाह के संबन्ध में डॉ॰राधाकृष्णन ने अपने धर्म और समाज नामक उत्कृष्ट ग्रंथ में कहा है - "नर और नारी दोनों एक दूसरे के जीवन का पूरक बन सकें और दोनों मिलकर पूर्णता प्राप्त कर सकें । विवाह संस्कार एक महान सुअवसर का प्रारंभ है जिसमें न्याय की, दूसरों को समझने की, दूसरों का ध्यान रखने की और दूसरों के प्रति सहिष्णुता की भावनाएं उत्पन्न होती हैं ।[1]" माता-पिता जब शादी तय करते हैं तो विवाह संबन्धी इन मान्यताओं को ध्यान में रखें, यही नागर जी चाहते हैं । इस उद्देश्य से ही "बूंद और समुद्र" में महिपाल-कल्याणी की शादी की असफलता को नागरजी ने पाठकों को दर्शाया है और बेमेल विवाह की समस्या प्रस्तुत की है ।

---

1. धर्म और समाज - डॉ॰राधाकृष्णन
   राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1963

महिपाल एक अच्छे प्रगतिवादी लेखक हैं। लेकिन कल्याणी पुरानी परंपरा में पली एक रूढिवादी ग्रामीण युवती है। घर संभालना ही उसका काम है। लेखक महिपाल के हृदय में रूढिवादी कल्याणी के लिए कोई स्थान नहीं। अपने लेखन को - अपनी बुद्धिमत्ता को - समझनेवाले एक व्यक्ति की प्यास में महिपाल रहता है। इसी प्यास को बुझाने के रूप में डॉ. शीला स्विंग महिपाल के जीवन में स्थान प्राप्त करती है। इस संगति के बढते बढते महिपाल कल्याणी से - अपने परिवार से - कोसों दूर जाता है। डॉ. शीला भी महिपाल और कल्याणी के विवाह जीवन की कमी से लाभ उठाकर अपनी स्वार्थ सिद्धि करती है। महिपाल का जीवन नद पत्नी और प्रेमिका रूपी दो कूलों से जुडकर प्रवहमान है। लोक लज्जा के कारण महिपाल न तो शीला से विवाह कर सकता है न तो परिवार से संबन्ध विच्छेद करता है।

कल्याणी के साथ का जीवन महिपाल को जरा भी सन्तोष नहीं प्रदान करता। महिपाल एक बार अपनी चिन्ता में कहता है - "कल्याणी के साथ उसका विवाह पुरखों की इच्छा से हुआ।"[1]

इस प्रकार नागर जी ने सिद्ध किया है कि अनमेल विवाह जीवन भर का अभिशाप है।

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.207
   किताब महल, दूसरा संस्करण 1964

नारी समस्या

अनादि काल से समाज में नारी जाति का शोषण होता आ रहा है । साथ ही साथ पुरुष की प्रमुखता भी सब कहीं दिखाई देती है । लेकिन समझना है कि "पुरुष और स्त्री समाज निर्माण के दो परस्पर पूरक तत्व हैं ।" "प्रकृतिदत्त शारीरिक भिन्नता (दुर्बलता भी कह सकते हैं) के अलावा उसमें जो कुछ भी भिन्न, दुर्बल या निचले स्तर का रहा है, वह विभिन्न कालों में विभिन्न परिस्थितियों या परिवेश की उपज है ।" अति प्राचीन काल में ऋषियों के काल से लेकर स्त्री जाति पुरुष को देव तुल्य मानती है । और एक शब्द में कहें तो स्त्री पुरुष का गुलाम बनकर जीती है । कमाऊ पुरुष का सिर उसकी कमाई पर आश्रित होकर जीनेवाली नारी के सामने ऊंचा रहता है । इसके अलावा स्त्री की अपेक्षा पुरुष का शारीरिक बल भी ज्यादा होने के कारण उसका दंभ बढ़ता रहता है । इन कारणों से नारी के प्रति पुरुष का अत्याचार जारी रहता है ।

नागर जी के उपन्यासों में नारी समस्या

नारी जीवन की विवशता नागर जी के उपन्यासों की प्रमुख समस्या है । नारियों की नाना प्रकार की समस्याओं को नागर जी ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है । "महाकाल" में मुट्ठी भर दाने के लिए बेची जानेवाली स्त्री की विवशता समाज की आँखों को खोलने में पर्याप्त है । "बूंद और समुद्र" की ताई लड़की के

---

1. भारतीय नारी - दशा - दिशा "- आशारानी व्होरा
   नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983, पृ.3

प्रजनन के कारण परित्यक्ता हो जाती है । उसी समय स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचारों के प्रति शब्द उठानेवाली वनकन्या भी नागर जी के उपन्यास का नारीपात्र है । अत्याचार से पीड़ित अपनी भाभी के बारे में वह कहती है - "भाभी का अपराध यही है कि वे औरत हैं और एकनाम्मिकली फ्री नहीं है[1] ।" महिपाल की राय में भारत का घर स्त्रियों केलिए कसाईखाना है[2] ।" स्त्री और पुरुष इन दोनों की सामाजिक मर्यादा में आज भी बडा भारी अन्तर है । नारी होना आज की सामाजिक स्थिति में अभिशाप है । वनकन्या के माध्यम से इसका कारण नागर जी स्पष्ट करते हैं कि स्त्री आर्थिक तौर पर पुरुष की आश्रिता है[3] । इस स्थिति को दूर करने के लिए नागरजी सामाजिक क्रान्ति का आह्वान करते हैं । वनकन्या के माध्यम से वे नारी जाति को उद्बोधित करते हैं - दूर कर नारी यह मोह । घूंघट के पट खोल ! पुरुष के अत्याचारों के खिलाफ संगठित होकर अपनी आवाज़ उठा । जिस दिन स्त्री जाति अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों का अन्त करने केलिए निश्चय पूर्वक खडी हो जायेगी उसी दिन दुनिया से हर तरह के अत्याचार मिट जायेंगे[4] ।"

नारी की विवशता "नाच्यौ बहुत गोपाल" में यथार्थ रूप में चित्रित हुई है । निर्गुनिया पुरुषजाति से पीड़ित होकर ब्राह्मणी से मेहतरानी बन जाती है । नारी जीवन की कटुता को स्पष्ट करती हुई वह कहती है - "दुनिया में दूर दूर देशों तक, औरत से बढकर और कोई भी ज्यादा गुलाम नहीं है[5] ।"

---

1. बूंद और समुद्र - अमृतलाल नागर, पृ.56
2. वही, पृ.111
3. वही, पृ.437
4. वही, पृ. 93
5. नाच्यौ बहुत गोपाल - अमृतलाल नागर, पृ.229

नारी जीवन के सन्दर्भ में ही बेमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, बालविधवा विवाह की समस्याओं को भी नागर जी ने उठाया है ।

सच्चे प्रेम से वंचित "बडी" जैसी स्त्रियों को प्रकाश में लाकर नागर जी ने स्वार्थी पुरुषों को चुटकी दी है । अपने जीवन में थोडे प्रेम की खोज में प्रेम का नाटक रचे विरहेश की प्रेमिका बन जाती है । परिस्थितिवश घुटन अनुभव करनेवाली स्त्रियां और उस कारण नीचे स्तर की ओर गिर पड़ने की दु:स्थिति में आ पहुंचनेवाली उनकी हालत हृदयविदारक है । अन्त में विरहेश से ताडित और पीडित बनकर दुःख अनुभव करनेवाली बडी को देखकर भारत के ऐसे पुरुषवर्ग की ओर समाज निन्दादृष्टि डालता है । पातिव्रत्यनिष्ठा का उद्घोषण करनेवाली भारतीय संस्कृति को कलंक लगानेवाला प्रधान कार्य भारत के पुरुष ही हैं, कोई सन्देह नहीं, इस नग्न सत्य के प्रति आंखें खोलने का समय बीत चुका है । नागर जी ने इस प्रकार एक व्यापक सामाजिक आधार फलक पर संपूर्ण भारतीय जीवन की समस्या को आबद्ध कर दिया है[1] ।

सामाजिक प्रगति के लिए अन्तर्जातीय विवाह आवश्यक है । अमृत और विष में इस प्रकार के बन्ध का समर्थन किया गया है । नागर जी का विचार है कि अन्तर्जातीय विवाह से मनुष्य संकीर्णता से उठकर व्यापक दायरे में आ जाएगा । लेकिन यह भी देखा जाता है कि विवाह के बाद पति-पत्नी के बीच क्षुब्ध भरी स्थितियां होती हैं[2] । भवानी शंकर और उषा का विवाह इसका मूल उदाहरण है । उनका अन्तर्जातीय विवाह असफल होता है ।

---

1. बूंद और समुद्र, पृ॰180
2. अमृत और विष, पृ॰110

नागर जी ने रमेश और रानीबाला के विवाह से अन्तर्जातीय विधवा विवाह को सफल दिखाया है । अमृत और विष में अरविन्दशंकर के अपने अनुभव को बताते नागरजी स्पष्ट करते हैं कि ऐसे विवाह के अधिकांश लोग सुखी और सन्तुष्ट हैं । अरविन्दशंकर का जीवनानुभव है - "हिन्दू पति, मुसलमान या ईसाई पत्नी, ईसाई या मुसलमान पति और हिन्दू पत्नी - ऐसे जोडे अब दिनों दिन क्रमश: बढ रहे हैं औरनिजी अनुभव से जानता हूं कि उनमें अधिकांश सुखी, सन्तुष्ट और आबरूदार, बाल बच्चेदार हैं[1] ।" अन्त में नागर जी अपनी ऊंची अभिलाषा प्रकट करते हैं कि जाति, वर्ण और धर्म की चिन्ता विवाह में न हो जाय । डा॰ आत्माराम के माध्यम से नागरजी अपना अन्तिम निर्णय देते हैं - "अब इस देश में शादियां इस तरीके से होनी चाहिए कि उन्हें देखकर कोई यह न कह सके कि यह हिन्दू की शादी है या मुसलमान की या क्रिश्चियन की हो रही है। समाज के सामने नवदम्पति एक दूसरे को स्वीकार करें और समाज में स्थान पाएं । इससे हमारी जातीय और सांप्रदायिक भेद-भावनाएं मिटेंगी[2] ।"

नारी समस्या से संबन्धित एक समस्या है दहेज की समस्या । यह समाज का एक सिरदर्द है । इस भार से लदे हुए महिपाल कहता है - "मूर्ख से मूर्ख वर के लिए भी कम से कम तीन चार हज़ार का दहेज देना होगा और इतना ही रुपया ऊपर से लग जायेगा - यह सात-आठ हज़ार की रकम में चुकाऊंगा कहां से[3] ? "अग्निगर्भा" की सीता भी इस दहेज की कमी के कारण पीडित होती दिखाई देती है[4] ।"

1· अमृत और विष, पृ॰674
2· वही, पृ॰470
3· बूंद और समुद्र, पृ॰107
4· अग्निगर्भा, पृ॰85

इस प्रकार अनमेल विवाह, बालविधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, दहेज की समस्या आदि नारी जाति से संबन्धित समस्याओं का कुप्रभाव मुख्यत: नारी पर ही पड़ता है । समाज में नारी क्रियाशील रहे तो वह सामाजिक सभी प्रकार के उदात्त संस्कारों को जन्म दे सकेगी ।

वेश्या समस्या

प्रेमचन्द के पूर्व के कथाकारों ने वेश्याओं को घृणा की दृष्टि से देखा है । लेकिन प्रेमचन्द के बाद के कथाकारों ने वेश्याओं को घृणाकी दृष्टि से नहीं देखा है । उन्होंने मानवतावादी दृष्टि से वेश्याओं का चित्रांकन किया है । भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में नारी के सम्मुख सतीत्व मूल्य का आदर्श कम ही रहा है । किन्तु भारत जैसे देश में नारी के समक्ष सतीत्व तथा पातिव्रत्य जैसे मूल्य सर्वोच्च रहे हैं । वहाँ भी वेश्या व्यापार अबाध गति से चल रहा है । भारत की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थिति ही इसका कारण है । अनमेल विवाह इस समस्या को उत्पन्न करने में सहायक रहा है । संयुक्त पारिवारिक जीवन का विघटन भी एक हद तक इसका कारण बन गया है ।

नागर जी ने "सुहाग के नूपुर" में माधवी के चरित्र के माध्यम से समाज की वेश्या समस्या को पाठकों के सम्मुख लाने का प्रयास किया है । वेश्या के गर्भ से उत्पन्न सन्तान का भविष्य भी वेश्या की भाँति असुरक्षित है । माधवी के माध्यम से लेखक ने समाज के ऐसे पुरुष वर्गों के प्रति अपना क्षोभ व्यक्त किया है जो अपने मनोरंजन के लिए वेश्याओं की सृष्टि करते हैं और स्वार्थता के कारण

उनके जीवन में तनिक भी सुधार लाना असंभव बना देते हैं । माधवी जन्म से वेश्या नहीं, परिस्थितिवश वह वेश्या बन गई है । इस कारण से कुलवधू का अधिकार और सम्मान मिलने केलिए वह व्यग्र हो उठती है । उसे अपनी पुत्री मणिमेखला के भविष्य की चिन्ता सताती है । यहीं उसका नारीत्व अधिक पीड़ित होता है । वह चेलम्मा से कहती है - कितना अच्छा होता मौसी यदि हम इस विपत्ति में न पड़कर कुलीनों के समान ही जीवन का व्यवहार कर पातीं ।[1]" वह अपना आचरण भी कुलीनों की भांति करती है । कोवलन से वह एकनिष्ठ प्रेम करती है । इसलिए वह नृत्य-नूपुरों के अतिरिक्त सुहाग के नूपुरों के लिए संघर्ष करती है । चेलम्मा उसे यथार्थ की भूमि पर लाने का प्रयत्न करती है । वह स्पष्ट शब्दों में माधवी को समझाती है - "कोवलन तेरे पैरों में सुहाग के नूपुर नहीं डालेगा, वह तो मानाइहन की बेटी कन्नगी को जाएंगे । हो सकता है कि तू, मैं, तेरी अम्मा और वे सब अभागिनें जो अपने अबोध बचपन में लूटी, चुराई और बेची जाकर परिस्थितिवश वेश्या बनती हैं, किसी न किसी बडे कुलीन और बडे धनाधीश की पुत्री हों परन्तु अब हमारा उस अनजाने की कुलीनता से क्या लेना देना । हम उनके आचरण क्यों अपनाएं । हम वेश्या हैं । हमें वेश्या ही रहना चाहिए[1]" चेलम्मा के इस कथन में वेश्याओं के मन में जमी निराशा ही प्रकट होती है । वे तो अपने मन की इच्छा के कारण इस वेश्यावृत्ति पर नहीं जातीं । विवश होकर ही वे ऐसा करती हैं । कुलवधुओं का आचरण अपनाने से कोई वेश्या कुलवधू नहीं बनती । लाखों प्रयास करने पर भी माधवी कन्नगी के सुहाग के नूपुर प्राप्त नहीं कर सकती और अपनी पुत्री मणिमेखला को समाज में उचित स्थान नहीं दिलवा सकती । इसलिए वैसी आशाएं छोडे देने का उपदेश ही चेलम्मा देती है ।

---

1. सुहाग के नूपुर, पृ.48

इससे नागरजी यह सत्य दिखाता है कि वेश्याएं भी स्त्री होती है । उन्हें भी समाज में प्रतिष्ठात्मक जीवन बिताने की आशा है । पर परिस्थितिवश ही उन्हें वेश्याएं बनना पड़ता है । ऐसे दैन्य जीवन से वेश्याओं को मुक्ति दिलाने और समाज में उन्हें मान्यता देने का कार्य नागरजी पाठकों को सौंपता है । वेश्या के रूप में जीनेवाली इस माधवी को एक कारुणिक अन्त ही समाज देता है। ऐसी वेश्याओं के उद्धार का प्रश्न भी नागरजी पाठकों पर छोड देता है ।

शतरंज के मोहरे में भी वेश्या समस्या का उद्घाटन नागर जी ने किया है । कुदसिया बेगम एक सुन्दर वेश्या है । पढी लिखी और संगीत में प्रवीण, विवेकशील एवं निर्भीक नारी है । अपने रूप एवं गुणों से नसीरुद्दीन को आकर्षित कर प्रेमपाश में बांध लेती है । माधवी की भांति कुदसिया भी सच्चे दिल से नसीरुद्दीन से प्रेम करती है । लेकिन दुर्बल बादशाह उस पर सन्देह की दृष्टि डालता है । सतीत्व के मूल्य के प्रति तत्पर होने के कारण विवश होकर वह आत्महत्या कर देती है । वेश्या होने पर भी सतीत्व का जीवन बितायी कुदसिया की अकाल मृत्यु का जिम्मेदार समाज ही है, यह सत्य नागरजी व्यक्त करते हैं ।

कुदसिया बेगम की ही भांति भुनी भी सतीत्व के मूल्य के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग कर देती है । तेरह वर्षीय कन्या भुनी पर अंग्रेज़ अफसर स्मिथ बलात्कार करता है । अपने सतीत्व का भंग होने के कारण वह पुनर्विवाह नहीं करती । बिरादरी से तिरस्कृत होकर कुछ खाये पिये बिना वह मृत्यु का आह्वान करती है ।

दिग्विजयी ब्रह्मचारी के मुसलमान भाई की पुत्री कुलसुम शैशवकाल में अनाथ हो जाती है । जीवन के कटु अनुभव उसे निर्भीक बना देते हैं । गुजरों द्वारा उसका अपहरण किया जाता है

तथा उसे वेश्याजीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया जाता है। सैकडों लडकियों को प्रतिदिन कुलसुम की भाँति उडाकर उन्हें वेश्याएँ बना देते हैं। यह समस्या भी समाज के आगे नागर जी रखते हैं।

"सात घूँघटवाला मुखडा" में भी नागर जी ने नारी शोषण समस्या की ओर उँगली उठायी है। मुश्तरी, नवाब समरू की मुँहलगी दासी थी। मुश्तरी समझती है कि बेगम समरू अपने पति से प्रेम नहीं करती बल्कि विश्वासघात करती है। बेगम समरू प्रतिहिंसा की ज्वाला में उसे भस्मसात कर देती है। यहाँ नागर जी ने नारी की नारी के प्रति प्रतिहिंसा को दर्शाया है। "सात घूँघटवाला मुखडा में नागर जी ने दिखाया है कि पुरुष प्रधान समाज में सदैव नारी का शोषण किया गया है। उपन्यास के प्रारंभ में नारीक्रय का उल्लेख उन्होंने किया है। बशीर खाँ मुन्नी को "टामस" के हाथ बेच डालता है। बेचने के पूर्व उसे वेश्या बना देता है। पुरुष वर्ग नारी को अर्थार्जन का मार्ग तथा देहतृप्ति का साधन बनाकर उसका दुहरा शोषण करता है। नारी की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के लिए पूँजीपतिवर्ग और पुरुष जाति उत्तरदायी है।

"बूँद और समुद्र" में महिपाल स्त्री जाति की पराधीनता और विवशता को स्वीकार करते हुए कहता है - "हम देखते हैं कि औरत इस समय आम घरों में किसी न किसी रूप में बेइज्जती का जीवन बिताती है। छोटे आदमी कहलानेवालों को कौन कहे, बडे बडे सभ्य रईसों और पण्डितों के घरों में स्त्री जाति का दमन होता है, तरह तरह से उनका अपमान होता है। आज जहनियत में स्त्री घर का काम-काज, सबकी सेवा टहल करनेवाली और पुरुष के भोग की वस्तु होने के अलावा और कुछ भी नहीं। हाँ उसका एक महत्त्व अवश्य यह है कि वह बच्चे पैदा करनेवाली मशीन भी है। बच्चे चूँकि इन्सानी

जिन्दगी को बढाने केलिए अहम् ज़रूरी है, इसलिए उनका उत्पादन करनेवाली फैक्टरी का भी महत्व है[1]।"

नागरजी इस प्रसंग से व्यक्त करना चाहते हैं कि स्त्री और पुरुष का समान स्थान व अधिकार समाज में है। डॉ॰ सुरेश सिन्हा का कथन है - "मानवीय सृष्टि के आरंभ से ही नारी और पुरुष के परस्पर संबन्ध की अटूट श्रृंखला चली आ रही है[2]।" डॉ॰ राधाकृष्णन ने अपने धर्म और समाज नामक ग्रंथ में कहा है - "स्त्री को नौकरानी या घर की देखभाल करनेवाली गृहिणी समझकर ही व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए। पुरुष की भांति प्रत्येक स्त्री को भी अपनी आवेश की आग को हृदय के उत्तारण को और आत्मा की ज्वाला को विकसित करने का अवसर मिलना चाहिए[3]।" उनके स्वर में स्वर मिलाकर नागर जी भी महिपाल के ज़रिए अपनी राय प्रकट करते हैं कि मध्यवर्ग या उच्चवर्ग सब कहीं स्त्री का दमन होता है। पुरुष के अहं को बनाये रखने के लिए उसकी सन्तान की ज़रूरत है। उसको प्रजनन देनेवाली फैक्टरी के रूप में भी स्त्री का महत्व है। इसलिए स्त्री को समाज में पुरुष से नीचा करके दिखाना कभी तो ठीक नहीं। उन्हें समान स्थान व आदर देकर अपने साथ ले जाने की जिम्मेदारी नागरजी समाज के कन्धे पर रखते हैं।

नागर जी केवल समाज के बाह्यरूप के चिन्तक नहीं थे बल्कि जनमानस में उठते प्रश्नों व समस्याओं के प्रति भी सतर्क रहे हैं। वे एक जागरूक चिन्तक के रूप में समाज में व्याप्त सभी समस्याएं

---

1. बूंद और समुद्र - अमृतलाल नागर,
   किताब महल, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण 1964, पृ॰108
2. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना - डॉ॰सुरेश सिन्हा,
   अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1964, पृ॰58
3. धर्म और समाज - डॉ॰राधाकृष्णन
   राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, तृतीय संस्करण 1963, पृ॰186

देखते समझते रहे । भारत की आज़ादी के साथ साथ वैज्ञानिक चेतना समाज की अन्ध परंपराओं पर प्रहार करने लगी । समाज की यथार्थ वादी समस्याओं की रुग्णावस्था को प्रकट करते हुए समाज के नृशंस अत्याचारों के विरुद्ध नागरजी ने अपनी तूलिका चलायी । इन समस्याओं में नागर जी के सामने नारी एक कठिन समस्या बन गई । वे नारी की वकालत नहीं करते । पर वे मानते हैं कि नारी पुरुष की तरह ही समाज की एक स्वतंत्र इकाई है। वह भी समाज रूपी समुद्र की सार्थक बूंद है। नारी का भी स्वतंत्र अस्तित्व है । सदियों से चली आती परंपरा के कारण पीड़ित नारी की कराहों ने सामाजिक चेतना को दर्शित किया है ।

सांप्रदायिक समस्याएं

सांप्रदायिक समस्या का मूलकारण संकीर्ण धार्मिक दृष्टिकोण है । सांप्रदायिकता के कारण ही पाक् विभाजन हुआ । सांप्रदायिकता की दीवारों के अन्दर रहनेवालों का अपना संसार है, सोच और मनन का अपना दृष्टिकोण है । धर्म किसी न किसी रूप में सभी समाजों में है । सभी समाजों ने ईश्वर की सत्ता में अपना विश्वास व्यक्त किया है । धर्म की शक्ति प्रबल है । भौतिकवादी युग में भी धर्म का अपना अस्तित्व है । देवी देवताओं की आराधना करना परंपरागत धर्म था । लेकिन आज धर्म मानव धर्म का पर्याय बना है । धर्म का प्रमुख लक्ष्य कर्म की प्रेरणा देना है । ज्ञान की सार्थकता कर्मनिष्ठा में है । धर्म मानव कल्याण के कार्य में लीन रहता है । युवकों के मन में परंपरागत धार्मिक भावना, अन्धविश्वासों रूढियों तथा आडंबरों के प्रति अनास्था का स्वर है । सांप्रदायिकता की दीवार को तोड़कर धार्मिक एकता और एकेश्वर का विश्वास

जनता में बढाने का सफल प्रयत्न अपने उपन्यासों में नागर जी ने किया है । एक हद तक राजनीतिक दल भी सांप्रदायिकता को बढावा देता है । चुनाव को जीतने के लिए राजनैतिक नेता सांप्रदायिक भावना को उत्तेजित करते हैं । सांप्रदायिकता मानवीय गुणों को नष्ट करनेवाली और समाज की उन्नति में विघात पहुंचानेवाली है । नागर जी के मत में हिन्दू मुसलमानों का भेदभाव शहरों में है, गांव में नहीं है । इस सन्दर्भ में "अमृत और विष" का हिदायत कहता है - "अमां, ये हिन्दू-मुसलमान का झगडा तो हमने सिर्फ यहां शहर ही में आके देखा, हमारे गांव में तो यह तमाशा अभी तक दिखलाई नहीं देता है ।[1]" नागर जी निश्चय करते हैं कि यहां सांप्रदायिकता बीसवीं सदी में ही पनप गई । धर्म के इन भेद भावों को समाज से दूर करके सच्ची आस्थाओं को स्थापित करने का आग्रह अरविन्दशंकर के माध्यम से नागर जी ने प्रकट किया है ।[2]

केवल धर्मनिष्ठ व्यक्ति का आदर करने और पाखण्डी को छोड देने का आग्रह नागर जी का है - नारद के माध्यम से नागरजी अपना यह आग्रह प्रकट करते हैं - "मनुष्य का सबसे बडा स्वामी उसका धर्म है और जो व्यक्ति धर्म का ढोंग करता हुआ भी वास्तविक धर्माचरण छोड दे, उसे कोटि वैरी सम तज देना चाहिए, भले वह परम स्नेही ही क्यों न हो[3] ।"

सांप्रदायिकता का मूलकारण धर्म रहा है। धार्मिक आस्था से आत्मा को बल मिलता है । धर्म मानव के हृदय को शिवत्व की भावना से परिपूर्ण कर देता है । इस बात का समर्थन करती हुई कन्या कहती है - मैं ने कभी इस बात पर सीरियसली

---

1. अमृत और विष, पृ.463
2. वही, पृ .47।
3. एकदा नैमिषारण्ये, पृ.216

विचार तो नहीं किया कि ईश्वर है या नहीं, और विचार किया भी तो किसी तर्क से ईश्वर काट नहीं पाई । अच्छे बुरे समय में औरों की तरह वह मेरे मन का सहारा भी है[1] ।"

नागर जी एक ऐसे धर्म की ज़रूरत मानते हैं जिसमें सर्वभूत की हितचिन्ता और मैत्री स्थापित रहे और जिसके मूल में दया, करुणा, आत्मविश्वास तथा लोक कल्याण की भावना निहित होती है । व्यास सोमाहुति के अनुसार "भजन से भक्ति जागती है तप और भय से ज्ञान जागता है और भक्ति भी । अतः भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनों का उचित समन्वय ही लोक-धर्म है। हमें इसी सिद्धान्त को लेकर धर्म मार्ग पर आगे बढना चाहिए[2] ।"

नागर जी देवी देवताओं के मूर्ति को भक्ति और श्रद्धा का भाव मन में जागृत करने का साधन मानते हैं ! इस संबन्ध में सज्जन कहता है - "ये प्रतीक तो सहज एक बहाना है जिनके सहारे अनायास हमारा मन अपनी इच्छा शक्ति को किसी दिशा की ओर बढाने केलिए जगाता है । वह चेतना ऊपरी सतह पर मन की किसी अनजानी गहराई से आती है[3] ।"

मूर्ति पूजा को नागरजी गलत मानते हैं । मूर्ति उपासना में वे कोई सत्य नहीं देखते । सज्जन की ओर से नागर जी का कथन है - "आखिर इन्सान इन मूर्तियों में देखता किसको है, रीझना

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.23।
2. एकदा नैमिषारण्ये, पृ.279
3. बूंद और समुद्र,पृ574

किस पर है । हिन्दुस्तान के अनेक मन्दिरों में जाकर भी उसने केवल वहाँ की कला ही देखी है, भगवान को नहीं ।"[1] वे कहते हैं कि धार्मिक आस्था आत्मिक बल के रूप में स्वीकार्य है । ज्ञान, क्रिया, इच्छा इन तीनों में शिवत्व की भावना मानव-हृदय में उत्पन्न होती है । एकदा नैमिषारण्ये में ब्राह्मण और श्रमण संस्कृतियों का जो समन्वय सामंजस्य राष्ट्रीय स्तर पर हुआ उसे उन्होंने रेखांकित किया है[2] ।

भारतीय दर्शन की मूलचेतना में धर्म का मूल स्वर है ज्ञान और कर्म । मृत्यु के भयचक्र में पड़कर परलोक चिन्तन में फँसाये रखनेवाला दर्शन नितान्त जड और आत्म घातक है । स्वामी विवेकानन्द ने कहा है - मनुष्य को आत्म विश्वास रखना चाहिए ।

हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या

नागर जी के उपन्यासों में दिखाई पडनेवाली सांप्रदायिक समस्याओं में प्रमुख है हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या । भारत में चिरकाल से हिन्दू-मुसलमान आपस में लड़ते झगड़ते रहे हैं । जिन्हें भाई भाई के समान जीना है वे ही आपस में धर्म के नाम पर इस प्रकार शोर मचाते रहते हैं कि भारत की भावात्मक एकता में विघात पड़ जाता है । हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या के साथ साथ भारत की भावात्मक एकता की समस्या भी नागर जी के उपन्यासों में अपना अलग स्थान कायम किये हुए हैं ।

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.166
2. हिन्दी उपन्यास - उत्तर शती की उपलब्धियाँ - डॉ.विवेकी राय, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1983, पृ.25

नागर जी हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक हैं । "अमृत और विष" में इस एकता का स्वर सुनाई पड़ता है । "जब तक हिन्दुस्तान में यह जटिल जातिभेद रहेगा, हम लाख सुधार करने पर भी समाज को मानव समाज के रूप में प्रतिष्ठित करने में असमर्थ रहेंगे[1] ।" सच्चे मानव समाज की स्थापना केलिए इस प्रकार नागर जी व्यक्ति व्यक्ति की एकता पर बल देते हैं । जो धर्म इस एकता में विघातक है वे नागरजी को मान्य नहीं हैं । हिन्दू-मुस्लिम एकता केलिए वे निरन्तर प्रयत्नशील रहे हैं । और उनके उपन्यासों के पात्र इसी ओर काम करते नज़र आते हैं । "मानस का हंस" में तुलसीदास भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्न करते दिखाई पड़ते हैं । नागर जी के तुलसीदास जाति-पाँति, हिन्दू-मुसलमान जैसी दुर्बलताओं को प्रत्येक स्तर पर नकारते हैं । वे कहते हैं - जाति-पाति, वर्ण-वर्ग आदि सब कुछ अपनी जगह पर ठीक है पर एक जगह मनुष्य केवल मनुष्य होता है[2] ।" "जन्मभूमि" के प्रकरण को लेकर हिन्दू-मुसलमानों के बीच जब संघर्ष उत्पन्न होता है तब गोस्वामी जी कहते हैं - "रामभद्र, आप साक्षी हैं, मैं ने इस मसजिद से अपने मन में कभी कोई दुर्भाव नहीं रखा । पूजाभूमि इस रूप में भी पूज्य है । अब भी वहाँ निर्गुण निराकार परब्रह्म के प्रति ही माथा झुकाया जाता है[3] ।" सेठ बांकेमल" में भी हिन्दू-मुसलमानों की एकता की जबरदस्त इच्छा प्रकट की है । सेठ बांकेमल कहता है - "जहाँ देखो साला हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हो रहा है । वह कहवे है कि हिन्दू ने मेरी निवाज बिगाड़ दीनी वो कहें वे कि मुसलमान ने मेरी गाय काट ली । खुमकेट साले ।

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.557
2. मानस का हंस, पृ.325
3. वही, पृ.302

इन फोक्सों को इति भी तमीज नहीं आई कि हम तो आपस में सिर फोड रहे हैं और अंग्रेज़ साले हमारी छाती पर पैठ खून पी रहे हैं हमारा ।" इन प्रसंगों से नागर जी की प्रबल इच्छा प्रकट होती है कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच का भेदभाव दूर हो जाय और सभी मनुष्य अपने कर्म को सुधारते हुए एकेश्वर की उपासना करते रहें ।

देश की भावात्मक एकता की समस्या

भारत नाना धर्मों एवं जातियों का संगम स्थान रहा है । प्राचीन काल से ही यहाँ पर विभिन्न जातियों और धर्मों के बीच समन्वय स्थापित करने के निरन्तर प्रयत्न होते रहते हैं । फिर भी आज तक यह समस्या समस्या ही बनी है । कितने ही महापुरुषों ने इस पुण्यभूमि पर जन्म ग्रहण किया और शान्ति के नये मार्ग खोल दिये जिनपर चलते हुए व्यक्ति व्यक्ति प्रेम करना सीख ले और अपनी आन्तरिक एकता के बारे में ज्ञान प्राप्त करें । इन सबके बावजूद भावात्मक एकता की समस्या भारत में आज भी वैसे ही बनी हुई है । नागर जी की दृष्टि विशेष रूप से इस समस्या पर पड़ी है । उन्होंने इसका अध्ययन ठीक तरह से किया है, इसमें गहरे उतरे हैं और अपने उपन्यासों में इस समस्या का समुचित समाधान निकालने का प्रयास भी किया है । इस समस्या के परिहार के उद्देश्य से नागर जी ने "एकदा नैमिषारण्ये" की रचना की । एक अखण्ड आर्यावर्त नागरजी की कल्पना थी । विभिन्न धर्म और जातियों के देश भारत को एक ही धर्म और जाति का प्रश्रय मिलना चाहिए । इसी लक्ष्य की प्राप्ति ही "एकदा नैमिषारण्ये" में की है । पौराणिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित इस उपन्यास के जरिए नागर जी ने अनेकता में एकता की

---

1. सेठ बांकेमल, पृ.84

स्थापना करने का प्रयत्न किया है । अपने उद्देश्य को लेखक ने भूमिका में स्पष्ट किया है । "नैमिष आन्दोलन को ही मैं ने वर्तमान - भारतीय हिन्दू संस्कृति का निर्माणकरनेवाला माना है । वेद, पुनर्जन्म, कर्मकाण्डवाद, उपासनावाद, ज्ञानमार्ग आदि का अन्तिम रूप से समन्वय नैमिषारण्य में हुआ और यह काम मुख्यत: एक राष्ट्रीय दृष्टि से ही किया गया था[1] ।" नैमिषान्दोलन में एक लाख श्लोकों वाली महाभारत संहिता का पारायण तथा अन्य पुराण ग्रन्थों का पठन-पाठन किया गया । इससे एक धर्म की समन्वयकारिणी भावना को प्रश्रय दिया गया । बाहरी दुनिया से अनेक लोग यहाँ आ बसे और अनेक संस्कृतियों का जन्म भी यहाँ हुआ । विभिन्न देवी-देवताओं की आराधना यहाँ होती थी । इस प्रकार की आराधना ने धर्म की मूलभावना को नष्ट कर दिया । अनेक देवी-देवताओं की कल्पना ने आडंबरों को जन्म दिया । कालान्तर में विदेशियों के आक्रमण से धार्मिक आडंबरों की बहुलता हो गई । सांस्कृतिक-धार्मिक विचारधारा ब्राह्मण और श्रमण इन दो श्रेणियों में बंट गई थी । चार वर्ण, चार आश्रम, पशुबलि यज्ञादि में ब्राह्मण संस्कृति विश्वास करती थी । श्रमण परंपरा में यज्ञ याग की अपेक्षा आत्मविद्या की महिमा थी । "आत्मचिन्तन, संयम, समभाव, सत्य, अहिंसा, तप, दान, उपवास, संन्यास आदि श्रमण संस्कृति की विशेषताएं हैं[2] ।" वर्ण व्यवस्था ब्राह्मण संस्कृति की एक खासियत थी । क्षत्रिय और वैश्य अपनी शक्ति और संपत्ति के बल पर प्रतिष्ठा पाते थे जबकि शूद्र और अन्य जातियाँ अछूत कहकर निंद्य बन जाती थीं । कुछ लोग शैवभक्त थे और कुछ विष्णुभक्त । ये दोनों कट्टर शत्रु थे । नागजाति का वैभव भी वहाँ था जो नाग की पूजा, यज्ञ, तंत्र-मंत्र आदि में विश्वास करता था ।

1· एकदा नैमिषारण्ये - अपनी बात, पृ·13

2· वही, पृ·13

बौद्ध और जैनधर्म के लोग भी थे जिनके प्रमाण अलग थे । इन सभी तरह के संघर्षों के वातावरण पर ही नैमिषारण्य के महासत्र की पृष्ठभूमि तैयार की जाती है । वैष्णवमुनि नारद की प्रखर बुद्धि और भार्गव ऋषि सोमाहुति के तपोबल ने इस अनेकता में एकता स्थापित करने का संकल्प किया ।

भारतीय समाज नानाविध जातियों एवं धर्म-संप्रदायों में विभक्त था । इससे राष्ट्र की एकात्मकता के लिए बहुत बड़ा संकट उत्पन्न हो गया था । ब्राह्मण संस्कृति में बाह्याडंबर और बहुदेवोपासना उत्पन्न होकर धर्म की तात्त्विक भावना से वह बहुत दूर हो गयी थी । शैव और वैष्णव में भी संघर्ष उत्पन्न हो गया था । इस द्वन्द्वात्मक परिस्थिति में नैमिषारण्य की धर्म सभा के आयोजन की आवश्यकता का अनुभव लोकमानस को हुआ । इसके लिए सोमाहुति भार्गव, नारदमुनि, शैव साम्राज्य के गिरागुरु गणपतिनाग, महात्मा सौति आदि धर्म पुरुषों ने प्रयत्न करने का संकल्प किया । कथा बांचने में पारंगत महात्मा सौति को महर्षि शौनक ने बुलाया और उनसे नैमिषारण्य को कथा विश्वविद्यालय का स्वरूप प्रदान किया । वहाँ के धर्म सम्मेलन में सूत शौनकादि ऋषियों ने विभिन्न पुराणों का पठन-पाठन कर जनमानस को भावात्मक एकता के सूत्र में आबद्ध करने का प्रयास किया । इस आन्दोलन का सूत्रपात भार्गव सोमाहुति ने किया । उन्होंने वैष्णव मुनि नारद और शिव साम्राज्य के गिरागुरु गणपतिनाग को नैमिषारण्य के सांस्कृतिक महायज्ञ में आमंत्रित किया और राष्ट्रीय एकता के लिए उनका सहयोग पाया । इस प्रकार भारत की भावात्मक एकता में सूत, शौनक आदि ने अपना सहयोग प्रदान किया । नारद ने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य और चातुर्यपूर्ण नीतियों से राजा महाराजाओं को प्रभावित किया और राष्ट्रीय जागरण में सक्रिय सहयोग दिया ।

3. राजनैतिक समस्याएं

अंग्रेज़ी शासन के प्रभुत्व में अंग्रेज़ी और नये आविष्कारों ने मनुष्य को विवेकशील और बौद्धिक बना दिया। इसी समय पूंजीपति वर्ग अंग्रेज़ों से राजनैतिक और आर्थिक सहायता लेकर निम्न वर्ग का शोषण कर रहा था। प्रेमचन्द ने अपने युग के इन सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया जो आज तक के उपन्यासों में बहुत विरले ही प्राप्त हुआ है। नागरिक जीवन की अपेक्षा ग्रामीण जीवन के चित्रण की ओर ही प्रेमचन्द के संवेदन हृदय का लगाव था। नागर जी ने लखनऊ चौक को ही अपने उपन्यासों का स्थान चुन लिया।

नागर जी के उपन्यास एवं राजनैतिक वातावरण

नागर जी गान्धीवादी सिद्धान्तों का समर्थन करने वाले हैं। साथ ही साथ समाजवादी व्यवस्था के प्रति भी वे आस्थावान थे। "बूंद और समुद्र" में महिपाल कहता है - "हर आदमी काम और रोटी पाता है तो मेरा भी जी चाहता है कि हिन्दुस्तान में कम्यूनिज़म आ जावे।"[1] पूंजीवाद को समाप्त करके साम्यवाद की स्थापना कर जनता की आर्थिक उन्नति करना वे चाहते हैं। "बिखरे तिनके" में पुरानी पीढ़ी के लोगों के साथ युवा पीढ़ी के संघर्ष और चोर बाजारियों के विरूद्ध प्रगतिशील युवकों के संघर्ष को व्यक्त किया है। बिल्लू और उसके साथी चुन्नीलाल के चोर बाजारियों के गुप्त भण्डारों का पता लगाते हैं। सरकार से ऐसे व्यक्तियों के विरूद्ध कड़ी कार्रवाइ करने का आग्रह करते हैं।

---

1. बूंद और समुद्र, पृ. 120

बिल्लू का साथी हरसुख आज के राजनीतिज्ञों को पूंजीपतियों से संबद्ध मानता है। वह कहता है सामाजिक कुरीति का अन्त करने पर ही समाजवादी व्यवस्था स्थापित हो सकती है - "ये लोग पूंजीपति समाजवादी हैं, पूंजी पहले, समाजवाद में हमें यदि कुछ करना ही है तो इनका पोषण करनेवाली व्यवस्था को बदलना होगा[1]।" समाजवादी व्यवस्था की चाह रखनेवाले युवकगण अपनी कमाई से अपने परिवार का पालन करना चाहते हैं। बिल्लू का एक साथी कहता है "माँ-बाप दो व्याहने लायक बहनें - उनके लिए रोटी कमाना ही मेरे लिए सच्ची देश सेवा है[2]।" नागर जी ने अपने उपन्यासों में स्पष्ट किया है कि जीवन के प्रति भारतीयों का आस्थावादी दृष्टिकोण नष्ट हुआ है। वे मानव में आत्मविश्वास जागृत करने की बात करते हैं। "बूंद और समुद्र" का प्रत्येक पात्र आज की राजनीति में अनासक्ति व्यक्त करता है। वनकन्या के माध्यम से नागरजी ने यह बात व्यक्त की है[3]।" इस राजनीतिक स्थिति के प्रति सज्जन भी असन्तुष्ट है। वे कहते हैं - "मैं पोलिटिक्स से हेट करता हूँ[4]।"

समाज के विकास के लिए नागरजी राजनीति को आवश्यक समझते हैं। वनकन्या सज्जन से राजनीतिक पार्टियों के बारे में कहती है कि वे समाज से कटकर सत्ता के पीछे दौड रही है। तो सज्जन कहता है कि जनता उन्हें आप ही लूट खोट कर देगी। किन्तु वनकन्या राजनीतिक मूल्य के प्रति आस्था रखती हुई कहती है - लूट खोट करने से समाज में व्यवस्था नहीं आती, अराजकता मानव समस्या का हल नहीं। .... समाज की गाडी का स्टीयरिंग

---

1. बिखरे तिनके, पृ.77
2. वही, पृ.105
3. बूंद और समुद्र, पृ.128
4. वही, पृ.128

व्हील पॉलिटिक्स ही है[1]।" नागर जी का मत है राजनीति में सांस्कृतिक दृष्टि के आने से शक्ति उत्पन्न होती है। राजनीति में निहित स्वार्थ को स्पष्ट करते हुए नागर जी कहते हैं कि राजनीति केवल दाव-पेंचों का अखाडा है, मानव हित के आदर्शों से हीन है। वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति नागर जी का आक्रोश उल्लेखनीय है "आज इस देश में क्या कांग्रेस, क्या सोशलिस्ट पार्टी, कम्यूनिस्ट पार्टी, जनसंघ, हिन्दू महासभा आदि जितनी भी राजनीतिक पार्टियां हैं सब अधिकांश में एक दूसरे से बढ़कर बेईमान, क्षुद्र आकांक्षाओंवाले जाल साज, दंभी और मगरूरों द्वारा अनुशासित हैं, आदर्श और सिद्धान्त तो महज शिकार खेलने के लिए आड की टट्टियां हैं[2]।" स्वतंत्रता के पश्चात् नेता लोगों ने जनता के हित के लिए काम नहीं किया बल्कि अपने स्वार्थलाभ के लिए ही रहे। इसलिए किसी दल के प्रति जनता में आस्था नहीं रही। शासन के प्रति जनता में आक्रोश का भाव है इसे भी नागर जी ने अपने उपन्यासों में व्यक्त किया है। अपनी जन्म शताब्दी के अवसर पर अरविन्दशंकर भारत की राजनीति तथा साधारण जनता की दयनीय स्थिति के बारे में चिन्तन करता है। "जहन्नुम में जाय ये बेपेंदी की सरकार और इसके कर्णधार। इन्होंने चालीस करोड आदमियों को कुत्तों का सा जीवन बिताने पर मजबूर कर रखा है[3]।" वह याद करता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के नैतिक मूल्यों का ह्रास हो गया। अपने बचपन से लेकर आज तक के भारत का वह प्रत्यावलोकन करता है - "आजादी के बाद आया फूट, असंगठन, विलास, व्यभिचार, लूट, डाके, खून और काले बाज़ार का जमाना[4]।"

---

1. बूंद और समुद्र - अमृत लाल नागर, पृ.145-146
2. वही, पृ.582
3. अमृत और विष, पृ.34
4. वही, पृ.103

नागर जी को मालूम है स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे राजनीतिज्ञों में भावनिष्ठा या आदर्शवादिता नहीं है। अरविन्द शंकर के माध्यम से वे कहते हैं - "सरकार में जाने के बाद हमारे बडे बडे नेताओं में अब वह भावनिष्ठा और सिद्धान्तवादिता नहीं रह गई जो उनमें आजादी मिलने से पहले दिखाई देती थी[1]।" "नाच्यौ बहुत गोपाल" में भी नागर जी ने वर्तमान राजनीतिक स्थिति को व्यक्त किया है। श्री• निर्गुन मोहन कहता है - "इस डिमोक्रेसी में साहब पूछिये नहीं, अन्धेर मच गया है। काम करने की योग्यता किसी में हो या न हो मगर किसी का चमचा बनना आवश्यक है[2]।" नागर जी ने "बिखरे तिनके" में अधिकारी वर्ग से लेकर निचली श्रेणी तक के लोगों का भ्रष्टाचार तथा रिश्वतखोरी को सच्चे रूप में अंकित किया है। ऐसा भ्रष्टाचरण करनेवाला हेल्थ अफसर और उसके पी•ए• गुरसरनलाल। गुरसरनलाल नगरपालिका के स्वास्थ्य विभाग में छप्पन वर्ष तक सेवा करने के बाद भी एक्स्टेंशन लेने के लिए प्रयत्नशील हैं जिससे सरकारी सेवा से खूब धन कमा सके। इसके लिए किसी राजनीतिक नेता से सिफारिश करवाते हैं। किन्तु हेल्थ अफसर से अनबन होने के कारण उनकी विपरीत रिपोर्ट के अनुसार उन्हें एक्स्टेंशन नहीं मिल पाती। इसी प्रकार राजनीतिक नेताओं का चुनाव जीतने का कला कौशल तथा उनके दुहरे व्यक्तित्व का पर्दाफाश किया है। वे चुनाव जीतने के लिए युवाशक्ति और छात्र संघों का सहारा लेते हैं और पूंजीपतियों से भी वे नाता जोडते हैं। छात्र-संगठन अपने लक्ष्यों की सिद्धि के लिए किसी भी राजनीतिक दल का समर्थन करते हैं। बबलू मंत्री की कोठी में सोते बिल्लू स्वतंत्र भारत की राजनीति के संबन्ध में चिन्तन करता है। बिल्लू का यह चिन्तन नागर जी की राजनीति विषयक मूल्यदृष्टि को स्पष्ट करता है। - "क्या यही है स्वतंत्र-

---

1• अमृत और विष, पृ•38

2• नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ•35

भारत का मन्तव्य । हवेली की दीवालें नींव से लेकर ऊपर तक चिटक चुकी है । दरारें बढ़ती जा रही हैं । ······ राजनीति का सत्य चुनाव के वोटों तक सीमित हो गया है । चोर से हाँ और शाह से भी हाँ । तुम अपना स्वार्थ पूरा करो और मैं अपना ।[1]" नागर जी के उपन्यास के पात्र देश की विविध बुराइयों के मूल में राजनीतिक पार्टियों का हाथ दर्शाया है । "बूंद और समुद्र" के महिपाल के माध्यम से नागर जी कहते हैं - "आज के लोक जीवन में फैले अविश्वास का दूसरा कारण आज की राजनीतिक पार्टियाँ हैं । ············ राजनीति केवल दाव-पेंचों का अखाड़ा है, मानवहित के आदर्श से हीन व्यक्तिगत अहंकार के कारण राजनीति के खिलाड़ियों की बुद्धि, चतुराई और कार्यकुशलता बहक गई है[2] ।" इन भ्रष्टाचारों के कारण नागरजी गुलामी के दिनों को इससे महत्वपूर्ण मानते हैं । इन कुरीतियों को हटाने के लिए नागर जी राजनीति में संस्कृति के महत्त्व को रेखांकित करते हैं । "राजनीति में कलचर पेट्रोल की तरह ज़रूरी है जिसके बिना गाडी ह ी नहीं चल सकती[3] ।"

आज की राजनीति का सिद्धान्त सिर्फ वोट डालने में सीमित है । इस चुनाव प्रणाली को नागर जी अर्थहीन समझते हैं । महिपाल चुनाव की अर्थहीनता का समर्थन करते हैं - "चुनाव से लाभ क्या ? करोडों रुपये खर्च करके भी जनता का सही मत न जाना जा सका । सच तो यह है कि जनता का किसी राजनैतिक पार्टी में विश्वास ही नहीं, क्यों कि समय ऐसा है जिसमें सहानुभूति और सद्भावना का प्राय: लोप हो गया है । कोई राजनीतिक पार्टी जनता के बीच में कोई विशेष काम ही नहीं कर रही है[4] ।"

1· बिखरे तिनके, पृ·90

2· बूंद और समुद्र, पृ·605

3· वही, पृ·150

4· वही, पृ·456

रिश्वतखोरी से अपराधियों को सुरक्षा देने की स्थिति नागर जी ने "करवट" में व्यक्त की है । पादरी जेकिन्स की नाक और जीभ को काटकर हाथ को निकम्मा करके गये शिवरतन वजीर अमीनुद्दौला को रिश्वत देकर सुरक्षा पाता है[1] ।

नागर जी ने "शतरंज के मोहरे" उपन्यास के ऐतिहासिक प्रतिपाद्य के माध्यम से वर्तमान भारत की राजनीतिक गतिविधियों की दुर्बलताओं को व्यक्त करने का प्रयास किया है । दिग्विजयी ब्रह्मचारी के माध्यम से लेखक ने सामन्तवादी मूल्यों की कटु आलोचना करते हुए सामान्य जनता के दुख-दर्द को अभिव्यक्त किया है । नवाब असफुद्दौला ने ईमारतें बनवाने के लिए अवध की प्रजाओं के करोडों रूपये फूंके[2] ।"

नागर जी ने "मानस का हंस" में मुगलकालीन शासन में राजनीतिक मूल्यों को उपस्थित किया है । बादशाह अकबर के शासन के पूर्व और बाद की परिस्थितियों को चित्रित किया है । तुलसी कहते हैं - "अकबरशाह के समय में थोडा बहुत सुशासन आया था, अब वह भी समाप्त हो गया । शासक दिल्ली में रहता है । उसे नित्य हीरे, मोती, जवाहरात और सोना चाहिए । स्त्री और धन की लूट का नाम ही कलिकाल है, सारे पाप यहीं से आरंभ होते हैं[3] ।

1· करवट, पृ·16-17

2· शतरंज के मोहरे, पृ·335

3· मानस का हंस, पृ·90

आर्थिक समस्याएं

नागर जी ने अपने उपन्यासों पर आर्थिक समस्या पर भी विचार किया है । साधारण जनता आर्थिक पराधीनता अनुभव करती है । इसका मुख्य कारण जमीन्दारों - पूंजीपतियों की स्वार्थता है । बुद्धिजीवी भी अपनी साहित्य रचना से, नौकरी से अपने परिवार का पालन नहीं कर सकते हैं । समाज और सरकार उनके काम को काफी मान्यता नहीं देती ।

पूंजीवाद और शोषण की समस्या और बुद्धिजीवियों की आर्थिक समस्या - इन दोनों पर नागर जी ने अपना विचार प्रकट किया है ।

१· बुद्धिजीवियों की आर्थिक समस्या

आर्थिक परवशता अनुभव करनेवाले बुद्धिजीवियों की स्थिति की याद भी नागरजी करते हैं । बुद्धि का कोई स्थान नहीं, उस स्थान पर अर्थ विराजमान होता है और बुद्धिमान को चूर चूर कर देता है । "महाकाल" का पांचू गोपाल, "बूंद और समुद्र" का महिपाल तथा अमृत और विष का अरविन्दशंकर किसी न किसी रूप में आर्थिक परवशता में टूटते हैं । रोजी, रोग, घर, शिक्षा आदि हर तरह की सुरक्षा उनकी असफल आकांक्षाएं हैं । समाज की स्थिति को देखकर समाजवाद की ओर नागरजी उन्मुख होता है । महिपाल कहता है - "मैं कम्यूनिस्ट नहीं हूं, पर आप विश्वास मानिये जब यह सुनता हूं कि रूस में बेकारी नहीं है । हर आदमी काम और रोटी पाता है तो मेरा भी जी चाहता है कि हिन्दुस्तान में कम्यूनिजम आ जाये ।[1]" आर्थिक स्वतंत्रता को प्राप्त करने के बारे में

१· बूंद और समुद्र, पृ·120

गुलाबचन्द के शब्दों में नागर जी की चाह है - "कहता है हमारे पण्डित नेहरू ने कल अहम्मदाबाद में जो स्पीच दी है इसमें उन्होंने पूंजीपतियों को करारी लताड बताई है और साफ साफ कहा है कि पोलिटिकल आजादी के बाद हमें अब जनता को आर्थिक आजादी के बाद हमें अब जनता को आर्थिक आजादी दिलानी है।[1]" अमृत और विष और "बिखरे तिनके" में देखा जाता है कि पुरानी पीढी से युव पीढी संघर्ष करती है। पूंजीपतियों मुनाफाखोरों और चोर बाजारियों के विरूद्ध प्रगतिशील युवक लडते हैं और चोर बाजारियों के गुप्त भण्डारों का पता लगाते हैं। बिखरे तिनके का बिल्लू भ्रष्टाचार का विरोध करता है। काले धन से कमाये अपने पिता के घर में वह रहना नहीं चाहता और अलग घर में जाकर रहता है। युवकों की अपरिपक्वता का लाभ पूंजीपति लोग उठाते हैं। युवक समाज अपनी असली स्थिति को देखकर निराश हो जाते हैं। बिल्लू का साथी चौहान कहता है - "देशसेवा अब कुछ रईसों की वैचारिक हाबी बनती जा रही है। गरीबों का मिशनरी उत्साह चौपट होता जा रहा है। आदर्शों के शहीद भी बने तो किस लिए, अपने ही समाजवादी साथियों की धनशक्ति से मार खाने के लिए[2]।" युवक गण सामाजिक व्यवस्था के आकांक्षी है तो भी वे अपने भविष्य के संबन्ध में चिन्तित हैं। उम्र के बढने के साथ उन्हें रोजी-रोटी की चिन्ता आती है। बिल्लू का एक साथी कहता है - "पिता लकवे से पीडित, बडे भाई फिल्मी हीरो बनने की धुन में ही दो बरस पहले अपनी पत्नी और बच्ची को छोडकर बंबई गये जो जीरो बनकर वहीं लटके हैं[3]।" अपने परिवार का पोषण करने में असमर्थ बिल्लू के साथी ने अपनी आर्थिक पराधीनता का चित्रण यहाँ किया है। उसके पिता लकवे से पीडित है। उनकी सेवा-शुश्रुषा करने उसके पास पैसा नहीं। उसका बडा भाई तो पत्नी-

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.45
2. बिखरे तिनके, पृ.106
3. वही, पृ.105

बच्चों को छोड़कर फिल्मी हीरो बनने की आशा में बंबई गया। पर वहाँ जाकर एक कौड़ी तक मिले बिना वहाँ मारे मारे फिरता है। युवकगण, पढ़े-लिखे, कवि, सरकारी नौकर सब आर्थिक पराधीनता के कारण तड़प रहे हैं। सामाजिक-आर्थिक संरचना के लिए नागरजी युवकों को आह्वान देते हैं।

पूंजीवाद और शोषण की समस्या

पूंजीवादी व्यवस्था समाजवादी व्यवस्था की अपेक्षा अधिक परंपरागत है। पूंजीवाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही समाज वाद विकसित हुआ है। आज सब कहीं पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति आस्था नहीं है। और उस स्थान पर समाजवाद का उदय हो रहा है। आज ज्यादातर राष्ट्र पूंजीवाद से मुक्त होते आ रहे हैं। हमारे देश में इन दोनों का समन्वित रूप दीख पड़ता है। समाज का एक छोटा सा वर्ग राष्ट्र की संपत्ति पर अधिकार जमाये हुए हैं। समाजवाद इसके विपरीत पूंजी का विकेन्द्रीकरण है।

नागर जी के उपन्यासों में पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश का स्वर है और समाजवाद के प्रति आस्था की भावना है। समाजवाद की समस्या के हल के रूप में मास्टर जी के माध्यम से नागरजी शब्द उठाते हैं - "संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच पर बीसवीं सदी का सभ्य मानव यह नारा लगा रहा है कि मनुष्य मनुष्य समान हो, कोई किसी का दास न रहे। सबको आत्मविश्वास के लिए पूरी पूरी सुविधायें सुलभ हों[1]।"

---

1. महाकाल, पृ.65

गरीबों पर किया जानेवाला अत्याचार "मानस का हंस" में राम बोला के मुँह से नागर जी ने व्यक्त किया है - "तो क्या सारे पाप हम ने ही किये थे अम्मा ? औ ये सुख चैन सिंह ठाकुर, पुत्तने महाराज, जो हम गरीबों को मारते - पीटते हैं, वो क्या पाप नहीं कर रहे हैं अम्मा ?"[1]

आर्थिक शोषण के विरुद्ध इससे सशक्त स्वर और कहाँ मिलेगा । नागर जी ने बडी ही भावुकता के साथ प्रसंगोचित ढंग से इस समस्या का चित्रण किया है ।

पुरातनकाल से यह देखा जाता है कि शोषक शोषितों पर अपना गर्व दिखाते हैं । अमीर का गुलाम बनकर गरीब जीवन बिताता है । अमीर जब उल्लास के साथ जीते हैं तो गरीब एक कौर अन्न के लिए तरसते हैं । लाखों रुपये बारात में खर्च किये जानेवाले लोग एक ओर, रोजी-रोजी केलिए तरसनेवाले लोग एक ओर । इस असमत्व को देखकर लाला झम्मनलाल के छह की बारात के बारे में अमृत और विष में रमेश लच्छू से कहता है - "इन कैपीटलिस्टों के कम्पीटीशन में हम जैसों की मिट्टी पलीद हो गई है । इतना खर्च बढ गया है कि समझ में नहीं आता इज्जत कैसे बचेगी ।"[2]

आर्थिक स्वातंत्र्य के मूल्य को नागरजी महत्व प्रदान करते हैं । पूंजीपति अपनी स्वार्थता को छोड़कर ही गरीबों को जीने दे सकते हैं । पूंजीपतियों के प्रभाव के कारण आज भी हमारे स्वातंत्र्योत्तर समाजवाद का नारा धूमिल पड गया है । "अमृत और विष" में लच्छू भारत की अर्थ व्यवस्था को रूस की समाजवादी

---

1. मानस का हंस, पृ.53
2. अमृत और विष, पृ.61

व्यवस्था के समक्ष हीन समझता है । वह सोचता है - "हमारी तो अभी वो समाजवादी व्यवस्था नहीं जिसमें रोज़ी, रोग, घर, शिक्षा, बच्चों की हिफाजत आदि हर तरह की सामाजिक सुरक्षा हर व्यक्ति को सुलभ है । यहाँ तो सबसे पहले अपने जीवन की सुरक्षा के लिए संघर्ष करना होगा ।" [1] रूस से लौट आये लच्छू को भारत की आर्थिक सामाजिक दुरवस्था पर खेद होता है । रूस में उसने देखा कि हर व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकताओं की सुरक्षा की व्यवस्था वहाँ की गई है । लेकिन भारत में व्यक्ति के लिए रोग, घर, शिक्षा आदि की कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं है । इतना ही नहीं अपने प्राणों की सुरक्षा तक के लिए उसे लड़ते लड़ते जीना पड़ता है । भारत की आर्थिक पराधीनता पर ही लच्छू ने यहाँ विचार किया ।

निष्कर्ष

नागर जी ने अपने उपन्यासों में बहुत बड़ी ईमानदारी से सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है । उनके उपन्यासों में चित्रित सामाजिक समस्यायें जीवन का ही प्रतिबिंब हैं । समाज की प्रगति के लिए उन्होंने काम किया है । उनके सामाजिक उपन्यास जाति, वर्ग, वर्ण, धर्म एवं शोषण के पुनरुत्थान के उद्देश्य से भरे पूरे हैं । मानव जाति के प्रति नागर जी की बड़ी आस्था और अटल विश्वास है । जीवन की अन्धकारपूर्ण परिस्थिति में भी वे प्रकाश की रेखाएं देखते हैं । शोषितों एवं गरीबों के प्रति नागर जी की सहानुभूति अधिक गहरी है । पूंजीवादियों के अत्याचार के प्रति वे रोष और घृणा प्रकट करते हैं । यह भाव उन्हें साम्यवादी उपन्यासकार बना देता है । नागरजी ने अहिंसा, सत्य आदि गान्धीवादी चिन्तन को अपना आदर्श बनाया है ।

---

1. अमृत और विष, पृ.489

गान्धी जी के जैसे नागरजी ने भी कर्म करने की प्रेरणा दी है । जीवन में अच्छाइयों को ही उन्होंने श्रेयस्कर माना है । व्यष्टि और समष्टि की मंगलमयी भावना ही उनका लक्ष्य है । उनके सभी पात्र संघर्षशील स्थितियों से गुजर कर ही जीवन के मूल्य समझ पाते हैं । अन्त में वे मालूम करते हैं कि कर्म ही मनुष्य को सुख प्रदान करता है । कर्म से ही जीवन में आनन्द और शान्ति प्राप्त होती है । फलेच्छा के बिना काम करने से ही मानव जीवन में मंगल आ जाता है । यही मूलमंत्र नागरजी की जीवन दृष्टि है । अपने उपन्यासों में विभिन्न समस्याओं के चित्रण से उन्होंने यही अन्तिम हल निकालने का प्रयत्न किया है ।

पाँचवाँ अध्याय

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में शिल्प

पाँचवाँ अध्याय

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में शिल्प

उपन्यासों में शिल्प का महत्व

साहित्य में वस्तु, कला और शिल्प का अपना विशिष्ट स्थानहोता है । हर एक साहित्यिक कृति एक एक कलात्मक इकाई होती है । इसके जरिए पाठक साहित्यकार के अनुभवों संवेदनाओं और चिन्तनों से तादात्म्य प्राप्त करते हैं और साहित्य की चरम सीमा, सत्यं, शिवं, सुन्दरं के भागी बन जाते हैं । कोरी कला और शिल्प के बल पर श्रेष्ठ साहित्य की सृष्टि नहीं की जा सकती । उसी प्रकार केवल मानव जाति की संवेदनाएं या चिन्तन भी श्रेष्ठ साहित्य का सृजन नहीं कर सकता । कला के आवरण में प्रस्तुत की गई चिन्ताएं व अनुभव ही साहित्य को साहित्य बनाते हैं ।

कहने का तात्पर्य तो यह है कि एक सफल साहित्य के अन्दर कला और शिल्प दोनों का अपना महत्व पूर्ण स्थान है । इतना ही नहीं कला और वस्तु तत्व का औचित्य पूर्ण सन्तुलन भी एक सच्ची साहित्य कृति को गौरव प्रदान करता है ।

नागर जी ने अपने उपन्यासों की रचना कला, शिल्प और वस्तु की अभिव्यक्ति इन तीनों को समान प्रमुखता देकर की है । अपने जीवन में देखे-विचारे तथा भोगे हुए अनुभवों को पाठकों तक संप्रेषित करने का अपना उद्देश्य नागरजी ठीक तरह निभा सके । समूचे अमृत और विष के साथ वे जीवन को स्वीकार करते हैं जो उनके चिन्तन की बडी उपलब्धि है । जीवन के सारे विष को अमृत में बदलने का कर्मवाद ही नागर जी की कथावस्तु का प्राण है । उनका सिद्धान्त तो यह था कि बडे कहे जानेवाले के जीवन में ही नहीं, जनसाधारण के जीवन में भी प्रकाश की ये किरणें जगमगा सकती हैं । उनकी कृतियों को अपने इन विचारों को सहेजते हुए कलात्मक सृष्टि बनाने में नागर जी सजग रहे हैं । शिल्प के अन्तर्गत कथा शिल्प, भाषा-शैली, कथोपकथन, देशकाल-वातावरण आदि की दृष्टि से नागर जी ने उपन्यासों का अध्ययन ही प्रस्तुत अध्याय में किया जा रहा है ।

शिल्प क्या है ?

आधुनिक हिन्दी आलोचक शिल्प, शिल्पविधि, शिल्पविधान आदि शब्दों का प्रयोग अंग्रेज़ी भाषा के आर्ट, एक्सप्रेशन, टेकनीक, क्राफ्ट आदि किसी न किसी शब्द के पर्याय के रूप में करते हैं । "आर्ट" कला है, एक्सप्रेशन अभिव्यक्ति है, टेकनीक प्रविधि है और क्राफ्ट शिल्प है । हिन्दी में प्रयुक्त शिल्प शब्द अंग्रेज़ी में क्राफ्ट का पर्याय है । टेकनीक का अर्थ है शिल्प विधि । "टेकनीक" निर्माण की

विधि का ज्ञान कराती है । अपनी अनुभूति को सही रूप से प्रस्तुत करना साहित्यकार का धर्म है । अतः साहित्यकार को शिल्प के प्रति सजग रहना चाहिए । उपन्यास रचना एक कला है और शिल्प कला की चरम परिणति है । शिल्प और कला एक दूसरे से संबन्धित है । किसी एक उपन्यासकार का शिल्प दूसरे से मिलता जुलता नहीं । कारण शिल्प एक गतिशील रचना प्रक्रिया है । शिल्प उपन्यास का बाह्यरूप है । अन्तः रूप के बिना बाह्य रूप नहीं रह सकता । घर के लिए केवल चौखट या किवाड का कोई मूल्य नहीं । पर घर के साथ चौखट-किवाड घर की शोभा के कारण है । उसी प्रकार शिल्प उपन्यास को बहुरंगी बनाता है । शिल्प के सहारे उपन्यासकार भाव को सुन्दर बनाता है । अपने संचित विचार को शिल्प के माध्यम से उपन्यासकार संवारता है । अमृतलाल नागर मानव के अन्तर्जगत के चित्रण के कथाकार हैं । अन्तर्जगत की विचित्रता को उपस्थित करने के लिए उन्हें नई प्रवृत्तियों को स्वीकार करना पड़ा । इसकेलिए उन्होंने नये नये तत्वों की खोज की । कथानक, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल वातावरण, भाषा-शैली, जीवन-दर्शन आदि औपन्यासिक तत्वों में काफी परिवर्तन आ गया । साथ ही साथ उपन्यास के शिल्प में भी लेखक की दृष्टि सतर्क रही ।

नागर जी के उपन्यासों में औपन्यासिक शिल्प

औपन्यासिक शिल्प की विशेषताएं

मानव की प्रायः सभी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति उपन्यास साहित्य के माध्यम से की जा सकती है ।

उपन्यास के चिर नवीन होने का कारण उसके शिल्प का आकर्षक है। कथा में घटनाओं की बहुलता होने से उपन्यास के अन्य तत्व एक प्रकार से अप्रधान हो जाते हैं। उपन्यास में शिल्प को प्रधानता देने से कथानकों में नाटकीयता का समावेश मिलता है। साथ ही साथ घटना वैचित्र्य, कथानक की प्रधानता और पात्रों का चरित्र विकास भी लक्षित होता है। शैली की ध्वन्यात्मकता उपन्यास शिल्प की एक विशेषता है जिससे घटना पूर्ण रूप से वर्णित करने की आवश्यकता नहीं है, किसी कथा संकेत से ही इसका आभास पाठकों को मिल जाता है। कथोपकथन के समावेश के कारण कथा बहुत कुछ समझायी जा सकती है और वर्णनात्मकता कम की जा सकती है। इस प्रकार उपन्यास के भाव और रूप को संवारने में शिल्प उपयोगी बनता है। शीर्षक की नवीनता और कथा शिल्प का नवीन प्रयोग नागर जी के औपन्यासिक शिल्प की दो विशेषताएं हैं।

1. शीर्षक की नवीनता

अमृतलाल नागर के उपन्यासों की एक विशेषता तो यह है कि उपन्यासों की अपेक्षा उनके शीर्षकों में एक नवीनता दिखाई पड़ती है। महाकाल का वर्णित विषय भी बंगाल का महा अकाल है। "बूंद और समुद्र" शीर्षक से ही समुद्र में बूंद का अस्तित्व याद में आता है। व्यक्ति और समाज का संबन्ध भी उससे स्पष्ट होता है। "अमृत और विष" पढने पर मालूम होता है कि युवक समाज पुरानी पीढी को विष और अपने को अमृत मानते हैं। उसी प्रकार नई पीढी को पुरानी पीढी भी। "शतरंज के मोहरे" के समान खिलाये जानेवाले नवाबों की याद उस शीर्षक से होती है। नष्ट होती हुई पीढी और उसकी संस्कृति को अमर करते रहनेवाले "सेठ बांकेमल" का

नाम उस उपन्यास के लिए अत्यंत उचित ही है । मानस रूपी सरोवर में तैरता हुआ हंस परलोक की प्राप्ति के लिए तरसता रहता है । वह हंस तुलसीदास है जिनकी कथा है "मानस का हंस" । "सुहाग के नूपुर" नाम उस उपन्यास के लिए कितना उचित रहा है यह पाठक को तभी ज्ञात होता है जब वह जानता है सुहाग के नूपुरों की रक्षा केलिए कन्नगी कितना कष्ट सहती है ।

कथा शिल्प - नवीन प्रयोग

कथा के प्रस्तुतीकरण में नागर जी ने मौलिक और सार्थक प्रयोग किया है । "नाच्यौ बहुत गोपाल" में कथा के प्रस्तुतीकरण की जो प्रविधि अपनायी है वह बिलकुल नवीन है । अंशुधर शर्मा नामक समाजशास्त्री द्वारा उपन्यास के प्रमुख पात्र के साक्षात्कार के रूप में उसकी कहानी प्रस्तुत करता है, प्रमुख पात्र की डायरी उद्धृत करता है । बीच बीच में कल्पना शक्ति से कहानी लिखता है । यह हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक मौलिक प्रयोग है । नागर जी की शिल्प-विधि और प्रयोग के बारे में "समीक्षा" नामक पत्रिका में कहा गया है "औपन्यासिक शिल्प प्रविधि के चुनाव और प्रयोग में हिन्दी उपन्यास साहित्य में अमृतलाल नागर का स्थान अप्रतिमेय है[1] ।" नागर जी ने जो शिल्प प्रविधि अपने उपन्यास में आविष्कृत की है वह उसमें चित्रित विषय के लिए अनिवार्य थी । मेहतर जीवन का यथार्थ उनका अपना यथार्थ नहीं । ठीक तरह पढकर खूब विश्वसनीयता से लेखक उनका चरित्र प्रस्तुत करते हैं । यथार्थ चित्रण को प्रस्तुत करने के लिए वे स्त्री-पुरुषों से इन्टरव्यू लेते हैं । प्रचलित इतिहास की परंपराओं से वे जानकारी प्राप्त करते हैं । भंगीबस्तियों के निकट के मकान पर छिपे रहकर उनकी बातचीत सुनते हैं । इन्टरव्यू करके निर्गुनिया के अद्भुत और रहस्यमयी चरित्र का उद्घाटन करते हैं । अपने

---

1. समीक्षा - जनवरी-मार्च - डॉ. गोपाल, पृ.25

रहस्यमयी चरित्र की जानकारी कुछ तो निर्गुनिया अशुधरशर्मा को बता देती है और कुछ टूटे फूटे शब्दों में लिखी नोटबुक से मालूम कराती है । विश्वसनीयता लाने के लिए लेखक ने निर्गुनिया की लिखित आत्मकथा को अधिक लंबा नहीं खींचने दिया है । इस प्रकार निर्गुनिया की पूरी कहानी बडे कौशल से पाठक को समझाता है । इसका कथाशिल्प अत्यन्त वैविध्यपूर्ण और अपने विषय के अनुरूप है। इसका शिल्प लेखक की उपलब्धि है । "मानस का हंस" में भी कथा-शिल्प का नवीन प्रयोग दिखाई पड़ता है । तुलसीदास अपने अनुयायी मेघा भात, बेनी माधव आदि के साथ अपनी पत्नी रत्नावली की मृत्यु शय्या पर जाकर उसके दर्शन करता है । यह घटना ही "मानस का हंस" का आरंभ है । इस उपन्यास में पूर्वदीप्ति प्रयोग ही नागर जी ने किया है । घटनाक्रम केअनुसार कथा कही जाय तो यह घटना अन्त में ही आ जानी चाहिए थी । पर कथाशिल्प का नवीन प्रयोग करके नागर जी ने इस उपन्यास को खूब सुन्दर बनाया है ।

नागर जी के उपन्यासों में शैलियाँ

अनेक शैलियों और पद्धतियों का प्रयोग करने से औप-न्यासिक शिल्प का आकर्षण बढ जाता है, कथा का विकास होता है । नागर जी ने अपने उपन्यासों में प्राय: इन पद्धतियों का वर्णन किया है -

1. कथात्मक अथवा वर्णनात्मक पद्धति
2. नाटकीय अथवा संवादात्मक पद्धति
3. मनोविश्लेषणात्मक पद्धति
4. समीक्षात्मक पद्धति
5. फ्लेश बेक पद्धति
6. काव्यात्मक अथवा भावात्मक पद्धति
7. प्रतीकात्मक पद्धति

1. कथात्मक या वर्णनात्मक पद्धति

इस पद्धति के अन्तर्गत उपन्यासकार एक तटस्थ व्यक्ति की भांति सारी घटनाओं पात्रों के संबन्ध में वर्णन करता चलता है और बीच बीच में अपना विचार और अपनी समीक्षाएं एवं मान्यताएं प्रकट करता चलता है[1]। कथा प्रसंग और वातावरण का अवतरण ठीक तरह करने के लिए इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है। नागर जी ने कई उपन्यासों में इस पद्धति का प्रयोग किया है। वस्तुओं घटनाओं स्थानों एवं पात्रों की विशेषताएं ऐसे प्रयोग से व्यक्त होती हैं। नागर जी के "बूंद और समुद्र"[2], "अमृत और विष"[3] "सुहाग के नूपुर"[4], नाच्यौ बहुत गोपाल"[5], "मानस का हंस"[6] उपन्यासों में यह वर्णनात्मक पद्धति देखी जा सकती है। "अमृत और विष" में शादी-ब्याह के समय का एक वर्णन देखिये - "सहालग के दिन हैं। गर्मी का मौसम। बेटीवालों के लिए बावले दिन आये हैं। जनवासे नहीं मिल रहे। बरफ, फूल, फल, तरकारियों के भाव आसमान को छूने लगे हैं। मोटरें जहां तहां बुक हो चुकीं, रईसों की घोड़ियों के लिए मंगौवे आ चुके, वादे हो चुके और अब इक्के-तांगेवालों की खुशामदों में लोग-बाग दौड रहे हैं। बिजलीवालों के नखरे मिनिस्टरों के जलवों की तरह रौनक अफरोज है[7]।" इसके अन्तर्गत उपन्यासकार ने शादी-ब्याह के दिनों में होनेवाले हर एक कार्य का सूक्ष्म वर्णन बड़ी

---

1. उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियां - डॉ. सुरेश सिन्हा
   रामा प्रकाशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1965, पृ.56
2. बूंद और समुद्र, पृ.39
3. अमृत और विष, पृ.59
4. सुहाग के नूपुर, पृ.9
5. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ.17
6. मानस का हंस, पृ.61
7. अमृत और विष, पृ.59

ही तन्मयता के साथ उपस्थित किया है जिससे उपन्यास की वस्तु, घटना एवं पात्रों का सही चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है । "बूंद और समुद्र" में इसी प्रकार का वर्णन और भी प्रभावोत्पादक ढंग से नागर जी ने प्रस्तुत किया है । "कटी-फटी पतंगों, मकड़ी के जालों, घोंसलों, चिड़ियों, गिलहरियों और पीपल के दानों से लदा अनगिनत इन्सानों के चंचल मन-समूह सा हरहराता हुआ घना पीपल कई सदियों से मुहल्ले का साथी है । आज के बड़े-बूढ़ों के बचपन तक यह पेड़ गगी भूरिये के भाड़ का पीपल कहलाता था । मगर यह दीवाल जो किसी समय गगी-भूरिये का वैभव थी, अब बाबू छेदालाल इन्श्योरेंस एजेन्ट की मिलकियत है । म्यूनिसिपैलिटी के रजिस्टर के अनुसार उस मकान का नम्बर इस समय 420 है जो सही तौर पर बाबू छेदालाल की ख्याति में चार चांद लगाता है[1] ।"

"सुहाग के नूपुर" में विदेशवास के बाद लौटे कोवलन के सामने उसके मित्र कण्णन से पेरियनायकी का कथन खूब शक्तिशाली बन गया है[2] ।" "नाच्यौ बहुत गोपाल" में निर्गुनिया की आंखों की सुन्दरता का वर्णन अंशुधरशर्मा के शब्दों में सुनिये - "श्रीमती निर्गुनिया सामने सोफे पर टांग चढाये बैठी बिल्कुल मास्टराना अन्दाज में सवाल पर सवाल कर रही थी । बात कहते हुए मेरी दृष्टि उनकी नज़रों पर सधी थी । ठहरी सी नीली पुतलियां जिनमें हिप्नोटाइज़ करने की ताकत है, मेरी दृष्टि का निशाना थीं । नीले, भूरे या सुनहरे रंग की पुतलियां हिन्दुस्तान में कम ही लोगों की होती हैं । ये नीली आंखें खींचती और दुरदुराती एक साथ है । यही इनका आकर्षण है[3] ।" इस वर्णन में निर्गुनिया की आंखों की सुन्दरता का

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.39
2. सुहाग के नूपुर, पृ.17
3. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ.16

सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन मिलता है । इस प्रकार उनके उपन्यासों के सभी वर्णनों में सारी परिस्थितियों और समस्याओं का पूरा का पूरा ब्यौरा एक साथ बडी ही प्रभावात्मकता के साथ सूक्ष्मतम विवरणों के साथ मिलता है जिससे प्रसंग का पूरा चित्र लिखित सा हमारे सामने प्रस्तुत हो जाता है । इस कला में नागरजी सिद्धहस्त रहे हैं ।

2. नाटकीय या संवादात्मक पद्धति

कथानक के विकास, उसकी गति, पात्रों के चरित्रांकन, परिस्थितियों के चित्रण और उद्देश्य की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए संवादात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाता है । इस पद्धति में पात्र अपने अतिसंक्षिप्त, संक्षिप्त, दीर्घ संवादों द्वारा कथा को गति प्रदान करते हैं । "नाच्यौ बहुत गोपाल" में संक्षिप्त संवादों के कारण निम्न लिखित वार्तालाप में रोचकता लाने में नागर जी सफल हुए हैं । देखिये -

"एक बात पूछूं"?
"बिलकुल पूछिये ।"
"पीते तो खैर तुम सदा से हो .... ।"
"रोज पीता नहीं, पी लेता हूं गाहे गाहे ।"
"अरे मैं दूसरी बात कह रही हूं ।"
"कहो ।"
"मैं कह रही थी कि कभी कभार पीकर आना तो तुम्हारी पुरानी आदत है । मगर यह बुढापे में बोतल घर में लाकर पीने का शौक क्यों लगाया ?"[1]

---

1. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ.23

पण्डित अंशुधर शर्मा के पीने की आदत और उसके भी के घर आने का उद्देश्य एक छोटे से रोचक संवाद के जरिए पाठकों को समझाया है और कथा को विकास और गति प्रदान की है ।

मानस का हंस तथा एकदा नैमिषारण्ये उपन्यासों में दीर्घ संवादों का प्रयोग हुआ है ।

"मानस का हंस" में तुलसी और रत्ना का वार्तालाप उनके मनोभावों और व्यक्तित्व का परिचय कराने में सहायक बन गया है । देखिये -

"मेरा द्वन्द्व आरंभ ही से कामवासना से था । मेरी अन्तर-बाह्य चेतना अपने भीतरवाले काम हठ से अपने राम को श्रेष्ठ मानती थी । मैं ने उसे ही जीतना चाहा था पर तुमने मुझे ऐसा रिझाया - भरमाया कि क्या कहूं ।"

"तुम्हारे रूप गुण और पौरुष-पाण्डित्य पर मैं भी कुछ कम नहीं रीझी थी । यदि तुम आरंभ में मेरे आगे इतने दीन न बने होते तो मैं ही तुम्हारे प्रति दीन बन जाती । मेरा हठ तो तुम्हारी दीनता ने जगाया ।"

"सच है । मेरे जीवन की परिस्थितियों ने मुझे वह दीनता प्रदान की थी और तुम्हारे भीतर आभिजात्य दर्प था । जानती हो रत्ना, तुम्हारे उस सहज दर्पयुक्त सौन्दर्य को अपनाने के लिए मैं अपने वैराग्य से विरक्त हुआ था । जो मुझमें नहीं था वह तुममें था[1] ।"

---

1. मानस का हंस, पृ.214

तुलसी-रत्ना का यह वार्तालाप पात्रों के चरित्रांकन और लेखकीय चिन्तन को अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। तुलसी और रत्ना के मनोभावों और व्यक्तित्व का परिचय कराकर लेखक ने कथातन्तु को सरसता और गति प्रदान की है।

यह दीर्घ संवाद कभी कभी स्थान स्थान पर नीरस हो गया है। एकदा नैमिषारण्ये के नारद, व्यास सोमाहुति, सौति, गणपतिनाग, शौनक आदि पात्र जब धर्म और दर्शन जैसे गूढ विषयों पर लंबे लंबे प्रवचन करने लगते हैं तब पाठक को विचित्र प्रकार की नीरसता महसूस होने लगती है। इस प्रकार के संवाद से कथाविकास में व्याघात उत्पन्न हुआ है[1]।

एकदा नैमिषारण्ये के नीचे उद्धृत संवाद के जरिए अभिव्यक्ति की प्रभाव वृद्धि के लिए अप्रत्यक्ष घटनाओं को प्रत्यक्ष कर दिया है -

"नारद बुद्धि द्वन्द्व से रिझाना चाहती है मुझे।"

"भक्त कब द्वन्द्व से रीता है सखे।"

"सच है परन्तु एक समय वह निश्चय ही उस स्थिति को पा लेता है जब उसमें और उसके आराध्य में कोई अन्तर नहीं रहता[2]।"

इस प्रकार देखा जाता है कि उपन्यास में नागर जी की संवादात्मक पद्धति कथा को विकास, गति और रोचकता प्रदान करने में पर्याप्त बन गई है।

---

1. एकदा नैमिषारण्ये, पृ.392

2. वही, पृ.392

3. मनोविश्लेषणात्मक पद्धति

इस पद्धति के अन्तर्गत पात्रों के मनोविश्लेषण द्वारा उनका चरित्रांकन किया जाता है । नागर जी ने अपने उपन्यासों में गहरी अनुभूतियों द्वारा समाज और व्यक्ति की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं का उद्घाटन किया है । इसके लिए उन्होंने मनोविश्लेषण का काफी सहारा लिया है । सामाजिकता के साथ वैयक्तिकता को भी उन्होंने प्रमुख स्थान दिया है । नागर जी ने अपने कई उपन्यासों में इन भावों का चित्रण बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है । प्रसंग इस प्रकार है -

"वह इस समय ठगी सी अनुभव कर रही थी, थकान अनुभव कर रही थी, हार अनुभव कर रही थी । उसे ऐसा लग रहा था कि उसका जीवन अपने तमाम रंगों को लेकर अब खुल चुका है । वे रंग अब फीके पड चुके थे । जीवन में नया कुछ भी न आयेगा, वह अभाग्य की पुनरावृत्ति ही होगी[1] ।" इस उदाहरण में वनकन्या के निराशापूर्ण मनोभाव का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है । वनकन्या के मन के अन्तर्द्वन्द्व और चरित्रांकन ने कथा की गति में प्रवाह पैदा कर दिया है ।

इस प्रकार "नाच्यौ बहुत गोपाल" में नई बहू से माई का मनोभाव,[2] "सुहाग के नूपुर" में कन्नगी के नूपुरों को देखकर ईर्ष्यावश माधवी का कथन,[3] और "महाकाल" में कोई भी काम करके घर का गुजारा करने के लिए पाँचू का निश्चय भाव[4] - इन प्रसंगों में

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.367
2. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ.113
3. सुहाग के नूपुर, पृ.95
4. महाकाल, पृ.31

नागर जी ने मनोविश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया है । अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं द्वारा पात्रों को सजीवता और तीक्ष्णता देने केलिए सूक्ष्म भावनाओं और स्पन्दनों का उद्घाटन किया है ।

कोवलन को मार भगाने के बाद अपने शब्द-दर्प को वातावरण में लहराते हुए माधवी समाज से - मानव से - घृणा की फुफकारें छोड़ती है - "मैं वेश्या हूँ । मानव मात्र से द्वेष करती हूँ । हि..... कुछ लोग कहते हैं कि मुझे अपनी ही जाति से द्वेष है । मैं गृहणियों से, सतियों देवियों से ईर्ष्यावश मोर्चा लेती हूँ और उन्हें धुला धुलाकर मारने के उपायों में लगी रहती हूँ । कोई कहता है कि मुझे मानव मात्र से घृणा है, मैं समाज का नाश करती हूँ । कोई यह नहीं देखता कि वेश्या स्वयं अपने ही से घृणा करने पर मज़बूर है, क्योंकि परंपरा से घृणा के संस्कारों में पाली जाती है । जो स्त्री किसी भी अन्य गृहिणी की तरह काम काजी और जग संचालन का भार वहन करने योग्य थी, उसे पुरुषों की विलासवासना का साधन मात्र बनाकर समाज में निकम्मा छोड़ दिया जाता है । फिर क्यों न वह समाज से घृणा करे, क्यों न पूरी लगन और सच्चाई के साथ समाज का सर्वनाश करे ? उसे पूरा अधिकार है ।"[1]

इस वर्णन में वेश्या माधवी के मन के सारे भाव पूर्ण रूप से अवतरित हुए हैं । सतियों से उसकी घृणा, समाज का नाश करने का मनोभाव, परंपरा में बन्धी हुई वेश्या की विवशता पूरे पूरे वैभव से चित्रित किया गया है । अपने मनोविश्लेषणात्मक वर्णन में नागर जी अत्यधिक सफल हुए हैं ।

---

1. सुहाग के नूपुर, पृ.220

इसी प्रकार "महाकाल" में पाँचू के आत्मकथन से उसके मन के भावों को नागर जी ने व्यक्त किया है - "घर से भाग आना मेरी कायरता है । मैं अपने कर्तव्य से भाग आया, भूख शरम की बात नहीं, सबको लगती है । मैं सबकी भूख केलिए मागूँगा । मैं लडूँगा मोनाई से, दयाल से उन सब लोगों से जिनके पास सब की भूख के साधन छीन कर जमा है[1] ।" इस उद्धरण में घर की गरीबी से दुखी होकर भागे पाँचू के हृदय में जल्दी से जल्दी अद्भुत मनोबल और आस्था व्यक्त रूप में दिखाई देती है । पाँचू का आत्माभिमान, जीवन के प्रति उनका कर्तव्यबोध, जमीन्दारी एवं पूंजीपतित्व से लडने का आत्मधैर्य - पाँचू के उस आत्म कथन से उद्घाटित किया गया है ।

4. फ्लेशबेक पद्धति

अतीत के प्रसंगों का स्मरण करके वर्तमान अनुभवों में अनुभूतियों को श्रृंखलाबद्ध करने में इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है । इससे कथा को गति एवं व्यापकता प्रदान की जाती है । नागरजी ने प्राय: सभी उपन्यासों में इस पद्धति का प्रयोग किया है । "मानस का हंस" में प्रमुख रूप से यह प्रयोग देखा जाता है । वह यों हैं -

"बाबा ने अपनी आँखें मूंद लीं । महपाठी के शब्दों का लंगर डालकर उनकी ध्यान मग्न काया स्मृति के समुद्र में गहरी पैठने लगी और अपनी अनुभवगम्य बिम्ब सजीवता को सागर के तल से मोतियों की तरह उबार कर लाने में तल्लीन हो गई[2] ।"

---

1. महाकाल, पृ.236

2. मानस का हंस, पृ.107

उपन्यास के आरंभ में तुलसीदास अपने अतीत की घटनाएं कथा के रूप में सुनाते हैं । यह उनके चरित्र में गहराई और व्यापकता मिलने में पर्याप्त हो गया है ।

इसी प्रकार "नाच्यौ बहुत गोपाल" में श्रीमती निर्गुनिया से पंडित अंशुधरशर्मा के इन्टरव्यू का वर्णन उपन्यास के प्रारंभ में किया गया है । निर्गुनिया के जीवन का एक छोटा सा रूप प्रारंभ में ही इस प्रतिपादन से पाठकों को मिलता है । इस प्रयोग से पाठक में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि निर्गुनिया कौन है, उसके पति कैसे मारा गया, उसकी सन्तानें कैसे पढी लिखी बन गई आदि आदि । उपन्यास के आरंभ में वार्तालाप के एक भाग पर ध्यान दें - "श्रीमती निर्गुनिया ने फल-मिठाई लेकर बोतल मेरे झोले में रख दी, कहा - "बडे आदमियों का हुकुम टालने की ताव मुझमें नहीं है । आप की यह चीजें रख लूंगी, पर इसे ले जाइए ।" "मैं ने पूछा, क्यों ? "बोतल लाके देनेवाला चला गया बाबू जी । बेटा ले आता है कभी-कभी, मगर यह बात और है ।"[1] पंडित अंशुधर शर्मा और निर्गुनिया की इस बातचीत से निर्गुनिया के पति मोहन की मृत्यु, उसके प्रति निर्गुनिया का प्रेमभाव, आगामिक जीवन में उन पतिभक्ति में जीने का उसका निर्णय आदि आरंभ में ही कथा को गति प्रदान कर देता है ।

इसी प्रकार नागर जी के अन्य उपन्यासों में यह पद्धति खूब जीवन्त होकर सामने आयी है ।

---

1. नाच्यौ बहुत गोपाल, पृ.17

5· समीक्षात्मक पद्धति

समीक्षा का अर्थ है समालोचना । इस पद्धति में साहित्यकार की विचारधारा राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी पहलुओं पर एक निबन्ध प्रवाह के रूप में प्रकट होता है । महाकाल,[1] बूंद और समुद्र,[2] अमृत और विष,[3] एकदा नैमिषारण्ये[4] - में इस पद्धति का प्रयोग किया गया है । भूख से उत्पन्न दारुण हालत ने लेखक के हृदय को झकझोर दिया है । वे पूंजीपतियों एवं जमीन्दारों के प्रति अपना रोष प्रकट करते हैं - "थोडे से लोग जो कि अमीर कहलाते हैं, बच जायेंगे । मगर वे भी कब तक बचे रहेंगे ? जब अन्न पैदा करनेवाला ही न बचेगा तो खानेवाले क्या खाकर जीवित रहेंगे ? रुपया, सोना, चांदी ····· को क्या दांतों से चबाया जा सकेगा ?··· बडे समाज को अपने स्वार्थ के लिए मारकर छोटा समाज भी जीवित नहीं रह सकता ····· व्यक्ति व्यक्ति का स्वार्थ ही समाज का स्वार्थ है[5] ।"

बंगाल दुर्भिक्ष के समय साधारण जनता की दारुण दुस्थिति का आलोचनात्मक वर्णन सुन्दर ढंग से इसमें किया गया है ।

"अमृत और विष" में मास्टर अरविन्दशंकर की वर्षगांठ का समारोह हो रहा है । आयोजन के अनुसार अनेकों आशंसा भरे व्याख्यान, हारार्पण सब हो रहे हैं । लेकिन हारे हुए अपने कौटुंबिक जीवन की याद एक से एक होकर उसके स्मृतिपथ में आ रही है -

---

1· महाकाल, पृ·118
2· बूंद और समुद्र, पृ·172
3· अमृत और विष, पृ·34-35
4· एकदा नैमिषारण्ये, पृ·410-411
5· महाकाल, पृ·212-213

"मेरा मस्तिष्क उत्तेजित खीझभरा, थका-हारा था । ......
मुझे बतलाया गया था कि समारोह में मुख्य मन्त्री और अनेकानेक राजपुरुष पधारेंगे । .... उँह, पधारा करें । मुझे क्या मिलेगा ? ये राजपाल, मुख्यमन्त्री आदि मेरे लिए थोडे ही आये हैं । इस सभा का आयोजन मैं जानता हूँ, नगर काँग्रेस कमेटी के अध्यक्ष ने अपने चार खुशामदी साहित्यिकों को घेरकर कराया है लगभग दो वर्ष पहले मेरे घर के पीछेवाली मेरी पैतृक जमीन अध्यक्ष महोदय के एक रिश्तेदार रईस ने जबर्दस्ती अपने हिस्से में मिला ली थी । मैं ने उन्हें नोटिस दी, वे उसे घोलकर पी गये ।[1]" इस उद्धरण में मास्टर अरविन्दशंकर की मानसिक उथल-पुथल का विवरण प्रभावोत्पादक ढंग से किया गया है । अपनी जमीन को अन्याय से हड़पनेवाले रईस पर अरविन्दशंकर का रोष है । ऐसे एक समाज की आलोचना इससे उन्होंने की है । एक प्रौढ चिन्तक के रूप में वह समूचे जगत का मूल्यांकन करता है । इसी प्रकार "बूंद और समुद्र" में महिपाल, सज्जन, वनकन्या सभी मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं का विश्लेषण करता है । महिपाल की समीक्षात्मक ज्ञान प्रचुरता पग-पग में दिखाई देती है । "एकदा नैमिषारण्ये" में भी संस्कृति के विविध परिप्रेक्ष्यों में समीक्षात्मक विवेचना की गई है ।

6· काव्यात्मक अथवा भावात्मक पद्धति

अपने भावों के स्पन्दन और सजीवता के लिए साहित्यकार की कला काव्य रूप में निखरती है । ऐसे प्रयोग को भावात्मक पद्धति कहा जाता है । बूंद और समुद्र में नागर जी ने महिपाल-शीला के प्रेम-प्रसंग से यह भाव व्यक्त किया है -

---

1· अमृत और विष, पृ·34-35

"शीला की बाँह के जुए से दो गर्दनें झुक गईं । अन्धेरे में झुकी चार आँखों में एक बल दमक रहा था - शीला की नज़रों में हीरे की कनी बनकर महिपाल की आँखों में मुझाते हुए फूल की तरह । शीला के होठों में भावभरी गर्मी थी और महिपाल के होठों में भाव का स्पर्श तो था, मगर जोश नहीं[1] ।"

महिपाल के संपर्क में शीला का भाव भरे प्रेम की अभिव्यक्ति काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत अवतरण में हुई है ।

वेश्या माधवी द्वारा वंश वृक्ष का अपहरण होने पर दासी देवन्ती से कुलगौरव के नष्ट होने का बोध कन्नगी को होता है । तो वेदना से कन्नगी सब कुछ खोई सी होती है - "कन्नगी की भोली हिरनी सी आँखों में वेदना की करुण आभा चमकी, सधी । बोली, "कहेगा कौन ? मेरे श्वसुर कुल की नयी दीप शिखा जिसकी कोख से प्रकट हुई है, क्या उसके मन को मैं न पहचान पाऊँगी ?" इतना कह देवन्ती की गोद में हाथ रख कन्नगी टुक थम गई, नयनों की पीडा फिर बिखरी, सारे मुखमण्डल पर व्याप्त हो गई । देवन्ती की गोद में उसके कोमल पंजे का दबाव बढा, स्वर में सिहरन सध न पाई । बात फूट पडी, "पर माधवी बहन ने अनरीत की सखी, अपना ही मन छला[2] ।"

वंशवृक्ष के खो जाने पर कन्नगी का करुणाजनक दीनभाव भावात्मक तन्मयता से लेखक ने वर्णित किया है । यह भाव देखकर पाठक भी कन्नगी के साथ दुखभाव अनुभव करता है । यही काव्यात्मकता

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.97
2. सुहाग के नूपुर, पृ.150-151

नागरजी के "महाकाल"[1], एकदा नैमिषारण्ये[2] और मानस का हंस[3] में पाई जाती है ।

7· प्रतीकात्मक पद्धति

मानव के अन्दर के गूढ रहस्यों को परोक्ष रूप में अभिव्यक्त करने की विधि को प्रतीकात्मक पद्धति कहते हैं । इस पद्धति में पात्र अपनी भावना को अभिधा द्वारा प्रकट न करके प्रतीकों द्वारा ही प्रकट करते हैं[4] । कथाकार प्रतीकों के द्वारा जीवन की अनुरूपता दिखलाने का प्रयास करता है । इस रीति के लिए प्रयुक्त होने वाले पात्र सामान्य पात्रों की अपेक्षा अधिक सशक्त और सक्षम होकर अर्थों को स्पष्ट करते हैं । नागर जी के महाकाल, बूंद और समुद्र, अमृत और विष आदि उपन्यास प्रतीकात्मक शिल्प विधि के उपन्यास हैं । इन उपन्यासों में विभिन्न समयों में हिन्दी उपन्यास साहित्य में वर्तमान प्रतीकात्मक शिल्पपद्धति का प्रयोग मिलता है । महाकाल स्वतन्त्रतापूर्व की शिल्प विधि को प्रस्तुत करता है तो बाकी दोनों उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर काल के भिन्न दशकों की प्रवृत्तियों को सूचित करते हैं ।

"महाकाल" उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प के प्रयोग के कारण अभिव्यक्ति में तीव्रता आ गई है । मास्टर पांचू गोपाल अस्तव्यस्त मन और भूखा होकर स्कूल पहुंचता है । स्कूल में अपनी मेज की दराज खींचते हैं तो दीमकों का अंबार देखते हैं । ये दराज में

1· महाकाल, पृ·46

2· एकदा नैमिषारण्ये, पृ·261

3· मानस का हंस, पृ·95-95

4· चरित्र चित्रण का विकास - रणवीर रांग्रा, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1961, पृ·499

छिपी ढेर की ढेर दीमकें उन शोषकों की प्रतीक हैं जो चुपचाप स्वार्थ साधना करते हुए इस अकाल का निर्माण करते रहे हैं[1]। पाँचू सोचता है - ये शोषकों रूपी दीमकें सर्वशोषी हैं जिनका आतंक अकाल की विभीषिका को बढा बढाकर मानवीय संस्कृति, सभ्यता संबन्धी आत्मीयता आदि मानव जीवन को संचालित करनेवाले तत्वों को निगले जा रहे हैं। दीमकों को शोषकों से उपमित करके शोषण की उग्रता का नागर जी ने सरल ढंग से व्यक्त किया है। पाँचू अपनी माँ के बारे में चिन्ता करता है तो उसे अपनी माँ धरती सी ही दिखाई देती है। अपने पिता से बातें करते समय पाँचू की आँखों में कोठरी का अन्धेरा जम जाता है। कोठरी का अन्धेरा जीवन की कठोर वास्तविकता अर्थात् अकालजन्य अनास्था का प्रतीक है। शोषक वर्ग के प्रतिनिधि मोनाई द्वारा अस्थिपंजरों के व्यापार का आरंभ प्रतीकात्मक पद्धति से उपन्यास के मूल कथ्य मनुष्य की जघन्य स्वार्थपरता "अशोभन असंभव" को अभिव्यंजित करता है[2]।"

प्रतीकात्मक शिल्प विधि का नागर जी का और एक उपन्यास है बूँद और समुद्र। प्रेम भटनागर ने इसके अधिकांश पात्रों को प्रतीक माना है। उपन्यास का नामकरण भी प्रतीकात्मक है। बूँद व्यक्ति का प्रतीक है तथा समुद्र समाज का। उपन्यास की कथा का आरंभ ताई से होता है। ताई व्यक्तिगत प्रतीक मात्र है। उनकी मुखमुद्रा आन्तरिक व्यक्तित्व की प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्ति करते हैं - "दुबली पतली साँवली ताई की बडी बडी आँखें भूखे भेडिये की तरह भभककर लगकर देखनेवालों के मन में चुभती हैं[3]।"

---

1. "भूख"- राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1970, पृ.16
2. हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प - डॉ. सुशीला शर्मा
   सिद्धराम पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ.165
3. बूँद और समुद्र, किताब महल, इलाहाबाद, 1964, पृ.10

सज्जन जब आटे का पुतला छूता है तो ताई का बिफर उठना झंझा और हलचल को प्रतीकायित करता है । ताई की "हवेली" मध्यवर्ग के उजाड बन्द जीवन का प्रतीक है[1] । वनकन्या का नाम और उसका अतिशय गोरापन प्रतीकात्मक विधि के द्वारा उसके अन्तरंग व्यक्तित्व के सात्त्विक तेज और क्षमता के व्यंजक हैं[2] ।"

नागर जी के "अमृत और विष" का आरंभ अत्यन्त प्रतीकात्मक ढंग से होता है । षष्टिपूर्ति समारोह के दिन सुबह अलार्म बजना अरविन्दशंकर के अन्दर के पर्दे-पर-पर्दे हिला देता है । यह उन्हें आयु के परिपक्व होने की चेतना से झंकृत करता है और उन्हें परोक्षत: आयु की याद दिलाकर कर्मठता की ओर प्रेरित करता है[3] ।

निम्न मध्यवर्ग की रानी घरवालों के विरोध के बावजूद पढाई जारी रखती है और नौकरी करने लगती है । उसकी यह नवचेतना नवभारत के निर्माण में नारी के योग का प्रतीक बनकर आयी है[4] ।

इस प्रकार नागर जी ने अपने उपन्यासों में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में पाये जानेवाले प्रतीकात्मक शिल्प का स्थान स्थान पर प्रयोग किया है । ये प्रयोग इनके उपन्यासों की कलात्मकता और सौन्दर्य बढाने में बडे सहायक बन जाते हैं ।

---

1. बूंद और समुद्र - किताब महल, इलाहाबाद 1965, पृ.358
2. वही, पृ.129
3. अमृत और विष, पृ.91
4. वही, पृ.182

नागर जी के उपन्यासों में कथावस्तु

नागर जी के उपन्यासों की कथावस्तु का प्रमुख आधार मानव जीवन की समस्यायें हैं । "महाकाल" में भूख की समस्या है । बूंद और समुद्र, अमृत और विष, अग्निगर्भा और बिखरे तिनके मध्यवर्गीय समाज के विविध स्तरों के खुले चित्र हैं । "सुहाग के नूपुर" में वेश्या और कुलवधू की समस्या का मार्मिक चित्र है । "शतरंज" के मोहरे" में राजनीतिक प्रवृत्तियों का दर्शन है । "मानस का हंस" में मानव की कुप्रवृत्तियों और सद्वृत्तियों में मानवीय आस्था का निरूपण है । "करवट" में परंपरा की ललकार करते हुए - तकलीफों को झेलते हुए उन्नति की ओर जैत्रयात्रा करनेवाले तन्कुन की विजय गाथा है । इस प्रकार मानव जीवन के विविध पक्षों से संबन्ध रखनेवाली समस्याओं को उन्होंने सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है । उनकी कथावस्तुओं की और एक विशेषता है कि उनमें हर एक वर्ग के प्रतिनिधित्व का संकेत मिलता है । उनके सभी उपन्यासों में प्राय: मध्यवर्ग के प्रतिनिधियों को उभारा गया है । महिपाल, सज्जन, पांचू गोपाल, माधवी, बेगम समरू, इज्या, प्रज्ञा, भारतचन्द्र आदि आदि पात्र मध्यवर्ग के ही होते हैं । उनके कथावस्तुओं की तीसरी विशेषता है कि उनमें जीवन पक्षों के महत्त्व का मूल्यांकन हुआ है । जीवन के महत्वपूर्ण और महत्वहीन घटनाएं उनकी कथावस्तुओं में वर्णित हैं । पूंजीपतियों की स्वार्थता, पतिव्रता का त्याग भाव, अकाल से साधारण जनता की पीडा आदि महत्वपूर्ण घटनाओं के साथ साथ बडी-विरहेश का प्रेम कथन आदि महत्वहीन घटनाओं का वर्णन भीमिलता है । इन वर्णनों में लेखक की विवेक दृष्टि का परिचय मिलता है । चौथी विशेषता है - अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यक्ति । उनके कथावस्तुओं की प्राय: सभी घटनाएं वास्तव में नागर जी की सच्ची अनुभूति से उत्पन्न हैं ।

अरविन्द शंकर का आर्थिक संकट नागर जी का अपना ही संकट है । तुलसीदास और सूरदास की भक्तिभावना नागर जी की ही भावद्भक्ति है । इस प्रकार सभी दृष्टि से नागर जी के उपन्यासों के कथावस्तु खूब प्रखरहो गये हैं ।

चरित्र शिल्प

उपन्यास में चरित्र शिल्प का अपना महत्त्व रहता है । उपन्यास के लिए आवश्यक कथावस्तु का संगठन, संवाद की योजना, कल्पना का आविष्करण - सभी चरित्रों पर आधारित होते हैं । चरित्र के अभाव में कथावस्तु की गति नहीं होती । चरित्र उपन्यास के सभी तत्वों को गति प्रदान करते हैं । कथावस्तु और चरित्र दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । वस्तु और पात्र दोनों को अलग कर देखना अर्थहीन है । साहित्यकार अपने यथार्थ के पात्रों को कल्पना से अलंकृत बनाते हैं । इसलिए उन्हें काल्पनिक नहीं कह सकते । डॉ. श्यामसुन्दरदास के अनुसार वास्तविकता का परिधान ही उपन्यास के पात्रों के विषय में प्रधान है[1] ।" मनुष्य का जीवन ही विविधता से संपूर्ण है । देशकाल, परिस्थिति और संस्कार के आधार पर उपन्यासकार मनुष्य की वैयक्तिकता को आंकता है । इस विविधता के कारण ही मनुष्य का जीवन कौतूहलवर्द्धक हो गया है । व्यक्तिगत वैविध्य और वैविध्यगत एकता का चित्रण उपन्यासकार का लक्ष्य होता है । इसी लक्ष्य के कारण ही उपन्यासकार अपनी

---

1. ..... अब हम किसी उपन्यास के पात्रों के विषय में विचार करते हैं तब पहला प्रश्न जो स्वभावतः उपस्थित होता, वह यह है कि क्या ग्रंथकार अपने पात्रों को हमारे सम्मुख वास्तविकता के परिधान से वेष्टित करने में सफल हुआ है ।

- डॉ. श्यामसुन्दरदास - साहित्यालोचन, पृ.150

रचना में अभीष्ट सिद्धि पा सकते हैं । नागर जी के "अमृत और विष" में रमेश का जीवन विविधता से भरा पूरा है । बाद में ममसृष्टों की रक्षा करते हुए एक सहायक जवान के रूप में पुरानी पीढियों के विरोध की परवाह किये बिना सभी रूढियों को तोड़कर रानीबाला से किया गया अन्तर्जातीय विवाह आदि आदि का अवतरण करके उपन्यास में व्यक्तिगत वैविध्य को नागर जी ने दर्शाया है । "एकदा नैमिषारण्ये" में भी नागर जी ने दिखाया है कि धर्म की कई विविधताओं के बीच भारत में भावात्मक एकता विद्यमान रहती है और इस परिस्थिति में राष्ट्रीय एकता का सन्देश वे देते हैं ।

उपन्यास में पात्र ही कथा को सप्राण बनाते हैं । उनके क्रिया व्यवहार एवं विविध दृष्टिकोण ही कथा को गति देते हैं । नागरजी के उपन्यासों के पाँचू, रमेश, सज्जन, वनकन्या, तुलसीदास, सूरदास, कन्नगी, कोवलन, माधवी आदि आदि सभी पात्र कथा को गति देते हैं और उसे सप्राण बनाते हैं । कलाकार अपनी अनुभूति और कल्पना के सामंजस्य से वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व का अंकन करता है । मनुष्य को अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व विकास के लिए संघर्ष करना पड़ता है । नागर जी के "नाच्यौ बहुत गोपाल" के निर्गुनिया और मोहना दोनों अपने व्यक्तित्व-विकास के लिए आजीवनान्त संघर्ष करते हैं । इन पात्रों का शिल्प मानवमन को स्पर्श करने में समर्थ हो गया है ।

उपन्यास के अन्तर्गत चरित्र चित्रण प्रत्यक्ष विधि या अप्रत्यक्ष विधि से किया जाता है । अर्थात् प्रत्यक्ष विधि से रचयिता स्वयं इसकी प्रकृति और प्रवृत्तियों का ब्यौरा पेश करता है । अप्रत्यक्ष विधि में पात्रों के क्रिया-कलाप एवं संवाद आदि के द्वारा उनकी विशेषताएं उभर आती हैं । ये दोनों विधियां नागर जी ने अपनायी हैं । नागर जी के "अमृत और विष" में अरविंदशंकर का आत्मकथन अप्रत्यक्ष विधि है । "बूंद और समुद्र" का महिपाल, सज्जन, वनकन्या आदि का चित्रण प्रत्यक्ष विधि है ।

नागर जी की पात्र योजना यथार्थ जगत से संपूर्ण रूप से संबद्ध है । "नाच्यौ बहुत गोपाल" की निर्गुनिया, "महाकाल" का पांचू, मोनाई, दयाल, अग्निगर्भा का सीता सब सामाजिक समस्याओं से जुड़े हुए हैं । "बूंद और समुद्र" का कर्नल, डॉ॰शीला स्विंग, कल्याणी, आदि गौण पात्र मुख्य पात्रों को प्रभावी बनाने में सहायक बन गये हैं । नागर जी के कुछ पात्र आदर्शवाद की सृष्टि के लिए रचित हैं । ये लेखक के आदर्शों और सिद्धान्तों के सीधे वाहक हैं । "बूंद और समुद्र" के बाबा रामजी दास, "शतरंज के मोहरे" के दिग्विजयी ब्रह्मचारी ऐसे ही पात्र हैं । महाकाव्य में नायक का गुण स्वीकार किया गया है - सर्वगुण संपन्न उच्चकुलोत्पन्न ही नायक हों । यह मान्यता अब कल्पना जीवी हो गई है । यथार्थ का अर्थ तो यह है कि नायक मनुष्य ही सभी अच्छाइयों और बुराइयों से युक्त इसी जगत का जाना पहचाना व्यक्ति हो । "महाकाल" का पांचू गोपाल ऐसा एक नायक है । "बूंदऔर समुद्र" की ताई नागर जी के साहित्य की अमर पात्र बन गई है । इसी प्रकार सज्जन सामन्ती संस्कारों से युक्त, किन्तु संवेदनशील समाजसेवी युवक अपनी अच्छाइयों और बुराइयों से युक्त पात्र है । नागर जी ने घटनाओं के वैविध्य से चरित्रों को विकास दिया है । महिपाल मध्यवर्गीय साहित्यकार के रूप में अपने सशक्त अन्तर्द्वन्द्व और विरोधी चारित्रिक गुणों के साथ चित्रित है । कर्नल, बाबा रामजीदास, राय बहादुर द्वारकादास आदि आदि पात्र अपने अपने चरित्रों को पूर्ण जीवन्त बनाते हैं । "शतरंज के मोहरे" में दिग्विजय ब्रह्मचारी के अतिरिक्त राजमहलों की आन्तरिक राजनीति के षड्यन्त्रों में "बादशाह बेगम" और "दुलारी" का चरित्रांकन सशक्त हुआ है[2] । दुलारी एक सामान्य दासी से मलिक ए -जमानिया के पद पर पहुंच जाती है । इस प्रकार अनेकों घटनाओं के विकास पर चरित्रों का विकास हुआ है ।

1· शतरंज के मोहरे, पृ॰230

2· वही, पृ॰320

"अमृत और विष" का समूचा घटना विधान मध्यवर्गीय रूढ़ियों संघर्षों और विक्षोभों का आकलन है । अरविन्द शंकर का चिन्तन मनन इसी मध्यवर्ग की तीन पीढ़ियों को स्पष्ट करता है । अरविन्द शंकर के पूर्वजों और उसके बचपन का वातावरण, उसकी वर्तमान और उसकी सन्तानों का आचार-व्यवहार आधुनिक संक्रमणशील स्थितियों को स्पष्ट करता है । लेखक स्पष्ट करता है कि अरविन्दशंकर जैसे संजीवनी शक्ति लिये हुए पुरुष समाज की एक आवश्यकता है । नागर जी ने अरविन्दशंकर के चरित्रोद्घाटन के लिए प्रयुक्त औपन्यासिक चरित्र शिल्प का प्रयोग विशेष सतर्कता से किया है । - "क्या हिन्दी के मध्यवर्गीय या निम्न मध्यवर्गीय लेखकों के लिए अरविन्दशंकर प्रेरणास्रोत नहीं बन सकता । नागर जी का दिशा संकेत स्तुत्य है । सब कुछ गंवा देने के बावजूद यहाँ तक कि भूख, बीमारी और मृत्यु के बावजूद नागर जी की दृष्टि में जीवन वरणीय है, हेय और अपेक्षणीय नहीं[1] ।"

पुरुषवर्ग के समान नारीवर्ग भी नागर जी के उपन्यास में अपने लक्ष्य की सिद्धि करते हैं । प्रत्येक नारी पात्र अपनी सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और बौद्धिक स्थिति के साथ पूर्ण आकार पा गया है । उन्होंने जिस शक्ति के साथ वेश्याओं का चित्रण किया है वह बहुत ही मार्मिक है । "सुहाग के नूपुर" की माधवी का अन्तर्द्वन्द्व, आक्रोश और विक्षोभ समस्त वेश्यावर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं - "पुरुष जाति के स्वार्थ और दंभभरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है । उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अद्धांग नारी जाति पीड़ित है[2] ।"

1· आस्था के प्रहरी - डॉ· सत्यपाल चुघ, पृ·113

2· सुहाग के नूपुर, पृ·267

"एकदा नैमिषारण्ये" के पात्र पौराणिक होते हुए भी सहज मानवी गुणों से पूरित है । सोमाहुति भार्गव और इज्या की अनुभूतियाँ उनकी ऋषित्व की महिमा से मंडित होकर भी सहज मानवीय है ।[1] इज्या की मृत्यु पर भार्गव का विलाप मार्मिक और करुणा प्लावित है । "मानस का हंस" में तुलसी के व्यक्तित्व का विकास उनके राममय आस्था के क्रमिक सोपानों पर चढा है ।

संवाद शिल्प

पात्रों के चित्रण को प्रभावी और आकर्षित बनाने के लिए रचनाओं में संवाद शिल्प का महत्वपूर्ण स्थान होता है । केवल विवरण से साहित्य रंजक नहीं हो सकता । रंजकता के बिना साहित्य केवल उपदेशात्मक और नीरस रह जाएगा ।

उपन्यास के विश्लेषण में कथोपकथन का खास स्थान है । पात्रों की विचार प्रक्रियाओं का दायित्व वार्तालाप पर निर्भर है । इसका समर्थन करते हुए प्रेमचन्द ने कहा है - "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाए उतना ही अच्छा है । इस संबन्ध में इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए । किसी भी चरित्र के मुँह से निकले हुए प्रत्येक वाक्य को उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए । बातचीत का स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुकूल और सूक्ष्म होना आवश्यक है[2] ।"

---

1. एकदा नैतिषारण्ये - अमृतलाल नागर,
   लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 1989, पृ.486

2. प्रेमचन्द - कुछ विचार, भाग ,पृ.55

जिस प्रकार नाटक संवादों के प्राण होते हैं उस प्रकार उपन्यासों में भी सशक्त संवाद उन्हें प्राण प्रदान करते हैं। वह रचना को कलात्मक एवं रोचक बनाता है। नागर जी के भीतर के नाटककार ने उनके उपन्यास के संवादों को रूप, रंग और आकार दिया है। उनके पात्रों में शहर के पात्र, गाँव के पात्र, उच्च-नीच-मध्यवर्ग के पात्र, शिक्षित-अशिक्षित, कलाकार, लेखक, अध्यापक, दूकानदार सब हैं। खास बात तो यह है कि प्रत्येक पात्र की भाषा की योजना अपनी मानसिक मनोवृत्ति के अनुसार की गई है।

संवाद योजना मूलत: दो तरह की मानी जाती है। संक्षिप्त संवाद योजना है और दीर्घ संवाद योजना है।

संक्षिप्त संवाद योजना

इस पद्धति से रचना में कलात्मकता बढ जाती है। छोटे शब्दों और छोटे वाक्यों में गहरे अर्थ अभिव्यक्त किये जा सकते हैं। "अमृत और विष" का एक संवाद देखिए -

रमेश ने पूछा - "तुमने खाना खा लिया ?"

"आप ने ?"

"जानती तो हो।"

"तब फिर मेरा भी यही समझ लिए।"

इन गिने चुने शब्दों से परस्पर अनुराग का स्पष्ट संकेत मिलता है।

दीर्घ संवाद योजना

नागर जी ने दीर्घ संवादों की योजना भी की है जो स्वाभाविक प्रभाव से युक्त है । वे संवाद कथानक के विकास की आवश्यकता पर ही आये हैं । "बूंद और समुद्र" में चित्रा राजदान और सज्जन का एक वार्तालाप यों है :-

"अपने भविष्य के बारे में तुम्हारा क्या प्लान है ?"
"जब तक तुम पैसा दोगे, तब तक किसी प्लान की ज़रूरत नहीं । उसके बाद कोशिश करूंगी कि किसी और से मेरे खाने खर्चे का सिलसिला बन्ध जाए ।"
"उसके बाद ?"
"उसके बाद फिर कोई और नया ?"
"लेकिन तुम पुरानी हो जाओगी । तब क्या करोगी ?"
"अपने आखिरी प्रेमी को जहर देकर खुद फांसी पाने का सपना बरसों से देख रही हूं ।"
"कितनी क्रूर हो तुम । मैं तुमसे नफरत करता हूं ।"
"तुम प्रेम ही कब करते थे, जो तुम्हारी नफरत से डरूं ।"[1]

नागरजी की अभिव्यंजना शैली खूब प्रवाहमान है । कभी कभी लेखक स्पष्ट संकेत किये बिना कथा को खास मोड देकर अप्रकट घटनाओं को प्रकट कर देते हैं । नारद और सोमाहुति भार्गव के संवाद में लेखक का यह कमाल दृश्य है -

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.354

"नारद बुद्धि द्वन्द्व से छिपाना चाहती है मुझे ?"
"भक्त कब द्वन्द्व से रीता है सखे ?"
"सच है, परन्तु एक समय वह निश्चय ही उस स्थिति को पा लेता है जब उसमें और उसके आराध्य में कोई अन्तर नहीं रहता ।"
नारद और सोमाहुति के बीच की अभिन्न मित्रता और गहरी आध्यात्मिकता इससे स्पष्ट होती है । ऐसे संवादों से पात्रों के क्रोध, द्वेष आदि मनोगत भाव मुखर हो जाते हैं । डॉ॰सत्यपाल चुघ के अनुसार नागर जी के संवादों में रेणुजी की अपेक्षा पात्रों का निजीपन अधिक झलकता है ।[1] निश्चय ही कहा जा सकता है कि नागर जी के उपन्यासों के संवाद सशक्त, उद्देश्यपूर्ण, नाटकीय और प्रभावी बन पड़े हैं ।

देशकाल और वातावरण

उपन्यास के स्वाभाविक और सजीव धरातल देने केलिए उपन्यासों में अनुकूल वातावरण सृष्टि होनी चाहिए । कथावस्तु के अनुसार किसी भी देश, समाज एवं जन-जाति का आचार-विचार, रहन-सहन, सामाजिक सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है । इसके अलावा देश की प्राकृतिक ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन होता है जिससे वस्तु के फलक का आभास होता है । लेखक अपने औपन्यासिक कौशल से प्रत्येक युग का सजीव परिप्रेक्ष्य उपस्थित करते हैं । सामाजिक उपन्यासों में आंचलिकता का उभरना आवश्यक है जबकि ऐतिहासिक उपन्यासों में देशकाल की सापेक्षता अनिवार्य होती है । एक स्थान के लिए अपनी भाषा, लोक व्यवहार, मुहावरे और संस्कृति होती है । आंचलिक एवं

---

1. आस्था के प्रहरी - डॉ॰सत्यपाल चुघ, पृ॰8।

ऐतिहासिक उपन्यासों में इस पर विशेष ध्यान देना चाहिए । डॉ॰ गुलाबराय ने देशकाल के औचित्य के बारे में लिखा है "देशकाल के चित्रण में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह कथानक के स्पष्टीकरण का साधन ही रहे, स्वयं साध्य न बन जाय । जहाँ देशकाल का वर्णन अनुपात से बढ जाता है वहाँ जी ऊबने लगता है और लोग जल्दी जल्दी पन्ने पलटकर कथासूत्र को ढूँढने लग जाते हैं । देशकाल का वर्णन कथानक की स्पष्टता के लिए होना चाहिए न कि उसकी गति में बाधा डालने के लिए । ····· देशकाल वातावरण का बाहरी रूप है । वातावरण मानसिक भी हो सकता है । आदमी जिस प्रकार के समाज में रहता है वैसा ही वह काम करने लग जाता है । प्राकृतिक चित्रण भी उद्दीपन रूप से पात्रों की मानसिक स्थिति या मूड को निश्चित करने में सहायक होते हैं । प्रकृति और पात्रों की मानसिक स्थिति का सामंजस्य पाठक पर अच्छा प्रभाव डालता है और उपन्यास में काव्यत्व भी ले आता है, जैसे किसी के मरते समय दीपक का बुझ जाना, सूर्य का अस्त हो जाना अथवा घडी का बन्द हो जाना वातावरण में अनुकूलता उत्पन्न कर शब्दों को एक विशेष शक्ति प्रदान कर देता है[1] ।"

वातावरण को उजागर करनेवाला नागर जी का रचनाशिल्प खूब प्रभावी हो गया है जिसका कारण तो यह है कि उन्होंने परिवेश के बिम्बीकरण के लिए प्रतीकात्मक, भावात्मक और चित्रमयी कल्पनाओं का सहारा लिया है । नागर जी ने अपने उपन्यासों में लखनवी सभ्यता और स्थानीयता का गहरा रंग भर दिया है । नागर जी के "शतरंज के मोहरे" और "सात घूँघटवाला मुखडा" में मुगल शासकों की समकालीन सभ्यता और संस्कृति का चित्रण है । नवाबी शासन की ह्रासशील जिन्दगी और समाज

1· काव्य के रूप - डॉ॰गुलाबराय, पृ॰176-177

व्यवस्था का चित्रण "शतरंज के मोहरे" में है । "महाकाल" नागर जी का सामाजिक उपन्यास है । अकाल के दारुण और मार्मिक परिवेश के साथ उसका चित्रण हुआ है । उसे पढने पर समझा जा सकता है कि अकाल की पृष्ठभूमि पर रची गई एक कृति है यह महाकाल । व्यक्ति की स्वार्थता, जनसाधारण की भूख और उसकी विवशता का काला धुआं इस उपन्यास में हर समय तैरता हुआ प्रतीत होता है । इस वातावरण से विपरीत "सेठ बांकेमल" का वातावरण हास्य-व्यंग्य और विनोद से भरा है । "अमृत और विष" के बाढ का वर्णन पाठक को लखनऊ पहुँचा देता है - "नदी के अनैसर्गिक रूप से बढ आये हुए किनारों पर पब्लिक का मजमा सबेरे से ही जुट जाता था । डाली गंजवाले रेल के पुल पर आर पार तक भीड लगाकर उसके थर थराते हुए खंभों पर अस्थिरता की सनसनाहट लिये हुए भी सैकडों लोग दिन भर खडे रहते थे । पुल के कुछ ही नीचे पानी का हडकम्पीनाद ऐसा लगता था मानों कोई विकराल दैत्य भर पेट भोजन करने के बाद सन्तुष्टि की डकारें ले रहा हो ।"[1]

नागर जी ने अपने उपन्यासों के वातावरण का निर्माण देशकाल को ध्यान में रखकर ही किया है । "एकदा नैमिषारण्ये" और मानस का हंस" में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक वातावरण पौराणिक और मध्यकालीन युग को सजीव कर देता है । "सुहाग के नूपुर" में दक्षिण भारत के सुदूर अतीत के समाज एवं संस्कृति उजागर हुई है । इस समर्थ वातावरण नियोजन के कारण रचना में कलात्मकता भरी पूरी झलक आयी है । नागर जी के वर्णन के प्रभाव से गलियां बोल उठी हैं, मुहल्ला जाग पडा है । पुरानी हवेली, पीपल के नीचे का चबूतरा नदी किनारा आदि अनेक स्थान पाठकों के सामने झूमते हैं । वास्तव में वातावरण चित्रण की अद्भुत क्षमता नागरजी में है ।

---

1. अमृत और विष, पृ.238

भाषिक शिल्प सौन्दर्य

उपन्यास में अन्य तत्वों की भांति भाषा का भी महत्व होता है । पात्रानुकूल भाषा से उपन्यास की स्वाभाविकता बढ जाती है । मुसलमान जब संस्कृत निष्ठ भाषा बोलता है और गंवार अंग्रेज़ी बोलता है तो वह हास्यास्पद होता है । पात्रों के व्यक्तित्व के अनुसार भाषा का प्रयोग कराना पड़ता है । एक युग की बात कही जाय तो उस युग के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग खूब युक्त बनता है । इस प्रकार की भाषा ऐतिहासिक उपन्यासों में होती है ।

नागर जी की भाषा उनके भावों और उद्देश्यों की वाहिका है । भाषा का औचित्य और सार्थकता मानव के हर रूप-विचार के साथ जुडे हुए हैं । साहित्यिक भाषा एक एक युग की प्रवृत्तियों से प्रभावित होती है । व्यक्ति के विभिन्न अनुभवों की अभिव्यक्ति भाषा द्वारा ही होती है ।

नागर जी की भाषा सरल और सहज है । "बनावटी और अप्रासंगिक शब्दावली भाषा को बोझिल और समझ में न आनेवाली बना देती है[1] ।" नागरजी ने नागरी बोली का हर रंग पहचाना है । लखनउ की चौक को आधार बनाकर कथा का प्रवाह होता है तो नागर की गंभीरता, स्थानीयता और विविधता भी भाषा में अपनाई गई है । नागर जी ने अपने उपन्यासों के सृजन के लिए विविध पृष्ठभूमियों का चयन किया है । उनका उपन्यास "सेठ बांकेमल" हास्य-व्यंग्य का

---

1. व्यावहारिक हिन्दी - डॉ॰नारायणदत्त पालीवाल
   मनीषी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987, पृ॰11

जीवन्त दृष्टान्त है तो महाकाल, बूंद और समुद्र, अमृत और विष और अग्निगर्भा सामाजिक समस्याओं से पूर्ण है । "शतरंज के मोहरे" और "सात घूंघटवाला मुखडा" नवाबी मुस्लिम संस्कृति को प्रस्तुत करते हैं । ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक रूप लिए हुए "सुहाग के नूपुर" सामने आता है । "एकदा नैमिषारण्ये" पौराणिक कथातत्वों से पूर्ण है । मध्यकालीन सामाजिक धार्मिक भावभूमि से मंडित "मानस का हंस" तुलसीदास की जीवनी पर आधारित है । नागर साहित्य का अध्ययन करने पर इतनी विविधता पाठक को रसमग्न कर देती है । स्थान और परिस्थिति के अनुसार भाषा भी बदली है । एकरसता का अरोचकत्व कहीं भी नहीं है । जीवन्त सार्थक भाषा का माधुर्य सब कहीं अनुभववेद्य है । नागर जी की भाषा प्रत्येक स्थिति में जनसमाज से संपृक्त प्रतीत होती है ।

प्रेमचन्द की भाषा सहज, सरल और स्वाभाविक बोलचाल की भाषा है । नागरजी ने प्रेमचन्द की सरल सहज भाषा को अपनाया है । किन्तु जब प्रेमचन्द ने ग्रामीण आन्तरिकता को अपनाया है तब नागर जी ने नागर की बोली बानी को अपनाया । प्रसादजी की भाषा संस्कृत निष्ठ है । अज्ञेय और जैनेन्द्र की भाषा वैयक्तिक शुद्ध भाषा है । परन्तु नागर जी ने किसी प्रकार के आडंबर को नहीं अपनाया । उन्होंने हर स्थान में अपनी प्रकृतिजन्य गरिमा दिखाई है । नागरजी ऐसे कुछ लेखकों में हैं जिनका भाषा संबन्धी परिज्ञान पर्याप्त व्यापक है । उनकी मातृभाषा गुजराती है । इसके अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी, मराठी, बंगला आदि भाषाओं के भी वे अच्छे जानकार हैं । तमिल भाषा से भी वे परिचित हैं और संस्कृत भाषा से भी उनकी अभिरुचि है[1] ।"

1· नीर क्षीर - अमृतलाल नागर अंक, पृ·25

विभिन्न वातावरणों में घूमकर नागरजी ने अपने साहित्यिक अनुभवों को नवीनता प्रदान की है । लखनऊ में अपने जीवन के आरंभ से रहने के कारण लखनवी सभ्यता की मिठास और साधारण गली मोहल्ले की बोलचाल की भाषा से लेकर शिक्षित वर्गों की भाषा का गौरव नागरजी की रचना में दिखाई पडा है । "बूंद और समुद्र" की भाषा प्रक्रिया पर नागर जी ने लिखा है - "अपने अपने घरों की मुंडेरों पर खडे होकर उनकी बातें करने का दृश्य सामने आ गया । सबसे पहले संवाद की उमंग, उनकी बातों पर मन ऐसा रीझा कि तुरन्त कागज-कलम लेकर बैठ गया[1] ।" नागर जी की भाषा अपने दैनिक अनुभवों के प्रचुर कोश से संपन्न है । उनकी भाषा की सफलता के बारे में डा॰ रामविलास शर्मा ने एक ओर कहा है - पात्रों की जितनी विविधता है उतनी नागरजी की शैलियाँ और व्याकरण हैं । व्रज का पुट "बूंद और समुद्र" की ताई में देखा जाता है - निगोडी सब की सब मेरी छाती पे ही मूंग दलने आये हैंगी । सात जनम की दुस्मन मरी, गली गली घूमकर मेरे घर बच्चे पटकने आयी रंडो । अरे तन मन में कीडे पडेंगी, सरदी की रात में दौडा मारा ।" डा॰ देवीशंकर अवस्थी ने कहा है - "भाषा और चरित्र की नागर जी के पास अद्भुत शक्ति है । नगरों में बोली जानेवाली भाषा की शब्द योजना, पदावली और वाक्य गठन उन्होंने भीतर से अपनाया है[2] ।" श्री॰ भगवतीचरण वर्मा ने नागरजी को "बोलचाल की मुहावरेदार भाषा का आचार्य" कहा है । अंग्रेज़ी की लोकप्रचलित स्थानीय भाषा, ठेठ ग्रामीण अवधि, हिन्दी मिश्रित अवधी ये सब बोलचाल की भाषायें हैं । नागरिक बोलचाल की हिन्दी बोलते हैं तो ग्रामीण अनगढ तद्भव शब्द । इसी प्रकार मुस्लिम पात्र उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग करते हैं । "एकदा नैमिषारण्ये" की भाषा कलात्मक संस्कृतनिष्ठ पौराणिकता लिये हुए हैं । "मानस का हंस" में स्थानीय भाषा है और हिन्दी के साधारण रूप भी हैं ।

---

1. सीमान्त प्रहरी - 15 अगस्त 1968, पृ॰23
2. सीमान्त प्रहरी - अमृतलाल नागर अंक, पृ॰33

मुहावरेदार लोकोक्तियों से प्रचलित अपनी भाषा को नागरजी ने उपमा, उत्प्रेक्षा आदि से अलंकृत किया है । नागरसाहित्य में प्रयुक्त भाषा को निम्न रूपों में बाँटा जा सकता है ।

1. सरल स्वाभाविक भाषा
   (क) अवधी बोली (ख) नागरिक भाषा का तद्भव रूप ।
2. अलंकृत और काव्यात्मक भाषा
3. गंभीर चिन्तन प्रधान भाषा
4. उर्दू फारसी युक्त हिन्दुस्तानी
5. धार्मिक पौराणिक भाषा

1. सरल स्वाभाविक भाषा

नागरजी ने अपने पात्रों स्थानों एवं घटनाओं के अनुसार वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है । इसके लिए प्रयुक्त उनकी स्वाभाविक भाषा ठेठ अवधी के रंग में रंगी हुई है । यह भाषा अत्यंत रोचक और ग्राह्य है - "करजा लेओ या चाहे जौन उपाय करो बाकी सकुन्तला तो हमार खटकुल मा' जाई । अपने लरिकन - बिटियन का ब्याह चाहे मेहतरन के घर करयों, चाहे चमारन के हम न बोलब, हम अपन गंगा किनारे जाय पडब ।[1]" "सुहाग के नूपुर" में भी सरल भाषा का प्रयोग देखा जा सकता है[2] । "सेठ बांकेमल" में उन्होंने आगरा आंचल की हिन्दुस्तानी की तरकेट शब्द का प्रयोग किया है । "वो सहित सुसरा डबल फोवस है जिसे पढके जैसे जवानी नहीं उमड़ती, जिसे पढके मर्दानगी से काम करने का हौसला नहीं मिलता है[3] ।"

---

1. बूंद और समुद्र, पृ.106
2. सुहाग के नूपुर, पृ.18
3. सेठ बांकेमल, पृ.95

2. अलंकृत और काव्यात्मक भाषा

साहित्यकार अपनी भाषा को सज्जित करने के लिए मुहावरों लोकोक्तियों और अलंकारों का प्रयोग करते हैं। डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक ने काव्यात्मक भाषा पर जोर देते हुए कहा है - "सामान्य रूप में उपन्यास की भाषा प्रांजल, परिष्कृत एवं भावमयी होनी चाहिए। उसमें अप्रचलित और क्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। वह परिमार्जित और अलंकृत हो।[1]" स्वाभाविक अलंकरण ही रचना को खूब सौष्ठव प्रदान करता है। भाव के साथ भाषा की कुशलता भी नागर जी की संपत्ति है। भाव और भाषा दोनों साहित्य में शब्द और अर्थ की तरह उनके साहित्य में गुथे हुए हैं। "मानस का हंस" में तुलसी के अन्तर्द्वन्द्व का एक वर्णन नागर जी की सृजन शक्ति को प्रकट करता है - "मेघा भगत के द्वारा गाया गया श्लोक तुलसी के अबीर-गुलाल भरे वसन्ती मन पर पानी सा पडा। रंग उजड गए, कीचड हो गई। मेघा भगत से दृष्टि मिलाने में भय लगता था। मोहिनी के मुख-कमल पर पुतलियों के भौंरे जा चिपकने के लिए मचलते तो बहुत थे पर इस श्लोक ने सब कीचड कर दिया था। सिर झुकाये हुए युवा तुलसी अपने ही मन मारे बैठे अपने पश्चात्ताप और सत्याचरण के मनवाले मुर्गे लडवाते रहे। मन नीचे से ऊपर की ओर खौल रहा था, ज्यों चूल्हे की आग पर चढा पतीली का पानी खौलता है।[2]" मोहिनी का रूप सौन्दर्य तुलसीदास के मन को विचलित करता रहा। यह जानकर मेघाभगत ने अपने एक गीत से तुलसी को रामनाम की ओर सचेत किया और समझाया कि मोहिनी के प्रति यह प्रेमभाव रामभक्ति में विघात पहुँचायेगा। तुलसी पश्चात्ताप की अग्नि में झुलसने लगा। चूल्हे की आग पर चढाने पर पतीली का

---

1. काव्य एवं काव्य रूप - डॉ. जगदीश प्रसाद कौशिक
   ग्रंथ विकास, जयपुर, प्रथम संस्करण 1987, पृ. 117
2. मानस का हंस, पृ. 136

पानी ताप से जिस प्रकार खौलता है । उसी प्रकार तुलसी का मन लज्जा, ग्लानि एवं अपराध बोध की अग्नि में खौलने लगा । इस प्रकार अपनी अलंकृत भाषा से भाव को सही ढंग से समझाने में नागरजी सफल हुए हैं । "सुहाग के नूपुर" में कोवलन के नगर प्रवेश से संबन्धित आघोषों का वर्णन आलंकारिक भाषा में यों किया गया है - "रथों के घोडों आदि के साथ साथ राजपथ पर दूर दूर तक दौड़ती दिखाई देती मशालें ऐसी लगती हैं मानों आकाश पर सूर्य का आना जान तारे भय - काँप से स्खलित हो धरती पर मुँह छिपाने चले आये हों[1] ।" प्रकाशित और उज्ज्वल सूरज से कोवलन की तुलना कर कोवलन के प्रभाव को यहाँ व्यक्त किया गया है । इसी प्रकार मशालों की उपमा सूर्य के आगमन के भय से धरती पर मुँह छिपाने आये तारों से करके दीपों के प्रकाश से अधिक शोभा और तेज कोवलन के मुख को दी गई है ।

"मानस का हंस" में कहा गया है कि रत्नावली के दर्शन से तुलसीदास का गुमसुमपना हवा हो गया था[2] ।" तुलसी ने मौन छोड़कर प्रसन्न हो बातें कीं । रत्नावली को देखते ही तुलसी का दुख गायब हो गया ।

रत्ना को अपने पिता का भवन चाहे वह जितना भी निस्सार क्यों न हो, खूब प्रिय है - इसे आलंकारिक भाषा में कहकर कथन को खूब शक्ति प्रदान करते हैं - "पीहर का कुत्ता भी प्यारा लगता है[3] ।"

---

1. सुहाग के नूपुर, पृ. 9
2. मानस का हंस (संक्षिप्त रूप), पृ. 94
3. मानस का हंस, पृ. 101

"सुहाग के नूपुर" में और एक उदाहरण देखिये - पान्सा के "चेहरे का पानी उतर गया[1]।" चोल साम्राज्य की राजधानी उरैयूर से हटाकर कावेरी पट्टणम् में प्रतिष्ठित होगी - यह बात सुन कर पान्सा के चेहरे का पानी उतर गया । राजा का शासन और नियंत्रण अपने सभी व्यापारों को हानि पहुँचायेगी - यह जानकर पान्सा दुख से विवश हो गये । उसका चेहरा विवर्ण हो गया । चेहरे का पानी उतर जाने से वह जिस प्रकार शोभाहीन हो जाता है उसी प्रकार पान्सा का चेहरा निष्प्रभ बन गया । यह प्रयोग खूब शक्तिशाली बन गया है ।

"सुहाग के नूपुर" में और एक प्रयोग की ओर ध्यान दें - "कोवलन के लिए हर दिन यथावत ही सोम, मंगल, बुध बनकर आता रहा[2] ।"

चोल देश में राजा की ओर से नई हलचल मची । पान्सा और पेरियनायकी अपने स्थान पर ही मारे गये । लेकिन इस संभव का कोई प्रभाव कोवलन पर न पड़ा । पहले के जैसे उसे समय एक दिन के बाद एक के क्रम से आता रहा । अर्थात् पहले के जैसे ही कोवलन का प्रवर्तन जारी रखा । मानो अब कोई चिन्ता ही उसे नहीं व्यापती थी । इस प्रकार आसानी से मालूम होता है कि नागरजी ने अलंकारों के प्रयोग से भाषा को सुन्दर बनाया है ।

1· सुहाग के नूपुर, पृ·165

2· वही, पृ·166

3· गंभीर चिन्तन प्रधान भाषा

लेखक के शिक्षित पात्रों से अपने विचारों को प्रकट करने के लिए संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग किया गया है । "महाकाल" में पाँचू गोपाल,[1] "बूँद और समुद्र" में महिपाल[2] "अमृत और विष" में अरविन्दशंकर,[3] "एकदा नैमिषारण्ये" में भार्गव सोमाहुति,[4] "मानस का हंस" में तुलसी दास[5] आदि गंभीर चिन्तन करनेवाले पात्र हैं । गंभीर चिन्तन का एक उदाहरण "महाकाल" में देखा जा सकता है । "घृणा की गति है कहाँ ? विनाश ही में न ? तुम्हारा यह अकाल क्या है ? मनुष्य की घृणा ही न ? यह महायुद्ध क्या है ? कौन सा आदर्श है इसमें ? सत्य एक असत्य के साथ सन्धि करके दूसरे असत्य का सर्वनाश करने के लिए युद्ध कर रहा है । मनुष्य इसे राजनीति कहकर अर्द्धसत्य का पोषण करता है । अर्द्धसत्य अज्ञान का कारण है । ज्ञान प्रेम का मूल है और प्रेम की गति है । निर्माण तक, निर्माता तक[6] ।"

अपने गाँव की, घर की अकाल जन्य दुस्थिति से थके हुए मन के साथ पाँचू बाबा के घर पर पहुँचा । बाबा के पास बैठे हुए अकाल के अन्त के बारे में उन्होंने बातें की । तो बाबा ने कहा किसी से घृणा किये बिना प्रेम की भावना को उत्पन्न करना ही धर्म है । पाँचू इस घृणा को अर्थपूर्ण और सोद्देश्य कहता है । इस कथन पर हँसते हुए बाबा पाँचू को समझाता है - घृणा का अन्त विनाश है ।

1· महाकाल, पृ·119, 217

2· बूँद और समुद्र, पृ·35

3· अमृत और विष, पृ·31

4· एकदा नैमिषारण्ये, पृ·68

5· मानस का हंस, पृ·101

6· महाकाल, पृ·217

उसमें कोई आदर्श नहीं । मनुष्य की स्वार्थता और अर्थसंपादन की दुराशा प्रजा की भलाई के मिस यहाँ अकाल के रूप में प्रत्यक्ष हुई है । मनुष्य विचारता है कि यह तो राजनीति है । मनुष्य का विचार केवल अज्ञान है । मानव-मानव में प्रेम उत्पन्न करना ही ज्ञान का काम है । इसलिए घृणा छोड़कर ज्ञान संपन्न बनकर प्रेम को बढाते रहने का सन्देश बाबा देते हैं । नागरजी का यह सन्देश पाठकों में गंभीर चिन्तन पैदा करने में सहायक है ।

4. उर्दू-फारसी युक्त हिन्दुस्तानी

"शतरंज के मोहरे" और "सात घूंघटवाला मुखड़ा" नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यास हैं । इन उपन्यासों की पृष्ठभूमि उन्होंने लखनऊ के नवाबी शासन से ली है । लखनवी उर्दू-फारसी युक्त भाषा का बडा ही सजीव रोचक रूप इन उपन्यासों में प्रयुक्त हुआ है । उर्दू का अगाध परिज्ञान और भाषा पर का पूर्ण अधिकार नागर जी की अपनी विशेषता है । "याद रखो दिलाराम कि सियासत भी पेशेवार रक्कासा होती है । उसके पास दिल नहीं होता और कोई हुस्न की मलिका ऐसी बेदिल सियासत को अपनी चेरी बनाये बगैर तख्तो-ताज की मलिका बन ही नहीं सकती ।"[1] हुस्न की मलिका, तख्तो-जात की मलिका - प्रयोग से अपने उर्दू-फारसी शब्द का ज्ञान दर्शाया है ।

---

1. सात घूंघटवाला मुखड़ा, पृ. 15

5· भाषा का धार्मिक पौराणिक रूप

नागर जी की पौराणिक ग्रंथ हैं "एकदा नैमिषारण्ये"। और "मानस का हंस"/ ऐतिहासिक ग्रंथ है। इनमें स्थानों एवं वस्तुओं के नाम नागर जी ने खूब खोज करके प्रस्तुत किये हैं। प्राचीन संस्कृतियों की खोज उन्होंने विश्व की अन्य संस्कृतियों से की है। संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग उन्होंने इन उपन्यासों की पृष्ठभूमि के अनुरूप किया है - "हे नृपश्रेष्ठ, आदि वेदव्यास भगवान श्रीकृष्ण द्वैपायन रचित जयग्रन्थ पर आधारित उन्हीं के शिष्य पूज्य वैशंपायन द्वारा रचित भारत-संहिता में बौद्ध सम्राट अशोक के शासन काल में हमारे पूर्वजों ने शाखाओं का समन्वय करके उसे एक लाख श्लोकों की महाभारत संहिता बना दिया था। इतिहास होने के साथ ही महाभारत ज्ञान और भक्ति का विश्वकोष है। मेरे शिष्य पुराण वक्ता महात्मा सौति जब उसे सुनाते हैं तो सुननेवालों को अपूर्व सुख लाभ होता है[1]।"

अपने पात्रों की पहचान कराने और देशकाल-वातावरण का परिचय कराने के लिए नागरजी के पास शब्दों का एक भण्डार ही है। इसलिए हर एक बात एवं प्रसंग को ज्यों का त्यों उन्होंने संजोया है। सहज बोलचाल की हिन्दी भाषा उन साधारणों का प्रयोग है तो भी गहन चिन्तन केलिए संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है। पार्थिव, तुषारपात, पट्टमहिषी, मोदक, आह्लाद, अनन्ता, अहर्निश आदि आदि। अप्रचलित शब्दों का प्रयोग कभी कभी उन्होंने किया है तो भी वे अग्राह्य नहीं। जनसाधारण और मध्यवर्गीय पात्रों का यथार्थ स्वभाव व्यक्त करने के लिए उनके प्रयुक्त शब्द खूब पर्याप्त बन चुके हैं। यथा, अंतरजामी, मोच्छ, धरम,

---

1· एकदा नैमिषारण्ये, पृ·17।

गुण, सरीर आदि आदि । इसी प्रकार दक्षिण भारतीय संस्कृति को प्रकट करने के लिए दक्षिण भारतीय शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है जो उनके "सुहाग के नूपुर" में दिखाई देते हैं - जैसे पन्दल {ताड की पत्तियों से बनी चटाइयों का मण्डप}, कलंजु {सिक्के}, कासु {पैसा} आदि । शिक्षित और ब्राह्मणों ने संस्कृत उक्तियों का प्रयोग किया है । वह यों है -

"सर्वम् विश्वात्मकम् विष्णु:"
"का तव कान्ता कस्ते पुत्र:
संसारो/यमतीव विचित्र:"

आसानी से समझा जा सकता है कि भाषाओं के अधिकारी नागर जी ने समय और पात्रों के अनुसार उर्दू, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी, बंगाली आदि भाषाओं का प्रयोग किया है ।

नागर जी अपने पात्रों को अपनी अपनी भाषा शैली देकर उन्हें एक दूसरे से पृथक कर सके हैं । भाषा शैलियों के प्रयोग में वे कुशल निर्वाह कर सके हैं । उन्होंने अपने शब्द भण्डार को अपनी उदार भाषा-नीति से समृद्ध किया है ।

6. भाषा में बिम्ब विधान

बिम्ब साहित्य का महत्वपूर्ण तत्व है । इसका अर्थ है किसी पदार्थ को चित्रबद्ध करना अथवा प्रतिबिम्बित करना । बिम्ब काव्य के प्राणतत्व की तरह बना रहता है । चित्रमयता काव्य भाषा की अनिवार्यता है ।

भाषा में चित्रमयता बिम्ब प्रधान द्वारा ही आती है। बिम्ब एक प्रकार का शब्द चित्र होता है, परन्तु उसमें रेखाओं और रंगों के साथ साथ भाव भी समायोजित रहता है। डॉ॰नगेन्द्र ने लिखा है - "काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।" बिम्ब की सृजन प्रक्रिया में सार्थक भाषा भी एक तत्व है। एक पाश्चात्य विचारक के अनुसार "बिम्बमात्र सज्जा नहीं वरन् सहज भाषा का सार होते हैं।" नागर जी के "सुहाग के नूपुर" में माधवी के नृत्य विजय पर आह्लाद प्रकट करती हुई उसकी अम्मा कहती है - "जा, जा, भरे दरबार को मेरी बेटी ने "कामदेव का धनुष" बनकर जीता। नगर के महाश्रेष्ठि का इकलौता लाडला मेरी लाडली के तलवों-तले चाँदनी सा बिछा रहता है। और क्या सम्मान चाहिए ?"¹ कोवलन का अनुमोदन करने आयोजित भरी सभा में माधवी की नृत्यकला की भरी पूरी प्रशंसा की गई। राजा ने परंपरानुसार अपने गले की मोती-माला उतारकर माधवी के गले में डाल दी। राजा के रूप में मानो समस्त जनगण ने गणिका को वर लिया था। कामदेव अपना धनुष-बाण किस ओर भेजता है वह कभी पराजित नहीं होता। उसी प्रकार माधवी ने कामदेव का धनुष बनकर सारी सभा को जीत लिया। उसने अपने नयन बाण कोवलन की ओर भी सधे कि कोवलन उसका पहला शिकार बन गया। अपना प्रकाश और शीतलता का वितरण करते हुए चान्दनी जिस प्रकार फैल जाती है उसी प्रकार कोवलन माधवी को खुश करता रहा। यहाँ नागर जी की बिम्ब योजना काफी सफल बन गई है। माधवी के कटाक्ष से आकृष्ट हुए कोवलन का चित्रीकरण यहाँ खूब सार्थक हुआ है। कामदेव का धनुष कभी नहीं चूकता है। वह निर्दिष्ट स्थान पर जा लगता है। उसी प्रकार

---

1. सुहाग के नूपुर - अमृतलाल नागर
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1960, पृ॰35

माधवी का कटाक्ष कोवलन के हृदय पर चुभ गया । यह उपमा खूब प्रभावोत्पादक बन गई है ।

"बिम्ब के लिए नवीनता एवं सक्षमता आवश्यक गुण है । पाठक को चमत्कृत बना देनेलायक भाषा और शैली होनी चाहिए ।[1]" जब कवि का भाषा पर अबाध अधिकार होता है तो सक्षमता आती है । कोवलन को कामी कुत्ता कहकर भगाने के बाद फिर भी अपनी ओर आती माधवी की ओर कोवलन पूरी शक्ति लगा उत्तेजना में कांपता हुआ हाथ बढाकर गरजने लगा - "यह देखो, विषकन्या आ रही है । यह धनिक प्रेमियों को अपने चुम्बनों से डस-डस कर मार डालती है । इस कुलटा विश्वासघातिनी ने मेरा सर्वनाश किया । अब उस दूसरे का करेगी, तीसरे का करेगी, सैकडों का सर्वनाश करेगी ।[2]" यहाँ पर नागर जी का भाषा पर अबाध अधिकार दिखाई देता है जिससे सक्षमता आ गई है ।

बिम्ब स्वाभाविक भी होने चाहिए । यदि उनमें कृत्रिमता है तो क्षणिक चमत्कार भले ही उत्पन्न कर दें, गहन प्रभाव डालने में असमर्थ रहेंगे ।

साहित्य सृजन की पृष्ठभूमि में बिम्ब अनेक महत्वपूर्ण कार्य करते हैं । यह कवि अथवा कलाकार के मस्तिष्क में प्रस्तुत भावों को जगाता है तथा कलाकार की रचना प्रक्रिया उनका तादात्म्य स्थापित करता है । मास्टर अरविन्दशंकर के साठवें वर्षगाँठ समारोह में उन्हें बधाई देते हुए कहा हुआ एक एक शब्द उसके मस्तिष्क में उनके

---

1. साहित्यालोचन - डॉ॰राजकिशोर सिंह
   प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1975
2. सुहाग के नूपुर - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1960
   पृ॰219

भावों को जगाता है - "साठ ! साठ ! साठ ! हर भाषा में मेरी आयु के साठ वर्षों पर जोर दिया जा रहा है । मैं ने साठ क्या पूरे किये, मानो एवरेस्ट की चोटी पर पहुँच गया । आखिर इन साठ वर्षों में मैं ने पाया क्या, दिया क्या ?"[1]

बिम्ब योजना का दूसरा प्रमुख कार्य अन्तःकरण में स्थित संवेदनाओं को जाग्रत कर उन्हें तीव्रता प्रदान करता है । "बूंद और समुद्र" में बाबाजी के आध्यात्मिक व्यक्तित्व से एक अन्तर्दृष्टि उभरती है - "प्रेम बहती धारा की स्थाई परछाई है । बडी बडी हलचलों के बावजूद हमें निज के ममत्व को नहीं भूलना चाहिए । ममत्व के साथ न्याय बुद्धि बदल जाती है[2] ।" यहाँ बाबा रामजीदास का हृदयगत प्रेमभाव उमड आता है और उसे तीव्रता प्रदान कर देता है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बिम्ब साहित्य का अतीव उपयोगी तत्व है । यह काव्य को उत्कृष्ट व जीवन्त बनाता है । उत्तम काव्य रचना के लिए सफल बिम्ब विधान अत्यंत आवश्यक है ।

बिम्ब का एक अन्य कार्य प्रभावात्मकता की सृष्टि है । "मानस का हंस" में राम सेवा में लीन तुलसीदास के रूप भाव को देखिये "तुलसी बन्द कुटी में आसन पर बैठे ध्यानमग्न होकर माला जप रहे हैं । उनके कानों की रामगुंज में टक-टक की आवाज़ व्याघात डालती है । ध्यान का सिमटा हुआ बिन्दु टक-टक की ध्वनि के साथ फैलने लगता है । उनके चेहरे पर कसाव आ जाता है । वे अपनी पूरी अन्तश्शक्ति के साथ इस व्याघात के विरुद्ध मोर्चा बाँधकर जप में एकाग्र हुए[3] ।"

1· अमृत और विष - लोकभारती प्रकाशन, छात्र संस्करण, पृ·3।

2· बूंद और समुद्र, पृ·85

तुलसीदास की भक्तिभावना की प्रभावात्मकता इस भाग में उभर आई है । नागर जी की भाषा की बिम्ब योजना उनके प्राय: सभी उपन्यासों में दिखाई जा सकती है । उनकी काव्यरचना में बिम्ब विधान सफल हुआ है ।

इस प्रकार समझा जा सकता है कि उपन्यास शिल्प में अन्य तत्वों की भांति नागरजी के भाषाशिल्प का भी खूब महत्वपूर्ण प्रयोग हुआ है ।

निष्कर्ष

नागरजी के उपन्यासों के शिल्प संबन्धी इस संक्षिप्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि उनके उपन्यास शिल्प की कसौटी पर सफल उतरे हैं । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि उनके हर पात्र की भाषा उचित वातावरण प्रस्तुत करने में सक्षम है । यह उनके साहित्य में भाषा की अगाध संप्रेषण क्षमता है । नित्य के जीवन में हमारा जितने प्रकार के व्यक्तियों से साक्षात्कार होता है उन्हें नागर जी के उपन्यासों में एक साथ जीवन्तता के साथ देखा जा सकता है । उनके पास वाणी का कौशल तो है ही, अपने परिवेश, समाज और व्यक्तियों को बांधनेवाली कला भी है । उनके शब्द जीवन से उठाये हुए शब्द हैं । भाषा व्यंजनगर्भी और शैली सम्मोहक हो गई है । अन्तत: यह कहा जा सकता है कि नागर साहित्य अपनी विविधता में अनुपम है तो शिल्प में भी निस्तुल है ।

उपसंहार

उपसंहार

अमृतलाल नागर प्रेमचन्द परंपरा के सशक्त उपन्यासकार हैं। प्रेमचन्द के काल में ऐसा एक भी नाम नहीं जिसे उनके समकक्ष रखा जा सके। उनसे पहले या तो कोई श्रेष्ठ उपन्यास परंपरा या कोई श्रेष्ठ उपन्यासकार नहीं था जिससे उन्हें प्रेरणा मिल जाती। प्रेमचन्द ने स्वयं उच्चकोटि के उपन्यास लिखे और विकास की सीमा तक पहुँच गये। उन्होंने अपने कई उपन्यासों में कई आदर्शपात्रों की सृष्टि की। इन पात्रों के जीवन का आदर्श गान्धीवाद पर आधारित रहा। मजदूरों की अपेक्षा किसानों की उन्नति को ही वे अधिक ज़रूरी मानते थे। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास "गोदान" में पृथ्वीपुत्र होरी का एक संपूर्ण चित्र उन्होंने उतारा। दहेज, आभूषण प्रेम, विधवा विवाह, वेश्यावृत्ति आदि कुछ कुप्रथाओं और हानिकारक प्रवृत्तियों पर उन्होने प्रहार किया। उनके उपन्यासों में चर्खा चलाना, विदेशी कपडों को जलाना, शराब की दूकानों पर धरना देना, अनशन करना, जेल जाना आदि कई प्रसंग पाये जाते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यास महत्त्वपूर्ण कथानकों और चरित्रों के आधार पर खडे किये गये हैं। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में स्थायी और सच्चे मूल्यों की स्थापना की है। प्रेमचन्द के बाद जो नवीन प्रवृत्तियाँ उभरीं वे बहुत हद तक प्रेमचन्द की अन्तिम कृतियों में पायी जाती थीं

उनके बाद विषय वस्तु और शैली शिल्प दोनों में अपूर्व विविधता और विस्तार का समावेश हुआ । मानव मन के सूक्ष्म रहस्यों को समझने-समझाने का एक नया उत्साह उपन्यासकारों में जाग उठा - "उपन्यास स्थूल जगत को छोड मनोजगत की ओर प्रवृत्त हुआ । प्राय: संपूर्ण साहित्य की प्रवृत्ति इस युग में स्थूल से सूक्ष्म की ओर ही थी । उपन्यास में भी यह प्रतिफलित हुई ।"[1] प्रेमचन्द युग में समाज के कल्याण को जितना प्राधान्य दिया उतना व्यक्ति के हित के लिए नहीं दिया । विधवा विवाह करा देने से होनेवाले समाज के मंगल के बारे में जोर जोर से कहा गया पर गायत्री, पूर्णा, विराजन, रतन आदि विधवाओं में एक का भी पुनर्विवाह वे न कर पाये । परवर्ती युग में समाज के कल्याण के लिए व्यक्ति के हित की ओर ध्यान दिया गया । प्रेमचन्द युग में निर्मला और होरी अपने अपने आदर्श को छोडे बिना उसी वेदी पर प्राणोत्सर्ग कर गये । प्रेमचन्दोत्तर युग में व्यक्ति स्वातंत्र्य का जोर बढा । समाज की विकृतियों का उद्घाटन करके व्यक्ति के दुखदर्दों पर ध्यान किया गया । परवर्ती उपन्यासकारों में एक ओर वैयक्तिक अधिकारों एवं स्वतन्त्रता की उपलब्धि और दूसरी ओर सामाजिक समता की स्थापना का स्वर प्रखर हो गया ।

प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों में जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर और रांगेय राघव प्रतिनिधि उपन्यासकार माने गये । गान्धीवाद के आध्यात्मिक पक्ष तक प्रेमचन्द ने प्रवेश नहीं किया था जब जैनेन्द्रकुमार ने अपने उपन्यासों में उस आध्यात्मिक धरातल तक पहुंचने का प्रयास किया । जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द परंपरा को चुनौती देकर उपन्यास साहित्य को नई दिशा देने का सफल प्रयत्न किया । जैनेन्द्र कुमार ने हिन्दी उपन्यास को समष्टि केन्द्रित बिन्दु से व्यष्टि केन्द्रित बिन्दु तक

---

1. हिन्दी उपन्यास - एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ.105-106

ला पहुँचाया । इलाचन्द्र जोशी ने भी व्यष्टि मानव और समष्टि मानव और समष्टिमानव दोनों के समन्वय में विश्वास किया । वे जानते थे कि व्यक्ति की उपेक्षा करके किसी भी समस्या का समाधान संभव नहीं । साथ ही बहिरंग जीवन की महत्ता को भी उन्होंने निर्भ्रान्त शब्दों में स्वीकार किया । बहुमुखी प्रतिभा रखनेवाले अज्ञेय जी भी व्यक्ति मन के गहरे से गहरे भावों को खोल देने में अनुपम हैं । श्री. भगवती चरण वर्मा ने भी सृजनात्मक साहित्य के सभी पक्षों की श्रीवृद्धि की । अहं और बुद्धिवाद उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के अनिवार्य अंग रहे । उन्होंने चित्रलेखा, टेढे मेढे रास्ते, भूले बिसरे चित्र, सामर्थ्य और सीमा आदि उत्कृष्ट कृतियाँ रचकर हिन्दी उपन्यास की समृद्धि में स्तुत्य योग दिया । यशपाल ने मध्यवर्गीय समाज के चित्र उभारे । अपने नवीनतम और बृहदाकार उपन्यास "झूठा सच" लिखकर सांप्रदायिक विद्वेष, पुरुष वर्ग के अधीन नारी वर्ग की गुलामी आदि सामाजिक यथार्थ को उन्होंने प्रस्तुत किया ।

अमृतलाल नागर प्रेमचन्दोत्तर युग में एक महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी बने । प्रेमचन्द में समाज सत्य का आग्रह प्रबल रूप में था । सामाजिक चेतना नागर जी में भी महत्वपूर्ण रही, किन्तु वे व्यक्ति चेतना के साथ उनका सामंजस्य स्थापित करते हुए चले । उनके निकट व्यक्ति और समाज दोनों अपनी अपनी जगह पर महत्वपूर्ण हैं, एक दूसरे के पूरक हैं । यही भाव इस युग की देन है ।

अमृतलाल नागर की प्रमुख उपलब्धियाँ

अमृतलाल नागर प्रेमचन्द परंपरा के उन्नायक हैं । वे इस परंपरा के समर्थ कथाकार हैं । हिन्दी के वर्तमान उपन्यासकारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है । प्रेमचन्द में लोकमंगल और समाज सत्य का

आग्रह प्रबल था । व्यक्ति सत्य उनके लिए प्रबल नहीं था । किन्तु नागरजी इस कार्य में प्रेमचन्द से भिन्न है । सामाजिक चेतना नागर जी के निकट भी महत्वपूर्ण है । पर वे व्यक्ति चेतना के साथ उसका सामंजस्य स्थापित करते चलते हैं । व्यष्टि और समष्टि दोनों जीवन में महत्वपूर्ण हैं । व्यक्ति समाज को प्रभावित करता है और समाज व्यक्ति को । उनके उपन्यासों में आज के समाज तथा मानव जीवन से संबन्ध रखनेवाले मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है । नागरजी स्वतन्त्रतापूर्व के भारत में जिये हैं । समाज के सभी मूल्यों और परिवर्तनों को उन्होंने अनुभव किया है । इस पृष्ठभूमि पर स्वातंत्र्योत्तर भारत में मूल्य परिवर्तन की जीवन्त झाँकी वे प्रस्तुत कर सके हैं । उन्होंने अपने उपन्यासों में अतीत और वर्तमान दोनों को समेट लिया है । उनके सभी उपन्यासों में उनकी यथार्थवादी मूल्यदृष्टि दिखाई देती है । यह यथार्थवाद नागरजी के कृतित्व की एक बहुत बडी सिद्धि है... ..... सामाजिक यथार्थ के प्रति नागर जी की यह निष्ठा उनकी सामाजिक चेतना का ही प्रमाण मानी जाएगी[1] ।" नागर जी ने अपना सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों में अतीत को वर्तमान से और वर्तमान को भविष्य से संबद्ध किया है । "नागर जी मात्र एक व्यक्ति नहीं, परंपरा के सार्थवाह हैं, उसकी एक सशक्त कडी है, पर ऐसी जो अतीत को वर्तमान से और वर्तमान को भविष्य से जोडती है । अतीत के इस निर्झर में स्नान करके वर्तमान की गंध को वितरित करते हुए नागर जी ने भविष्य के लिए जिन अमृत बिन्दुओं की साहित्यिक आँगन में वर्षा की है, वे उनके लेखन को प्रामाणिक भी बनाते हैं और विश्वसनीय भी[2] ।" नागर जी ने प्रेमचन्द के सामाजिक चिन्तन को नया आयाम देते हुए

---

1. अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य - प्रकाशचन्द्र मिश्र,पृ.273-74
2. अमृतलाल नागर - व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त - डॉ.सुदेशबत्रा, पृ.337

उन्होंने कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से मध्यवर्गीय जीवन की सामाजिक समस्याओं का स्वस्थ विश्लेषण किया है । सामाजिक रूढियों के प्रति विद्रोह और नये युग की मान्यताओं का समर्थन नागर साहित्य में किया गया है । यथार्थवादी धरातल पर मानवतावाद की प्रतिष्ठा नागर जी को प्रेमचन्द के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण का अनुयायी बनाती है। नागर जी ने नागरिक जीवन की समस्याओं एवं विवशताओं का निरूपण किया है । विधवाओं एवं आश्रयरहित नारियों का वासस्थान, सदन-आश्रम आदि में पनपनेवाली विकृतियों का भण्डाफोड नागर जी ने "बूंद और समुद्र" और "अमृत और विष" में किया । नागरजी ने नारी के अस्तित्व की ज़रूरत पर जोर लगाया । नारी को उन्होंने समाज का एक अनिवार्य अंग बताया । "बूंद और समुद्र" की वनकन्या, डॉ॰ शीलास्विंग, "सुहाग के नूपुर" की कन्नगी, अमृत और विष की रानी बाला, श्रीमती खन्ना अग्निगर्भा" की सीता आदि नारियां उनकी नारी भावना को व्यक्त करती है ।

शासन प्रणाली में पूंजीवादी षड्यन्त्र एवं नेताओं के सत्तामद का नागरजी ने घोर विरोध किया है । वे शान्तिप्रिय थे । सामाजिक कुरीतियों का उन्होंने डटकर सामना किया है । वे भारत को एक ही धर्म के अन्तर्गत लाना चाहते थे । नैमिषारण्य में संपन्न हुए ऋषियों के सम्मेलन में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक गतिविधियों की सशक्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है । लोकल्याण की भावना ही नागर जी के "एकदा नैमिषारण्ये" उपन्यास में मुखरित हुई है । "मानस का हंस" में नागर जी के जीवन की धार्मिक आस्था ही दिखाई देती है । उनके लोकमंगल की भावना व्यक्ति सत्य की उपेक्षा नहीं करती । "बूंद और समुद्र" में व्यक्ति और समाज की समन्वयवादी दृष्टि व्यक्त हुई है । व्यक्ति को वे समाज की इकाई मानते हैं ।

सामाजिक संरचना के लिए व्यक्ति का स्थान उन्होंने अनुपेक्षणीय बताया है। व्यक्ति और समाज को उन्होंने एक दूसरे का पूरक माना है । "महाकाल" में पाँचू कहता है - एक ही चीज के दो नाम हैं - व्यक्ति और समाज - मानव और मानवता । नागरजी जीवन की जटिलता में भी आस्थावादी दिखाई देते हैं । वे आस्था के सच्चे सर्जक हैं । "मानस का हंस" का तुलसीदास "खंजन नयन" का सूरदास अपने युग के घोर नैराश्य में गिर नहीं जाते । "महाकाल" के पाँचू गोपाल में भी यह आस्था दिखाई देती है । अपने परिवार को नैतिक मूल्यों से गिरते देखकर पाँचू जब घर से पलायन करता है तो मार्ग में सद्य: जात बच्चे को मृत माँ के तन से लिपटे देखकर उसका आशावाद जाग्रत हो उठता है । वहाँ निराशा की काली छाया में आशा की प्रकाश रश्मि फैल जाती है । "बूंद और समुद्र", अमृत और विष और "शतरंज के मोहरे" में भी नागर जी की यह आस्थावादी मूल्यदृष्टि व्यक्त हुई है । "अमृत और विष" में अरविन्द शंकर के माध्यम से नागर जी ने आस्था को व्यक्त किया है । अपने आर्थिक और पारिवारिक प्रश्नों के आगे वह हारता नहीं । इसी आस्था और जिजीविषा के कारण वह मानवता और प्रेम के मार्ग पर गतिशील होता है ।

एक सच्चे साहित्यकार के नाते नागर जी ने ईमानदारी के साथ समाज के बिखराव का चित्रण किया है और समाज में सन्तुलन बनाये रखने का अपना प्रमुख कर्तव्य निभाया है । उनके उपन्यासों के नायक जीवन की अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं । "सुहाग के नूपुर" की कन्नगी, बूंद और समुद्र में ताई, सज्जन, "अमृत और विष" में रमेश, "अग्निगर्भा" में सीता, "मानस का हंस" में तुलसीदास और "खंजन नयन" में सूरदास आदि आदि । अरविन्द शंकर का व्यक्तित्व हिन्दी उपन्यासकारों के लिए प्रेरणा स्रोत है । इस संबन्ध में निम्न

लिखित मत बहुत ही प्रासंगिक कहा जा सकता है । "नागर जी का यह दिशासंकेत स्तुत्य है । सब कुछ गंवा देने के बावजूद यहाँ तक कि भूख, बीमारी और मृत्यु के बावजूद नागरजी की दृष्टि में जीवन वरणीय है, हेय और उपेक्षणीय नहीं । उनमें जिजीविषा है, बावजूद अपमान, अभाव और कष्ट के उनका व्यक्तित्व आदर से बढता है, उसके पास जीने के लिए कुछ बना रहता है । जीवन अर्थपूर्ण है[1] ।"

समाज की परिवर्तित परिस्थिति में परंपरित मूल्य विघटित होता है । अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह और प्रेम विवाह परंपरा को काटकर नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं । पाश्चात्य संस्कृति तथा शिक्षा के आविर्भाव ने इस परिवर्तन में योग दिया है । जातिगत संकीर्णताएं समाप्त हो रही हैं । नयी पीढी और पुरानी पीढी में सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता है । "अमृत और विष" में उषा और भवानी शंकर में और रमेश और रानी बाला में अन्तर्जातीय विवाह होता है । रमेश और रानी बाला का विवाह पुरानी पीढी को लज्जित कराते हुए विधवा विवाह को प्रोत्साहन देनेवाला है । शिक्षित होने के कारण रमेश में समाज के सामने सिर ऊंचा उठाकर खडा होने का धैर्य आ जाता है । सारी प्रतिकूलताओं को तोड़कर वह नवीन आदर्श स्थापित करके युवा समाज केलिए प्रेरणा स्रोत बनता है । उषा और भवानी शंकर का विवाह असफल होता है । इसका कारण अरविन्द शंकर के माध्यम से नागर जी स्पष्ट करते हैं कि नये परिवर्तनों की अस्थिर परिस्थिति में ऐसा होना स्वाभाविक ही है । "बिखरे तिनके" में उच्च शिक्षा प्राप्त किये हुए बिल्लू भी विधवा से प्रेम करता है । विधवा सरसुतिया से सुहागी के विवाह के बाद उनके सुखी जीवन केलिए चन्दा डालकर एक भैंस को

---

1. आस्था के प्रहरी - डॉ. सत्यपाल चुघ, पृ. 114

खरीदकर उन्हें सौंप देते हैं ।

विलास में परिवर्तित विवाह की चिन्ता भी नागर जी के उपन्यासों में हुई है ।

पूँजीवादी समाज व्यवस्था में प्रेम और विवाह दोनों विलास में परिवर्तित हुए हैं । पुरुषों के मायाजाल में फँसकर पीडा अनुभव करनेवाली नारियों की स्थिति दयनीय है । "बूँद और समुद्र" की बडी, "सुहाग के नूपुर" की कन्नगी, माधवी, "शतरंज के मोहरे" में कुलसुम, कुदसिया बेगम, "नाच्यौ बहुत गोपाल" में निर्गुनिया आदि ऐसी नारियाँ हैं ।

नागर जी ने महिपाल, निर्गुनिया आदि के विवाह के जरिए अनमेल विवाह के दुष्परिणाम को व्यक्त किया है । दहेज की व्यवस्था ने ही महिपाल को आत्महत्या तक पहुँचाया । "अग्निगर्भा" की सीता के जीवन भर कष्ट भोगने का कारण भी दहेज प्रथा थी ।

नागर जी समझते हैं कि नारी शोषण का मूलकारण आर्थिक परतंत्रता है । "बूँद और समुद्र" में वनकन्या ने कहा है कि औरत आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र नहीं है । आर्थिक स्वतन्त्रता के होने पर ही नारी शोषण कुछ सीमा तक समाप्त किया जा सकता है । सभ्य रईसों के घरों में भी स्त्री जाति का दमन होता है । पर उसका एक महत्व अवश्य है कि "वह बच्चा पैदा करनेवाली मशीन है ।

वेश्याओं की समस्या को उठाकर नागर जी ने समाज से यह नीति माँगी है कि वेश्याओं की भी कुलवधुओं के समान समाज में प्रतिष्ठा हो जाय । उनका भी विवाह दूसरी नारियों के जैसे हो

और उनकी सन्तान की भी स्वीकृति समाज में हो जाय। माधवी के माध्यम से नागर जी ने इसी को प्रकट किया है।

नागर जी के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन की ही प्रमुखता है तो भी उनके उपन्यासों में समूचे मानव की समस्याओं का चिन्तन किया गया है। यह उनकी अपनी विशेषता है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी मध्यवर्गीय समाज का चित्रण किया है किन्तु नागर जी के जैसे जीवन मूल्यों की विविधता उसमें नहीं। यशपाल के उपन्यास भी नागर जी के उपन्यासों से साम्य रखते हैं। राजनीतिक बात से संबद्ध रहने के कारण आलोचकों ने यशपाल के उपन्यासों को एकांगी कहा है। फणीश्वरनाथ रेणु और भगवती चरण वर्मा नागरजी के समकालीन कथाकार हैं। रेणु ने आंचलिक उपन्यास लिखकर उपन्यास जगत में ख्याति प्राप्त की। तो नागर जी ने नारी जीवन का चित्र प्रस्तुत कर साहित्य जगत में प्रतिष्ठा पाई। भगवती चरण वर्मा के "भूले बिसरे चित्र" की तरह नागर जी का "अमृत और विष" भी मूल्य दृष्टि से महत्वपूर्ण है। नागरजी पूंजीवाद के प्रति विरोध और समाजवाद के प्रति आस्था व्यक्त करते हैं। "अमृत और विष" में रमेश, "बिखरे तिनके" में बिल्लू समाजवादी दर्शन की अभिव्यक्ति करते हैं। संपूर्ण मानवतावाद की प्रतिष्ठा नागर जी के उपन्यासों की सबसे बडी विशेषता है। मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग की जनता को करुणा की दृष्टि से नागर जी ने देखा है। नागर जी ने व्यक्त किया है कि सेवा भाव, त्याग की भावना और मानव प्रेम व्यक्ति व्यक्ति में बढाने से ही स्वच्छ एवं सन्तुलित सामाजिक संरचना हो सकती है। "बूंद और समुद्र" में बाबा रामजी और "अमृत और विष" में अरविन्द शंकर का विचार नागर जी के इन विचारों को पुष्ट करता है। मानव का कल्याण नागरजी के उपन्यासों का विषय है। नागर जी के उपन्यासों के पात्र अन्याय, अत्याचार, पूंजीवाद और स्वार्थपरता के विरुद्ध डटकर संघर्ष करते हैं।

शिल्प की दृष्टि से भी नागर जी के उपन्यास काफी महत्वपूर्ण हैं । उन्होंने नूतन शिल्प प्रयोग किये हैं । उपन्यास के भीतर उपन्यास की रचना का प्रयोग नागर जी के पहले कहीं नहीं हुआ है । "अमृत और विष" में यह नूतन प्रयोग मिलता है । नागर जी की शिल्प विधि की और एक खासियत यह है कि पात्रों की चिन्तनधारा में समूचा घटनाक्रम अन्तर्लीन है । "महाकाल" में पांचू की विचारधारा, "सेठ बांकेमल" में बांकेमल का चरित्रांकन समूची घटना का प्रदर्शन करता है । कहानियां, अन्तर्कथाएं, यात्राएं आदि उनके शिल्प की श्रेष्ठता के उदाहरण हैं । "बूंद और समुद्र" की कहानी का विस्तार रंजकता और सोद्देश्य के साथ हुआ है। "मानस का हंस" में फ्लेशबेक पद्धति का परिष्कृत प्रयोग हुआ है । भावगांभीर्य की दृष्टि से यह एक सफल कृति है ।

नागर जी ने जीवन को झेलकर नये नये अनुभवों को लेखबद्ध किया है । उनकी आस्था का यह वाक्य सभी मानवों को कर्म की ओर अग्रसर करनेवाला है । "जड चेतन मय, विष अमृतमय, अन्धकार प्रकाश मय जीवन में न्याय के लिए कर्म करना ही होगा । यह बन्धन भी मेरी मुक्ति भी है । इस अन्धकार ही में प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है ।"[1] यही कर्मवाद नागरजी के उपन्यासों की जान है । नागर जी के उपन्यासों की जान है ! नागर जी के उपन्यासों को हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सकता है । उनकी हर नई रचना उनकी उपलब्धि की नई संभावनाओं का मार्ग प्रशस्त करती है ।

----

1. अमृत और विष - तृतीय संस्करण

संदर्भ ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

अमृतलाल नागर के उपन्यास

1. अमृत और विष — लोकभारती प्रकाशन, तृतीय संस्करण 1971
2. अग्निगर्भा — राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984
3. एकदा नैमिषारण्ये — लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1972
4. करवट — राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985
5. खंजन नयन — राजपाल एण्ड सन्स, प्रथम संस्करण 1981
6. नाच्यौ बहुत गोपाल — राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1978
7. बिखरे तिनके — राजपाल एण्ड सन्स, प्रथम संस्करण 1982
8. बूंद और समुद्र — किताब महल, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण 1964

9. महाकाल — भारती भण्डार, प्रथम संस्करण, सं.2004

10. मानस का हंस — राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1986

11. शतरंज के मोहरे — भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1974

12. सात घूंघटवाला मुखड़ा — राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 1975

13. सुहाग के नूपुर — राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1960

14. सेठ बांकेमल — किताब महल, इलाहाबाद, 1955

आलोचनात्मक ग्रंथ

1. अमृतलाल नागर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांत — डॉ. सुदेश बत्रा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1979

2. अमृतलाल नागर के उपन्यास — आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, आनन्द प्रकाशन, फैजाबाद, प्रथम संस्करण 1981

3. आस्था और सौन्दर्य — डॉ. रामविलास शर्मा, किताब महल, इलाहाबाद, 1961

4. आज का हिन्दी उपन्यास — डॉ. इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 1966

5• आस्था के प्रहरी डॉ•सत्यपाल चुघ
लोकभारती प्रकाशन, 1970

6• आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास - आलोचना
डॉ• बेचन
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1965

7• हिन्दी के सामाजिक कथानकों का विकास शीर्षक लेख
राजेन्द्र यादव

8• उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ - डॉ•सुरेश सिन्हा
रामा प्रकाशन, लखनऊ,प्रथम संस्करण
1965

9• उपन्यास समीक्षा डॉ• दंगल झाल्टे,
वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण,नई दिल्ली
1987

10• उन्नीसवीं शताब्दी के उपन्यासकार - विश्वंभर मानव
स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1970

11• कथाविवेचना और गद्यशिल्प- डॉ•रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन, दिल्ली,प्रथम संस्करण
1982

12• काव्य एवं काव्यरूप डॉ• जगदीशचन्द्र प्रसाद कौशिक
ग्रंथ विकास, जयपुर, प्र•सं•1987

13· काव्य शास्त्र — डॉ॰भागीरथ मिश्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
1966

14· काव्य के रूप — डॉ॰ गुलाबराय
प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1967

15· कुछ विचार भाग — प्रेमचन्द
राजकमल प्रकाशन, 1980

16· गोदान समीक्षा — प्रो॰ राजेश शर्मा
अशोक प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ
संस्करण, 1972

17· गोदान — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम
संस्करण, 1936

18· चरित्र चित्रण का विकास — रणवीर रांग्रा
प्राक्कथन, भारतीय साहित्य
मन्दिर, दिल्ली, 1961

19· जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र - डॉ॰ सावित्री मठपाल
मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण
1986

20· दक्खिनी हिन्दी — डॉ॰बाबूराम सक्सेना
हिन्दुस्तानी अकादमी,इलाहाबाद

21. धर्म और समाज — डॉ. राधाकृष्णन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली,
तृतीय संस्करण 1963

22. नवाबी मसनद — डॉ. रामविलास शर्मा

23. अमृतलाल नागर का उपन्यास साहित्य - प्रकाशचन्द्र मिश्र
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली ।

24. नागर जी की उपन्यासकला - प्रकाशचन्द्र मिश्र
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

25. प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना
डॉ. अमरसिंह जगराम लोधा,
अमर प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1985

26. प्रेमाश्रम — प्रेमचन्द
हंस प्रकाशन, अनुवचन, प्र.सं. 1981

27. प्रेमचन्द और नानकसिंह के उपन्यास - डॉ. तिलकराज बडेहरा
जीवन ज्योति प्रकाशन, प्र.सं. 1985

28. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास-डॉ.कैलाश प्रकाश
हिन्दी साहित्य भण्डार, 1962

29. प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास - डॉ.बदरी प्रसाद
ओम प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1987

30. बीसवीं शताब्दी हिन्दी उपन्यास नये दो पहलू - श्री.नारायण सिंह
लोकवाणी प्रकाशन, प्र.सं.1976

31. भारतीय नारी दशा और दिशा - आशारानी व्होरा
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं.1983

32. भारतीय संस्कृति - कुछ विचार - डॉ. राधाकृष्णन
सरस्वती विहार, द्वि.सं.1978

33. भूख अमृतलाल नागर
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1970

34. महासमरोत्तर हिन्दी उपन्यासों में जीवन दर्शन - कलावती प्रकाश
श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं.1987

35. मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास - भूपसिंह भूपेन्द्र
श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1987

36. मानस का हंस नागर, छात्र विशेष संस्करण
राजपाल एण्ड सन्स, भूमिका 1986

39. विश्वनाथ साहित्य दर्पण जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य, कलकत्ता, 1934

40. व्यावहारिक हिन्दी डॉ.नारायण दत्त पालीवाल,
मनीषा प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1987

41. शेखर एक जीवनी (पहला भाग) - अज्ञेय
भार्गव भूषण प्रेस, बनारस, प्र.सं.1940

42. समीक्षा और आदर्श डॉ. रांगेय राघव
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
प्र.सं.1955

43. साहित्यालोचन डॉ.राजकिशोर सिंह
प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, प्र.सं.1985

44. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना
डॉ. जितेन्द्र वत्स
साहित्य रत्नाकर, कानपुर,प्र.सं.1989

45. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्प विधि का विकास
डॉ. तहसलिदार दूबे
नटराज पब्लिशिंग हाउस, प्र.सं.1983

46. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कृष्ण अग्निहोत्री
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली,प्र.सं.1983

47. साहित्य का साथी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
महाराष्ट्र, वर्धा

48. साहित्यालोचन डॉ.श्यामसुन्दर दास
इन्डियन प्रेस पब्लिकेशनस्,प्रयाग,1962

49· साहित्य का उद्देश्य
50· हरिशंकर परसाई व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ·मनोहर देवलिया
साहित्यवाणी, इलाहाबाद,प्र·सं·1976

51· हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्याएं - डॉ· ज्ञान अस्थाना
52· हिन्दी उपन्यास उत्तर शती की उपलब्धियां - डॉ·विवेकीराय
राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद,प्र·सं·1983

53· हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य - प्रेम भटनागर
अर्चना प्रकाशन, जयपुर, प्र·सं·1968

54· हिन्दी उपन्यास - पहचान और परख - डॉ· इन्द्रनाथ मदान
लिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1973

55· हिन्दी उपन्यास - साहित्य का शास्त्रीय विवेचन
डॉ· श्री नारायण अग्निहोत्री
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा,प्र·सं·
1961

56· हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां - डॉ· शशिभूषण सिंहल
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
प्र·सं·1970

57· हिन्दी उपन्यास - विविध आयाम - डॉ· चन्द्रभानु सोनवणे
पुस्तक संस्थान, कानपुर,संस्करण 1977

58· हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना - प्रताप नारायण टंडन
लखनऊ विश्वविद्यालय,प्र·सं·1966

59· हिन्दी उपन्यास उत्तर शती की उपलब्धियां - डॉ·विवेकी राय

59. हिन्दी उपन्यास - उत्तर शती की उपलब्धियां
डॉ. विवेकी राय
राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1983

60. हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प
डॉ. सुशीला शर्मा
सिद्धराम पब्लिकेशन्स, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1982

61. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना
डॉ. सुरेशसिन्हा
अशोक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1964

62. हिन्दी उपन्यास डॉ.जयश्री बरहाटे
संचयन गोविन्द नगर, कानपुर, 1956

63. हिन्दी हास्य-व्यंग्य केशव चन्द्र वर्मा
एकपक्षीय वक्तव्य

64. हिन्दी उपन्यास - अन्तरंग पहचान
डॉ. प्रेमकुमार
गिरनार प्रकाशन, मेहसाना, प्र.सं. 1983

65. हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्त्विक विमर्श
डॉ.उषा डोगरा
अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1984

66• हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन
व्रजभूषण सिंह आदर्श
रचना प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1970

67• हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग- मंजुलता सिंह
आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, सं• 1971

68• हिन्दी उपन्यास - साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन
डॉ• रमेश तिवारी
रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र•सं• 1972

69• हिन्दी साहित्य विवेचन योगेन्द्रनाथ शर्मा
हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ
प्र•सं•कार्तिकपूर्णिमा, सं•2018

70• हिन्दी साहित्य विवेचन डॉ•सत्येन्द्र
कल्याणमल एण्ड सन्स, जयपुर,
प्रथम संस्करण 1968

71• हिन्दी और तेलुगु के स्वातंत्र्यपूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन
डॉ•वलसानि सुब्बराव
प्रगति प्रकाशन, आगरा, प्र•सं• 1970

72• हिन्दी उपन्यास युगचेतना और पाठकीय संवेदना
डा• मुकुन्द द्विवेदी
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1970

73• हिन्दी उपन्यास रचनाविधान और युगबोध
श्रीमती वसन्ती पन्त,
पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र•सं• 1973

74• हिन्दी उपन्यास के पदचिह्न - मनमोहन सहगल
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली 1973

75• हिन्दी लघु उपन्यास घनश्याम "मधुप", गोपाल,
राधाकृष्ण प्रकाशन, 1971

76• हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन
व्रजभूषण सिंह आदर्श
रचना प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1970

77• हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना - प्रताप नारायण टंडन
लखनऊ विश्वविद्यालय, 1956

78• हिन्दी उपन्यासों में सामन्तवाद - डा• कमला गुप्ता,
अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र•सं• 1979

79• हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद - डा• त्रिभुवन सिंह
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी,
प्रथम संस्करण सं• 2012

80· हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प - माधुरी खोसला
विजयन्त प्रकाशन, नई दिल्ली, 1973

81· हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ· रामचन्द्र शुक्ल
82· हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - शिवदान सिंह चौहान
राजकमल प्रकाशन, प्र·सं·

83· हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धान्त - नरेन्द्र कोहली
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं· 1989

84· हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास - डॉ· सुरेश सिन्हा
अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं· 1965

85· हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार- डॉ· रवेलचन्द आनन्द
सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1978

86· हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन - डॉ· महावीरमल लोढा
रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर,
बोहरा प्रकाशन, 1972

87· हिन्दी उपन्यास, सिद्धान्त और विवेचन - महेन्द्र मक्खनलाल शर्मा
साहित्य रत्न भंडार, आगरा,
प्रथम संस्करण 1963

88· हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी,
नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962

89· हिन्दी उपन्यास साहित्य पर वैचारिक आन्दोनों का प्रभाव
डॉ·पी·के· मद्मजा
पंकज पब्लिकेशन, उत्तर प्रदेश, 1986

90· हिन्दी उपन्यास, पृष्ठभूमि और परंपरा
डॉ· बदरीदास, रामबाग,
कानपूर, प्रथम संस्करण, 1971

91· हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव - भारत भूषण अग्रवाल
दिल्ली, दिग्दर्शन चरण जैन

92· हिन्दी कथा साहित्य डॉ· गोपालराय
ग्रन्थ निकेतन, पटना, प्र·सं· 1965

93· हिन्दी उपन्यासों के असामान्य चरित्र - डॉ· सुजाता
मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण
1983

कोश ग्रंथ

1· हिन्दी साहित्य कोश, भाग - 1
धीरेन्द्र वर्मा आदि
ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी,
सं·2020

2· हिन्दी उपन्यास कोश सूर्यकान्त गुप्त
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1975

3· भारतीय उपन्यास कथासार — डॉ·प्रभाकर माचवे
भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता
द्वितीय संस्करण 1989

4· उर्दू हिन्दी शब्द कोश — मुहम्मद मुस्तफा खाँ "मद्दाह"
प्रकाशन शाखा, उत्तर प्रदेश,
प्रथम संस्करण 1959

5· हिन्दी उपन्यास कोश — गोपालराय
ग्रन्थ निकेतन, पटना
प्रथम संस्करण 1968

पत्र - पत्रिकाएँ

1· धर्मयुग, 9, नवंबर, 2 अगस्त - डॉ· रामविलास शर्मा, 1980

2· दस्तावेज, 20 जनवरी
29 अगस्त, 30 जनवरी — संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
गोरखपुर, 1986

3· नया जीवन, मई-जून, 1962

4· नीरक्षीर - अमृतलाल नागर अंक

5· समीक्षा — डॉ·गोपाल, यूनिवर्सिटी कालोनी,
सी·1/2, राजेन्द्र नगर, पटना,
जनवरी, मार्च

6· सीमान्त प्रहरी — अमृतलाल नागर अंक, 15 अगस्त, 1966

अंग्रेज़ी

1. Aspects of the Novel — E.M. Forster, Australia, 1962, p.33-34

2. A treataise on the novel- London, 1960

3. An Introduction to personality study - R.B. Cattell 1950 edition

4. An Introduction to the study of literature W.H. Hodson First Indian edition, 1968

5. Personality and problem of adjustment Second edition, 1962.

6. Parliamentary return of treataise Mrs. Park

7. The Novel and the people - Ralph Fix Moscow, 1958

8. The Psychology of Personality - Bernad Not cutt First edition, 1953.

9. The st ructure of the novel - Edwin Muir London, 1946

10. The Craft of Fiction — Percy Lubbock, London, 1960.

############